स्वनामधन्य श्री जैनेन्द्रकुमार ने जब मुझसे यह कहा
कि 'तुम हिल गये' तब मुझे प्रसन्नता ही हुई। कड़े रस्से
पर करिश्मा दिखाने वाले बाजीगर के सामने
बैलेन्स बिगाड़ने पर तत्पर यदि 'बफ़ून' हो तो
शायद ही बिना हिले बैलेन्स बनाये रखा
जा सके। क्योंकि साधारण आदमी की
नज़र बफ़ून अनायास ही अपनी तरफ़
आकर्षित कर लेता है। बला से
अन्त मे बफ़ून बफ़ून ही विवे-
कियों की नज़र में रह
जाय। जैनेन्द्र जी के
कथन में खुश होने की
बात यह है कि
वह 'उग्र' को
हिलने देना
नहीं चाहते।
'उग्र'

मुखड़ा

'फागुन के दिन चार' में तीस-पैंतीस बरस पहले की फिल्मी दुनिया की एक खेद-जनक कहानी है—लेकिन इस कहानी का सार आप बम्बई के विख्यात इंगलिश साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' के गत कल (१९-१२-५९) के अक के बाइसवे पन्ने पर पढ़ सकते है। यानी ? यानी पिछले तीस-पैंतीस बरसों मे कला-रहित पापाचार की नजर से फिल्म ससार में सुधार मुतलक नही हुआ है। अतएव इस सस्मरणात्मक उपन्यास की आवश्यकता बिलकुल ऊपर उभर आती है।

ब्लिट्ज मे जो छपा है उसका भाव उग्र की भाषा में यो है—

सो, नाम और नामा की भूखी नयी-नयी फिल्म-स्टार, जवान-जवान लडकियाँ सिनेमा-ससार के कुचक्र मे चचल चली आ रही है। वैसे ही, जैसे दुष्ट, बदनीयत मकड़े के जाले में मक्खियाँ खिची हुई जाये।

ये नवेलियाँ नाम कमाती है, नामा भी। लेकिन यह सभव होता है खासी कीमत चुकाने ही पर। वह कीमत ऐसी बुरी होती है जो भल-मसाहत की हद मे अदा की ही नही जासकती।

जियादातर ये नवेलियाँ होश मे आती है तब जब 'चिडिया चुर्ग गयी खेत' की स्थिति सर पर आ जाती है। तब इन्हे पता पडता है कि फिल्म-ससार के गुरुओ का मकसद है उन्हे सर्वगुण-सम्पन्न बनाना। इस सर्व मे कई ऐसे गुण भी जिनकी चर्चा पब्लिक में खुल कर की नहीं जा सकती।

वह क़ाम जिसकी कामना कामिनियो से की जाती है फिल्म स्टू-डियो की ड्यूटी के बाद शुरू होता है। यह कहना बेकार है कि उस काम का फिल्म-कला से कोई भी सम्बन्ध कदापि नही होता।

ये स्वयभू फिल्म-स्टार-विधाता समझे-बूझे चारे या बहकावे देते है कि नटी का नाम-नामा वाला सुनहरी सपना सच होगा। नटियाँ पाप-पक मे जबतक सर्वथा जकड़ नही जाती जान ही नही पाती कि सुनहरी सपना तो नारकीय दु स्वप्न बन कर रह गया है।

जितने दिनों यह कुचक्र चलता रहेगा उतने दिनो तक ऐसी प्रतिभावाली नवयुवतियो का फिल्म-ससार में प्रवेश नामुमकिन ही रहेगा जो नाम और नामा की चाहनेवाली होकर भी मार्केट-रेट से फिल्म-मार्केट की यह भीषण भूख मिटाने की अनिच्छुक होगी। परिणामत ऐसी नटियो से फिल्म-लाइन पट जायगी जो घर-की-होगी न-घाट-की।

यहाँ तक 'स्टार' निर्माताओ के कुकरतबो की कथा; पर, जरा तारिकाओ की तरफ भी तो ताके, कि ये बज़ाते-खुद क्या है। इनकी करतूतो की कहानियाँ भी कम कदर्य नही।

कैसा सर्वनाश है कि मात्र एक फिल्म में काम करते ही नयी-नवेली नटी की कीमत तिल से ताड, राई से पहाड हो जाती है। कमनीय-कला शर्म से सकुचित खिड़की से हवा हो जाती है तब जब मोल-तोल के ब्लैक भाव-ताव सुन्दरी के सदर दरवाजे से अन्दर दाखिल होते है।

फिर तो मामले का मुख्तसिर रह जाता है—रुपया, रुपया, रुपया। रुपया आदि, रुपया मध्य, रुपया अन्त, रुपया अनन्त। इसके बाद कला की नजर से छोकरी होती हुई भी कलदार या नगद नारायण की नज़र से नमकीन नटियाँ बूढी नानी बन जाये तो हैरत ही क्या।

तो बेशक यह परिस्थिति बाहर बरदाश्त है—बिलकुल। यदि देश की अभिनेत्रियाँ इसी आत्म-विनाशी, आर्ट-विनाशी, राष्ट्र-विनाशी, सत्या-

नाशी आबोहवा में पलती रही जिसमें लोभ, दुराचार सोना और रूपा का वह पातक-मोह महान है जो ईमानदारी और सदाचार की सारी सीमाएँ लाँघ जाता है।

यहाँ तक तो 'ब्लिट्ज' से—साभार। अब एक निवेदन मेरी ओर से। मुमकिन है कुछ पाठक 'फागुन के दिन चार' में अश्लीलता भी सूँघें। उनसे मेरा आग्रह यह है कि वाल्मीकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड मे ब्रह्मचारी हनुमान द्वारा महात्मा रावण के विलास-भवन का वर्णन कृपया वे पढें और फिर (अपने जीवित या मृत बाप की कसम खाकर) बतलाएँ कि 'उग्र' की लेखनी सनातन-धर्म ती मर्यादा में है, या नही ?

इस उपन्याम में कुछ अच्छा हो, तो उसकी बधाई दैनिक 'विश्वमित्र' के मालिक, सरस-शैली-सम्पन्न सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल को दी जाय। क्योंकि उन्ही के आग्रह पर 'विश्वमित्र' के लिये मैंने इसको शुरू किया था। पचीस वर्ष यानी चौथाई शती बाद 'उग्र' का यह सम्पूर्ण उपन्यास प्रकाशित हो पाया है, अतः बधाई के पात्र प्रकाशक, मुद्रक 'रणजीत प्रिंटर्स' भी कम नही है।

और अभी मै दर्जनो उपन्यास हिन्दी-पाठको को दूँगा। और—अभी तो मै जवान हूँ।

क्रिसमस, १९५९,
दिल्ली प्रवास।

—पाण्डेय बेचन शर्मा, उग्र

हिन्दी कथा-साहित्य से

('प्रसाद' रचित) 'कंकाल' में व्यभिचारियो की कथा है। यही विषय 'उग्र' जी के भी उपन्यासो का है। तारा और यमुना की जो जीवन-गाथा है वही 'दिल्ली का दलाल' की भी कथा है। 'उग्र' जी ने स्पष्ट कहा है कि यदि कोई माई का लाल सत्य के तेज से मस्तक तान, यह कहने का दावा करे कि तुमने जो कुछ लिखा है, समाज में ऐसी घृणित, रोमाचकारिणी, काजलकाली तसवीरे नही है, तो मै उसके चरणो के प्रहारो के नीचे हृदयपाँवडे डालूँगा। पर उनकी कथाओ के सम्बन्ध मे कहा गया है कि उनके वर्णन की शैली रस-लोलुप-शृ गारिकता से पूर्ण है। उसमे जो कलुषित व्यापार प्रदर्शित हुए है वे अनुचित, वासनापूर्ण तथा उत्तेजक है। 'ककाल' को भी पढकर श्री कालिदास कपूर जी का भी यही विश्वास हो गया था कि अश्लीलता फैलाना 'ककाल' का उद्देश्य है। किन्तु श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है कि वे हिन्दी उपन्यासो की छिछली धारा में ही तैरते रहे। देखना यह है कि अश्लीलता स्वय साध्य बनी हुई है या साधन बनकर किसी अन्य लक्ष्य की ओर हमें ले जाती है। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि 'ककाल' मे व्यभिचारो की जो कथा है, वह समाज के अत्याचारो की और पाखडो की कथा है। समाजपीडा, दम्भ, दुर्गुणो का भडाफोड, नकली और खोखले आदर्शो की निस्सारता, अनर्थकारी बन्धनो की जटिलता के प्रदर्शन पग-पग पर करते है। समाज का यह रूप देख कर हम आशकित और क्षुब्ध होते है, पर, अश्लीलता की शिकायत नही करते। अश्लीलता की यह व्याख्या विज्ञ-जन ही कर सकते है। हमारे समान

साधारण पाठको के लिये व्यभिचारो की कथा व्यभिचारो की ही कथा रहती है।

उपन्यासो की कथा-वस्तु कैसी भी हो चाहे वह सदाचार की शिक्षा से पूर्ण हो अथवा दुराचार के वर्णन से युक्त हो, पाठको के लिये तभी उनके प्रति आकर्षण होता है, जब उनसे उनका मनोरजन होता है। मनोरजन में जितनी ही अधिक वे जीवन की यथार्थता पाते है, उतना ही अधिक उनके पात्रो की ओर उनका आकर्षण होता है। नीति की शिक्षाओ और समस्याओ की उलझन से उन्हे सतोष नही होता। 'उग्र' जी के यथार्थ चित्रण मे अश्लीलता की जो चर्चा की जाती है, उसमें भी वह साध्य नही, साधन ही है। 'तोता-मैना' की कहानियो मे व्यभिचार का वर्णन साध्य नही, साधन ही है। यह सच है कि सिनेमा के चित्रो की तरह साधारण जन व्यभिचार की कथाओ को पसन्द करते है। इस सम्बन्ध में बर्नाड शा का एक कथन मुझे याद आया। उनका कथन था कि आप ऐसी किताबो को पढिये जिनमे आपकी दुष्प्रवृत्तियाँ खूब उत्तेजित होकर एक कल्पित राज्य मे जाकर आप-से-आप नष्ट हो जायँ। कुछ भी हो, इसमे सदेह नही कि 'कंकाल' की सभी घटनाओ मे वह यथार्थता नही है, जो 'उग्र' जी की रचनाओ मे है।

मुझे तो 'प्रसाद' जी के दोनो उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामी जी के उपन्यास के आधुनिक सस्करण मालूम हुए। उनमे विचित्र घटनाओ का समावेश है। उनमे न 'उग्र' जी की यथार्थता है और न जैनेन्द्र जी की कला-कुशलता है जो रहस्यमय मनोजगत का आभास देती है।

आधुनिक कथा-साहित्य मे सबसे अधिक विक्षोभ की भावना उत्पन्न की 'उग्र' जी ने।

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

: १ :

विश्वनाथ जी के मन्दिर के स्वर्ण-कलश पर अस्ताचलगामी अंशु-माली की हिरण्य-उज्वल किरणे जैसे दिव्यता बरसा रही थी। कमसे कम उस पार प्राय स्थिर खडी नौका पर विजया की तरग मे प्राय स्थिर-भाव से बैठे लीलाधर कत्थक के भावुक-मन को ऐसा ही लग रहा था। उसने दोनो हाथ जोड मन्दिर के दिव्य-कलश को पहले नमस्कार किया और फिर टीप-स्वर मे—सन्नाटे मे मीलो तक सुनायी पडे ऐसे स्थिर, अकपित स्वर मे—आवाज लगाई

"म हा दे व !"

इस पर निपटनें वालो की खडी सैंकडो नौकाओ से वही आवाज प्रति-ध्वनित हुई :

"म हा दे व !"

और उस पार यानी काशीवाले तट पर अस्सीघाट से राजघाट तक महान मायामय मोहक मेला-सा फैला हुआ ऐसा लगता था जैसे आनन्द, उल्लास और रस की नौका-वाहिनी-सेना ने बनारस पर चढाई कर दी हो और उसे गुदगुदा गदगदित कर दबोच-सा लिया हो। कितना रंग-विरगा मेला मालूम पडता था जैसे सान्ध्य-गगन से उतर कर इन्द्र-धनुष काशी के कण्ठ में हसीन हँसली-सा सुशोभित हो गया हो। चारो तरफ तटपर, नौकाओ पर, अनन्त दीप-राशि-यो

जगमगा रही थी जैसे गगन मगन के अगन सितारे विश्वनाथेश्वरी की शोभा देखने को उतर आये हो। कोलाहल यो हो रहा था मानो राजा के घर महाराजा की बरात आई हो। पचासो पटी हुई नौकाओ पर नाच-गान का विधान, रग-रग के मनोरजन का सामान रोशन चौकी, शहनाई, वेश्याओ का नाच, कत्थको का नाच, भॉड, नौटकी और सब के ऊपर काशी की गजब गले-बाज गायिकाओ का गन्धर्व-विमोहक-गान। उस पार इतना आकर्षण था, इतना कि इस पार निपटने वालो की नौकाओ के रसिया बनरसिया अनायास ही उधर खिचे जा रहे थे : जैसे शक्तिशाली चुम्बक से लोहे के चूरे आकर्षित हो। छानते, निपटते, नहाते उनके महामोही प्राण मेले मे ही थे। उस साल के बुढवामगल मेले का वह अन्तिम मगल और मेला था।

"क्यो गुरु लीलाधर !" तट से आवाज आयी—मै लिख चुका हूँ। लीलाधर कत्थक स्थिर नौका पर था—"गुरुओ से गुरुआई ??"

"नही गुरू !" लीलाधर ने आतुर आकर्षित हो कहा "महामाया आती ही होगी। झूठ मैने नही कहा था।"

"महामाया ? यह महामाया कौन-सी बला है रे बाबा ! कल तुमने उसका नाम महारानी या रानी बतलाया था ?"

"वही—वही नाम है उनका गुरू जी !" लीलाधर ने दृढ़ता से सुनाया "मै तो आदर-भाव से उन्हे बराबर महामाया ही कहता हू। तब से जब वह आठ साल की निरी बच्ची थी। तभी से मै रानी का सगीत-शिक्षक रहा हूँ और जब वह खासी स्त्री हो गयी है तब भी मै उनका गुरुपदाधिकारी ही हू।"

"अच्छा सच बतलाओ लीलाधर ! तुम गगा मे खडे हो.. " तटवाले ने ताबडतोड पूछा "तुम लोग जब लडकियो की जवानी तक गाना सिखलाते हो..."

"मै तो नाचना भी सिखलाता हू—आपकी कृपा से—गुरू महाराज... !"

"वह भी सही—मै पूछता हू लीलाधर! तुम औरत के आकर्षण से पाक रह जाते हो ?"

"नही।" दृढता से लीलाधर ने कहा "ऐसा प्रश्न गगा नही जमीन पर भी गुरु महाराज आप पूछते तो लीलाधर झूठ न कहता।" वह नौका से तट की तरफ उतर चला "लेकिन मै गगा से बाहर निकला आ रहा हू, इस भय से कि आप न जाने क्या-क्या सवाल गगा की साक्षी मे करे।"

"समझा !"

"हमारा तो गुरू महाराज खुला खेल फरुक्खाबादी है। हम चरित्र के व्यवसायी नही, रस के चाहक-गाहक है। चरित्र तो आप ऊँचे पडितो का शेवा है। कत्थक चरित्रवान हो भी तो व्रतधारी बिलाड की तरह कोई मानेगा नही। हम जब ऐसी महामायाओ को सिखाते है तब एक अलिखित समझौता-सा रहता है। कि शिष्या गुरू की पलँग-सेवा तक करेगी—और बस—पैसे 'ऐसियो से' गुणी कत्थक कदापि नही लेते थे। कैसी कमायी। आखिर हम लोग भी ब्राह्मण है ऐरे-गैरे नही।"

"ब्राह्मण—और कत्थक ?"

"इतिहास बतलाऊ ? आप तो कालेज-पास है!" लीलाधर ने सतेज परन्तु प्रसन्न भाव से सुनाया "कत्थको का आरम्भ गुजरात के भट्ट ब्राह्मणो से, अकबर बादशाह के वक्त से माना जाता है। इन मे कुछ लोग स्वाँग किया करते थे और स्वय को नागर कहा करते थे। दूसरे कत्थक अपने को नर्तक बतलाते किन्तु अकबरी दरबार मे जिन्हे स्थान मिला वे कत्थक 'भटनागर' कहलाते थे। भारत मे जितने भी नर्तक है अपने को ब्राह्मण ही कहते है। मै पूछता हूँ नाटय-शास्त्र के विख्यात

भरतमुनि कौन थे ? शूद्र ? वणिक ? क्षत्रिय ? ना ना ना गुरू महाराज !"

"थे भरतमुनि देशके बडे महान आचार्य, पर, उनके समयके गभीर, विवेकी ऋषि-मुनि उन्हे 'कुछ कम मुनि ' मानते थे.. ।

"कुछ कम मुनि ?"

"जैसे गाय के दूध के मुकाबले मे भैस का दूध 'कुछ कम दूध' माना जाता है—मैने बाबूजी के मुँह से सुना—उसी तरह भरतमुनि मुनियो द्वारा 'कुछ कम मुनि' माने जाते थे ।"

"क्यो ? भला ? ?"

"क्योकि वह—बाबूजी ही से सुना—छिछली, चचल, भ्रामक कला के अद्भुत आख्याता थे ।"

"मुनि ? सस्कृत की एक कहावत पडितो से सुनी है कि..."

"कि ?"

"नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम् ।"

"खूब ! वाह जी लीलाधर जी !" तटवर्ती मित्र ने प्रसन्न प्रशसा की "तभी तो मैं तुम्हारा मुरीद हूँ—बात करे तो लीलाधर जी की तरह। सरासर सच बात । ऐसा कोई मुनि याने मानव नही जिसका वचन वेद-वाक्य माना जाय--सो अत ..."

"जी गुरू महाराज !"

"हर आदमी को स्वयमेव मुनि बनकर, मजे मे मनन कर, ससार समस्या का हल निकालना चाहिये !"

"क्या बात कही है !"

"पर, यह भी बाबू जी ने कहा था। खुद मै मुनि बनने से जहर खाना बेहतर मानता हू । यह जिन्दगी मुनियो की नही मौजियो की—मै-तो मानता हूँ । ऐसा न मानता होता तो तुम्हारे रसीले वादे की

बसी मे पियासी मछली-सी उलझ कर उस पार से इस पार महामाया उर्फ रानी के दीदार को हकसापियासा चला न आता ।"

इसी समय एक छोटी डोगी उन्ही की तरफ आती नजर आयी । बातो ही बातो मे बहुत वक्त बीत गया—लीलाधर कत्थक को लगा--मेला कितना घनघोर हो चला है ! चाँदनी कितनी साफ—जैसे ठडीधूप ! !

"लीजिये !" लीलाधर ने निकटस्थ तरुण से कहा "महामाया आ गयी ।" तब तक डोगी किनारे आकर रुकी । उस पर दो ही व्यक्ति थे, एक पुरुप, दूसरी स्त्री । पुरुष डाँडे पर था । स्त्री ने गर्दन घुमा लीलाधर की तरफ मधुर देखा—लीलाधर को लगा जैसे चाँदनी मधुरतर हो गयी । उसने निकटस्थ तरुण से कहा !

"लो गुरू ! चितवत पन्थ रहेउ दिन राती, अब इन्हे देखि जुडावहु छाती ।"

"येन के हयन (यह कौन है ?)" बनारसी-बोली में स्त्री ने तरुण के बारे मे लीलाधर से पूछा ।

"तेरी रियाया से परवरदिगार हम भी है ।" जवाब तरुण ने दिया किंचित निर्लज्ज, प्रथम परिचय के नाते जरा ढीठ, लेकिन नौका से नीचे उतरती शुक्ल-सिल्क-वसना उस रमणी को तरुण की ढिठाई बुरी नही लगी । वह चाँदनी मे उसका चेहरा चित्त लगा कर देखने लगी । लम्बा, साँवला, बडी-बडी विवेकानन्दी ज़ुल्फे, नेत्र बडे, ओठ-बडे, रसीले, नरम चाँदनी मे वह जवान उस रमणी को गरम फौलाद का बना-जैसा मालूम हुआ ।

"यह ?" बनारसी ही बोली मे लीलाधर बोला "इन्ही के बारे में न मैं तुम से बार-बार कहा करता था । भदैनी के मशहूर पडित महाराज वे यही तो है जो कुछ है । तुमने भी इनका लम्बा-चौडा मकान जरूर देखा होगा । सारी काशी मे इन लोगो से बडा ब्राह्मण दूसरा कोई नही ।

- "महाराज पायलागी !" स्त्री ने मधुर मगर बनाने के स्वर में तरुण से कहा।

"पति की बढती हो !" हाथ उठाकर आर्शीवाद के लहजे में तरुण बोला।

"और पति हो ही नही तो ?" ढीठ और आकर्षित औरत ने पूछा।

"तब तो टेढी समस्या। ब्राह्मण के मुख से पति निकल गया तो पति होना ही चाहिए। कथा सुनी होगी तुलसीदास को किसी सद्य विधवा ने चरण छूकर प्रणाम किया था और उनके मुख से निकल गया था सौभाग्यवती हो !"

'हाँ साहब !" बीच मे बात झपट कर लीलाधर ने ब्राह्मण की स्तुति की "ब्राह्मण में बडा सत्त, बडा तेज होता था। गोस्वामी जी की बात झूठी नही हुई, विधवा का पति अरथी से उठ बैठा था।"

"वैसे ही" तरुण ने पुन ढीठ और निर्लज्ज-प्राय बात बनायी "जब मेरे मुख से निकल ही गया तब जब तक मै हू इन्हे पति की कमी नही होने पायेगी।"

"मगर कोई स्त्री पति को विपति मानती हो—तो ? वह आपका आशीर्वाद लेकर नाचेगी कि गावेगी ?"

"खेद है, अब तो ब्राह्मण के मुख से निकल गया—होकर रहेगा।"

"क्या ?" स्त्री ने सरस पूछा।

"कि मै देखू कि मेरी बात सच हो . ।"

"क्या ?"

"कि आपको पति की कमी . ।"

"चलो चचा !" नौका पर बैठे तीसरे मर्द ने लीलाधर से कहा "पति-पत्नी के बीच मे हमारी यहाँ क्या जरूरत है। कहता हूँ तो

बाई जी बुरा मानती है। साढे सात बजे राजा साहब कटेसर के डोगे पर पहुँचने की साई है—आठ बज गये और अभी...।"

"बात गोपाल की ठीक है—भले जरा कर्कश लहजे मे कही हुई कही जाय। चलती है बेटे। इन्हे किसी भी मजलिस मे वक्त पर पहुचते कभी देखा है ? मनस्विनी—महा—क्यो महामाया ?"

"मेरे लिये जरा ठढाई नही रखी है, क्या ?"

"है न ? दो गुरू ! आज अपने ही हाथो महामाया को ढडाई पिलाओ।"

तरुण ने पात्र से पुरवा मे डाल कर ढडाई रमणी के आगे पेश की।

"इसमे भग है कि नही ? जरा-सी..।"

"तुम्हे गाना है, गाफिल हो गयी तो ?" लीलाधर ने वर्जन-जैसा विचारा।

"जरा-सी। कईबार देखा कि जरा-सी बूटी—रग-सा बाँध देती है।"

ठडाई लेते ही तरुणी ने लीलाधर से कहा—"मै चलती हूँ। सारा सामान राजा सहाब के डोगे पर पहुँच गया होगा। तीन बजे रात का मामला है। अब इन्हे कहाँ ले जाइगा ?" तरुण को ताक कर तरुणी ने लीलाधर से पूछा—"मेरी तो यह सलाह है कि जब तक मै मुजरे मे रहूँ आप लोग बुढवामगल मेला मजे में देखे लेकिन घर न जायँ। पिछली रात मुझे मेरे घर पहुँचाने के बाद आप लोग जाये।" बुढवामगल मे सारी रात जागा जाता है—ये घर पर देर से भी पहुँचेगे तो कोई बदनामी की गुजायश नही है। बल्कि आप लोग भी राजा साहब के डोगे पर आइये।"

इसके बाद वह जरा भी न रुकी, पुन नौकारूढ हुई और गोपाल गगातरगजाल चीरता हुआ उसको काशीतट के मेले की तरफ़ ले

चला। उसके प्रस्थान के बाद लीलाधर मन-ही-मन उस तरुण का भाग्य सराहता रहा कि पहले ही मिलन मे रानी पर उसने कैसा सफल प्रभाव डाला और वह तरुण मन-ही-मन लीलाधर का भाग्य सराह रहा था कि कैसी-कैसी चिडिया उसके जाल मे प्रसन्न चहका करती है।

"वाह गुरू लीलाधर" उसने सुनाया "इसे छुटपन से तुम जानते हो ?"

"गुरू हूँ इसका तब से, जब यह आठ साल की थी।"

"और बच गए ? गगा मे कहोगे ?"

"मन से बचने की बात कहना मुश्किल है—यह साधारण सुन्दरी और गुणवन्ती औरत नही, सरासर असाधारण है। पहले तो औरत ही मर्द को खीचती है —फिर कोकिल-कण्ठी हो तो बदसूरत औरत भी मजेदार मालूम पडती है.. ।"

"मजेदार ? क्या लफ्ज कहा लीलाधर गुरू कि वाह, वाह !"

"असिल में बूटी तरग पर है, मन-तुरग रंग पर है।"

"मै समझता था—मैं ही क्या हम सभी कुलीन मानते है कि नाचना नचनियो—माफ करना—अकुलीनो का धन्धा है। पर, देखता हूँ लीलाधर कत्थक इसी धन्धे मे एक-से एक अच्छे शिकार फँसाया करते है और वह भी अनायास और वह भी आतुर।"

"यह सब तो आप ब्राह्मणो के चरणो की कृपा है गुरू! पर नाचने की कला को जो लोग नीच मानते है—मै भी क्षमा चाहूँगा—वे न तो कला जानते है और न उसकी विश्व-विमोहनी-शक्ति। बाबूजी ! यह कला कत्थको के बाप की नही, न नाचनारियो की नानी की—जितनी पुरानी यह सृष्टि है उतनी ही पुरानी नर्तन-कला है जिसमे लय, ताल काव्य, सगीत, नाटक और रग के—रग-रग के तत्व का विलक्षण सौन्दर्य सगम है। आदि नृत्य, ताण्डव और लास्य में सदाशिव के सार्वलौकिक ओज और पौरुष तथा भवानी के लावण्य और कोमलता का प्रतीकात्मक

समन्वय है। श्री कृष्ण की रास मे सब कुछ छोड प्रियतम की भक्ति मे लीन होने का शाश्वत सकेत, सदेश है।"

"वाह लीलाधर जी वाह !" तरुण ने लीलाधर के कथन की दाद दी जिससे और उत्साहित हो लीलाधर नृत्य-कला के बारे मे अपना परिज्ञान प्रगट करने लगा।

"नचनियो का धन्धा यह दिव्य-कला कदापि नही। इसका पुराना शास्त्र है, पद्धतिया है, शैलिया है, भेद-उपभेद है। नृत्य-कला केवल कूल्हे हिलाना नही है। ३१ तो ताण्डव के प्रकार है, १२ लास्य के—पढा है शास्त्र किसी ने? की है सगत किसी ने ? इन्ही ताण्डवो और लास्यो और रासो से सारे देश या विश्व मे नृत्य के विविध भेदोपभेद फैले। हमारे देश में देश, काल और सस्कृति के अनुसार नृत्य-कला के चार प्रमुख शास्त्रीय-भेद किए गए है और व्यवहृत है—भरतनाट्यम, कथकलि, मणिपुरी और कत्थक अथवा नटवरी-नृत्य.. ।"

"नटवरी-नृत्य—कैसा ?"

"नायक के अग के जो नृत्य होते है उन्हे नटवर-नृत्य तथा नायिका के अग के नृत्यो को नटवरी-नृत्य कहते है।"

"कुछ भी हो—नृत्य शकर से निकला हो, श्री कृष्ण से प्रतिपादित हुआ हो, अर्जुन द्वारा समर्थित भी हो, पर, कत्थको की कोई इज्जत नही—शायद इसी लिए 'नचनियाँ'शब्द अपमान की सडक पर सनका हो।" तरुण ने छेडखानी की अदा मे लीलाधर से कहा। पर लीलाधर गम्भीर था।

"यह आरोप बहुत हद तक ठीक है कि वर्त्तमान मे कत्थक कोई आदरणीय शब्द नही रह गया है। इसका कारण कत्थको का नैतिक, चारित्रिक पतन ही है। कलाकार की इष्टदेवी केवल कला—मात्र कला। यह कला कामिनी बडी जलने वाली है, अपने मुकाबिले किसी को भी बर्दाश्त नही करती। 'या मे दो न समायें'—सरासर सच है। कत्थक

जब तक हरि-कथा-कथक, कीर्तक थे उनकी नृत्य-कला-साधना भक्ति-विभोर होती थी। वह भगवान के आगे नाचते थे न कि साधारण इन्सान के। जिस कत्थक ने सर्वप्रथम राज-भय या धन-लोभ से देवमन्दिर त्याग राजमन्दिर मे नृत्य-चचल-चरण चलाये निस्सन्देह उसने अपराध किया। समाज के प्रति मै नही कहता, जाति के प्रति भी—उसने अपराध किया, नृत्य-कला के प्रति—ओह !"

जैसे लीलाधर को कुछ याद आया—वह सिहर-सा उठा—"गुरू महाराज, एक प्रसग याद आ गया। कहते है शाहजहाँ के जमाने की कथा है। उन दिनो श्रीनाथद्वारा मे चन्दा जी नाम के एक कत्थक विराजते थे जिनकी नृत्य-कला की सारे देश मे ख्याति थी। पर वह सिवाय श्रीनाथ जी के दरबार के और कही अपनी कला दिखलाते ही नही थे। उच्चकोटि के भावुक-साधक थे। उनकी प्रशसा जब बादशाह के कान में पडी तब उसी वक्त उन्हे बुलावा भेजा गया। पर उन्होने श्रीनाथ जी के सामने किसी और को नाथ मान माथा झुकाने से सविनय अस्वीकार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि बादशाह ने उन्हे बलात्कार दिल्ली बुलाया और नृत्य दिखलाने का इर्शाद किया। "गुस्ताखी तेरी बडी" बादशाह ने फर्माया "बम्भन ! फिर भी तू एक बार नाच कर दिखा दे तो मै तुझे बेशक बाखुशी बख्श दूँगा। वर्ना ..वर्ना ..।" पर चन्दाजी महाराज "लीलाधर ने बुजुर्ग के आदर मे कान छुये" टससेमस न हुए और राजरोषाग्नि मे जल-बल गये। वह थे कत्थक ! शायद वही आखिरी कत्थक रहे हो। इसके बाद भय से, लोभ से लोग वही हो गये हो जो हम लोग रह गये है।"

"क्या रह गये है ?"

"समाज को भोग मे प्रवृत्त करने वाले—समाज के भोग की वस्तु...।"

"भई वाह लीलाधर ! मै इसीलिये तो पक्ति ब्राह्मण होकर भी तुम्हारा मुरीद हू—क्या बात करते हो कि मोती की दाने आबदार ला-जवाब ! ऐसी बढिया बाते कि विजया के तरग मे भी—कितनी देर हुई—ओहो ! मैने एक चौघडा पान तक नही जमाया! न तुम्ही से पूछा।"

"हॉ, समय काफी हो गया। मेला जम गया है, दशाश्वमेधघाट पर आतशबाजियाँ छूट रही है—सुनिये ! यह टीप—यह गला—यह आवाज—बतलाइये किसकी है ? यह बडे रामदास महाराज का मयूर-मोहक कण्ठ है। आज बाबू जगमोहनदास के डोगे पर ८ से १ बजे तक उनका गायन होगा। कितने बजे होगे ?"

"नौ से तो कम नही।" लीलाधर को पान का चौघडा पकडाते हुये तरुण ने कहा। साथ ही त्वरित दोनो अपनी नाव पर आ रहे, दोनो डॉडे चलाने को आतुर। जीत हुई तरुण की—"तुम आराम से बैठो लीलाधर ! कोई अच्छी चीज सुनाओ—मै खेता हू। यह बजडा—देखते हो सामने ?—इस तट पर क्यो आ रहा है . ।"

"जुआडियो का बजडा मालूम पडता है।"

"मेले मे जुआडियो के बजडे भी है।"

"बीसियो—लाखो रुपये का जुआ हो जायगा।"

"खेलते कौन है ?"

"जिन के पास जियादा माया है। अधिक रुपये यो तो भोग की तरफ प्रेरित करते है, या द्यूत की तरफ या दोनो ही तरफ। अधिक रुपये हर तरफ प्रेरित करे पर उत्तम दिशा मे बमुश्किल प्रेरित करते है। पक्के महालो के सौ-सौ खत्री, अग्रवाल, गुजराती जो प्रकट धन्धो से सहस्र-सहस्र रुपये उपार्जित करते है उन्ही का अधिकाश जुओ के अड्डो पर, शराबखानो मे और बाइयो के कोठो पर नजर आता है।

"इन्हे पुलिस पकडती नही ?"

"ये जुआडी पुलिस की आमदनी के प्रौढ साधन है। जुए पुलिस की जानकारी मे होते है—अक्सर कोई 'बडा' व्यापारी या गुण्डा ठेका-जैसा लेता है पुलिस वालो से—हजारो कलदार नकद देकर। पुलीस वाले शहर के सभी जुआडियो-बदमाशो को जानते है। पकडते तभी है जब उन्हे उनका भाग नही मिलता। आप उसी बजडे की तरफ नाव खेये जा रहे है!—ऐसा नही! मेरी तो इन गुण्डो—धन के लिये खून तक करने वालो की चर्चा से भी रूह कॉपती है—इधर चलाइये—गुरूजी! हाथ जोडता हूँ—मेरा जमा-जमाया नशा उखड जायगा। हाँ—इधर से मेले की तरफ चलिये—आज आखिरी मगल का अन्तिम मेला है। पैसेवालो और शौकीनो की बडी-बडी पटी नावो पर एक-से-एक खेल तमाशे होगे। आज—मेरी तो सलाह है कि पहले अस्सी घाट की तरफ चले फिर उधर से धीरे-धीरे महा-मेले का अवलोकन करते हुये जल-मार्ग से राजघाट तक आये।"

"मगर तुम गाओगे नही, तो मुझ से नाव खेयी नही जायगी—समझ लो लीलाधर—हाँ—रहे...एक।

"एक दिन मुरली स्याम बजाई !"

लीलाधर ने अद्भुत कण्ठ से शुरू किया :

"एक दिन मुरली स्याम बजाई,
मोहे सुर, नर और सकल मुनि, उनै बदरिया आई।
जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयौ चलै नही जु चलाई,
गाइनिके मुख दाँतनि तृन रहे, बच्छ न छीर पिवाई।
द्रुम-बेली अनुराग-पुलक-तनु ससि थकि निसि न घटाई,
'सूरदास' प्रभु मिलिवै कारन चलीं सखी सुधि पाई।
एक दिन मुरली स्याम बजाई !"

"वाह! भाई लीलाधर वाह! जी करता है कि तुम्हारा गला काट ले।"

"यह अच्छा 'जी' का नमूना बतलाया गुरू महाराज! पर झूठ नही है। इन्सान का यही शाश्वत भाव रहा है कि जिसे सुकण्ठ पाना उसका गला काट लेना। यानी अनजाने सुन्दर को असुन्दर कर छोडना। खैर। यह पद मैने खासतौर से आपको इसलिये सुनाया है गुरू महा-राज! कि आप का ध्यान सगीत की शाश्वत-शक्ति की तरफ आकर्षित हो। सूरदास जी गाते है—एक दिन श्रीकृष्ण ने मुरली बजाई ऐसी कि देवता, मानव और ऋषि-मुनि नाद-ब्रह्म-लीन हो गये। अकाश मे घाच्छन्न हो गया। यमुना का प्रवाह ही स्थगित हो गया ऐसा कि चलाये न चले। गायो के मुख मे दाँतो से दबी दूब जहाँ-की-तहाँ रह गयी। इतना ही नही, वे अपने बछडो को दूध पिलाना तक भूल गयी। द्रुम और लताएँ फूल-फूल उठी। चन्द्रमा थम गया। रात रुक गयी और रसिक बिहारी से मिलने कोमुरली वाद से सवाद पाते ही सखियाँ लहराकर मधुवन की ओर चल पडी।"

"वाह, वाह! लीलाधर, तुम कथा कहा करो—कथकई से कथा-कही मे कम आमदनी नही है।"

"गुरू महाराज कत्थक माने कथावाचक, कीर्तनकार ही है। कथा के कण हमारे परमाणु में निहित है।"

अब उनकी नौका अस्सीघाट के मेलो के निकट आ गयी जिससे सहसा आपसी बाते बन्दकर वे मेले की तरफ आकर्षित हो गये। इधर भी घाटो पर बनारसियो और दस-पाँच कोस निकट के ग्रामीणो की ; बच्चो, स्त्रियो, जवानो, बूढो की, अमीर, गरीब तथा मध्य-वृत्ति वालो की; गृही, वैरागी और सन्यासियो की, आनन्दी, भोगी और रसियो की भीड बहुत थी। पर पटी हुई, सजी हुई नौकाएँ दो ही तीन थी। एक सुरसड के राजाकी, एक भदैनी के धनिक खजाची साहब की और एक जग्गू पहलवान गुण्डा सरदार की। रोशनी अच्छी थी सुरसड के पटे डोगो पर, खान-पान की चहल पहल थी खज़ाँची साहब के डोगो पर लेकिन हा हा

हो हो हाहाकार जो मेले की जान मानी जाती है जग्गू पहलवान के डोगो पर थी। वहाँ बनारस के मशहूर लावनीबाज प्यारे उस्ताद की निर्गुणी-लावनी लहरा रही थी खजडी, मुरचग, मजीरे पर और सैकडो गहरेबाज बनारसी रगपत्ती से टिचिन झूम झूम कर रस ले रहे थे। लावनियाँ अनपढो के मनोरजन के ये कही या गायी जाती थी पर उनमे पूर्वीय-दर्शन का सार निहित होता था।

नही रहे वो दारा सिकन्दर
दो दिन की अफसरी रही.
चले गये सब मुल्के-अदम को
ना खुश्की ना तरी रही

तुलसीघाट पर अनेक उत्साही जन-रामायणी एक डबल डोगे पर रामायण गा रहे थे, उस अदा से जिसे यो अदा किया जाता है—ये हाँ ाँ ाँ ाँ आगे चले बहुरि रघुरा ा ा ा ई ई ई ई ई। ये हाँ ाँ ाँ ाँ ाँ रिष्यमूक परबत नियरा ा ा ा ा ई ई ई ई ई। भदैनी और शिवालय घाटो पर कोई खास उत्साह नजर नही आया। बीच के अन्य घाटो पर भी मेला यथा पूर्व ही था। अलबत्ता दशाश्वमेध घाट की शोभा, भीड और तमाशे विशेष थे। यहाँ ऐसा लगता था जैसे नौकाओ का रूप धर दीपावली गगा की तरगो पर पूर्ण चन्द्रोज्वल रात मे रग-रग से नाच रही हो। दर्जनो डोगो पर नाच गान चल रहा था। काशी की एक से एक मश-हूर गणिकाएँ अपनी अलौकिक कला दिखला रही थी। सारगियाँ गजब गुनगुना रही थी, तबले ठनक रहे थे। गाने पक्के ध्रुपद के अग के नही—जोरधुन पर थे आचलिक धुनो के सुरस धुनी। चैता, माँड, काफी, सारग, दादरा, गजल जैसी हलकी-फुल्की धुन-रागिनियो का बोल बाला था। लीलाधर डोगो पर गाने वालियो का परिचय उस तरुण को बराबर देता जाता था यह शाहजादी है—गाने से अच्छा नाचना जानती है। उस सामने वाले डोगे पर जो गायिका रसभरा गान गा

रही है काशीबाई उसका नाम है। दुबली-पतली, नाजुक नाजनी। पान खा ले तो गले मे लाल लकीर नजर आने लगे। पर गला---कसम शारदा की काशीबाई का कण्ठ नहीं है, स्वर-ही-स्वर है। ऐसा सुच्चा सुर लगाती है कि चतुरो का चित्त चक्क हो जाता है। हँसोगे गुरू महाराज लेकिन काशी बाई जब भीम पलास का आलाप करती है—मारे आनन्द और उल्लासके मेरी आँखो से आँसुओ की झडी लग जाती है। क्यो, गुरू ऐसे आनन्दाश्रु कभी आपके भी अनुभव मे आये है ?"

"मेरी आखो मे कडवे धुएँ और किरकिरी के सिवाय किसी भी हालत में आँसू नही आते।"

"कभी-कभी रोने मे भी अकथनीय आनन्द होता है गुरू. क्या राय है आपकी ?"

"छि !" तरुण ने ताव से कहा—"आँसू और रोदन ये दोनो धन्धे सनातन काल से औरतो के लिये बिशेषतः छाँट दिये गये है। बन्दा तो हर हालत मे हँसने का हामी है।"

"हँसने मे निर्दयता-सी, कठोरता-सी, अहकार-सा, अज्ञान-सा लक्षित होता है।"

"लीलाधर ! लगता है तुम्हारी बूटी उतर चली—है न ? हँसी हा हा हा हा दिव्य-वस्तु है। किसी भी कीमत लेने योग्य।"

"किसी भी कीमत...? हँसी ?"

"विश्व—यानी सारे जगत को रुला कर भी मुझे एक हा हा हा हा कारी हँसी—ऐसी हँसी जिसकी हवा से आँखो मे पानी आ जाय—मिले तो मै तो महा-मूल्यता न देखू और आव देखू न ताव ले ही लू।"

"और आँसू ?"

"मूज़ी के लिये छोड दू।"

"अरे नही, गुरु महाराज ! रोने मे बडा मजा है—बच्चे इसी लिए रोते है कि रोने मे उन्हे आनन्द प्राप्त होता है। बड़े चट होते है

सभी बच्चे—हाँ—मज़े की परख में। वे यों रस ले कर न रोते यदि रोदनमे सर्वाधिक शान्ति न होती।"

"मगर यह बच्चो की बात है लीलाधर जो न तुम ही न मैं। रोकर कोई दुनिया मे कुछ कर सका है कभी ?"

"सजल नैन—गोस्वामी जी की विनय सुनिये," लीलाधर ने भावुक-भाव से सुनाया "सजल नैन, गद्गद् गिरा, गहबरमन, पुलक शरीर, गावत गुनगन राम के केहिकी न मिटी भव-भीर भव-भीड छाँटने की पहली विधि तुलसी दास महाराजके अनुसार है करुण-भाव, सजल नैन।"

देखो भई लीलाधर, तुम्हारे हाथ जोडू—नशे मे तुलसीदास की चर्चा न करो। बुढवामगल—महामेला—और तुम हो कि विचारो मे अकेले ! सूप की समगाई मे कूप का राग। यह लो! यह मजेदार डोगा है लगता है मियाँ भाँडो का जमावडा है।"

"यह राजा साहब नगीनापुर का डोगा है।" लीलाधर ने बतलाया "हर साल ये रईस आतश बाजियाँ छोडाते है और लखनऊ के महामशहूर भाँड अजूबा की पार्टी को बुलाते है। बुढवामगल के सिलसिले में राय बहादुर के पचासो हजार कलदार नकद खर्च होते है। रियासत छोटी और मकरुज है...।"

"मकरूज क्या ?"

"कर्ज से लदी हुई। पर शान बडे है, शौकत बडे।

"मेरा घोडा खाता है केला ?
सरपट पहुँचता है बुढवामगल मेला।"

डोगेपर से भाडो के खयाली घुडदौड का तुक-बन्द-वर्णन मेले की में व्याप्त होने लगा। उस डोगे को सैकडो डोगियो ने घेर-सा लिया जिन पर प्रसन्न बनारसी भाँडो की कला का रस लेते थे।

मेरा घोड़ा चलता है तेज़...
ऐसा-ऐसा-ऐसा जैसा गोरा—अंग्रेज़ !
दौड़ता है बगटुट...
खाता है चाकलेट, फ्रूट, बटर, बिस्कुट ।
मेरा घोड़ा अक़्ल भी रखता है थोड़ी—
बीघो दूर रखता है अपने से घोड़ी ।
सरासर ससारी है भारी अससारी—
बछेड़े, बछेड़ियाँ फिर भी नही परिवारी ।

"अब आगे बढो गुरू महाराज !" लीलाधर ने आग्रह किया--"आधी रात हो चली । अब जरा विद्याधरी बाई जिस डोगे पर है उधर चले और उनके अद्भुत-कण्ठ से विहाग-राग सुने ।"

जैसे वह तरुण भाँडो की नकल अभी और देखना चाहता तो था, पर, लीलाधर के प्रति अन्तरग-आदर भाव से, वह रुका नही । नौका उधर ही ले—यानी खे—चला जिधर को लीलाधर ने कहा । अलबत्ता उसने घाट की तरफ लीलाधर को आकर्षित किया—

"ज़रा देखो, कैसी भीड है । दशाश्वमेध घाट पर एक-से-एक दूकाने, जिन पर लहराती रग-विरगी झडियाँ । क्रय-विक्रय, विस्मय-मय विनिमय । मध्यरात हो जाने पर भी मेले का अभी किशोर-काल । जैसे अभी ही आरम्भ हुआ हो । बच्चो के हाथ मे मिट्टी के खिलौने की लालटेने—शत-शत-शत—झिलमिल—चचल । लबे बबुओ पर कागज के खिलौने और रूई के लगूर बेचनेवाला अपनी छटा अलग ही दिखला रहा है । बनारस के खिलौने मुझे इतने पसन्द—इतने—कि दीवाली पर जितने भी पैसे मेरे पास होते है—खिलौने ही मैं खरीदता हूँ और कोई खूब खिलौना दस रुपये का भी हो तो बिना लिये नही छोड़ता ।"

"समरथ को नहि दोस.. गुरू जी..." लीलाधर ने कहा --"आपको प्रभु ने बडा आदमी बनाया है; चाहे तो सौ के खिलौने खरीदे । इसमें

कोई शक नही कि बनारस के खिलौने-साज़ बहुत ही अच्छे खिलौने सजाते है और—अक्सर—सामयिक विषयो से फायदा उठाते है।" "मेरा मन भी जब-तब खिलौने बनाने का काम करने को करता है।"

"आपको क्या कमी है ? आप धनिक-पुत्र, कालेज-पास।"

"यह भी एक ज़ोरदार कला है। लीलाधर !"

"चित्र तो आप बनाते है। मैने आपकी बैठक में कितने ही चित्र देखे है। पर, खिलौनो का भी श्रीमान को शौक है—आज ही विदित हुआ।"

"मेरे कमरे मे तुमने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बडा-सा 'बस्ट' देखा है कि नही ? वह मिट्टी का है , ऊपर से पलस्तर किया हुआ। उसे मैने कोई ढाई घटे में तैयार किया था।"

"आप गुरुओ के घराने के है .." लीलाधर ने कहा—सिद्धो के—जो न करे थोडा। बनारस मे इतने रईस के लड़के है, किसको लीलाधर कत्थक नही जानता। लेकिन भदैनी के प० रत्नशकर के नवासे मे कोई खास आकर्षण, खास सिफ्त है जो लीलाधर उसको गुरू . गुरू 'गोहराता' फिरता है। अरे ! वह देखिये ! उस डोगे के पास फौजदारी-सी हो रही है ?"

"है तो कुछ ऐसी ही बात.. । दर्जनो छोटी नावोवाले, डडे ताने, झपट-जैसे रहे है।"

"यहाँ के मनचलो की यह आदत महा बुरी है—महाराज—कि बिना फौजदारी एक भी मेला-तमाशा जाने नही पाता। कोई अच्छी गानेवाली होगी। उसी के लिये यह सब हगामा—अरे गुरू ! यह तो वही डोगा मालूम पडता है जिस पर महामाया का मुजरा होनेवाला था। जरा उधर ही चलिये तो।"

उस डोगे के निकट आने पर इन लोगो ने देखा कि उत्तेजित बनारसी गहरेबाज, मुश्क-बल्लेबाज—"काट दे लहासी ! काट दे लहासी !"

चिल्लाते उस डोंगे पर चढते जा रहे है। डोंगे ऊपर भारी हगामा मचा हुआ है।

"देखना होगा गुरूजी!" लीलाधर ने कहा—"कही महामाया सकट में न हो। मै देखता हूँ।"

"अरे तुम क्या देखोगे लीलाधर ! इस भीड में पिस जाओगे।" तरुण ने नाव के डाँडे छोडते हुए, उठते हुए कहा, "तुम नाव सँभालो ---मै देखता हूँ।"

इसके बाद उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर वह तरुण अपनी नौका से किसी दूसरी नौका पर और उससे तीसरी—चौथी पर डॉकता-फॉदता उस डोंगे पर चढ ही गया। गुण्डो ने या तो जानबूझकर अथवा डोंगे के जलसे के सयोजको से किसी बात पर नाखुश होकर धावा बोल दिया था। डोंगे पर राजा के लोगो और बनारसी मनचलो मे द्वद्व मचा था। सारे अतिथि घबराये—किकर्तव्यविमूढ थे। भागने तक की जगह नही थी। तरुण ने देखा, कई गुण्डे एक घिघियाती औरत पर झपटे। देखा, वह वही स्त्री थी जिसे थोडी देर पहले उसने ठडाई पिलाई थी। यानी रानी। और तरुण के मन में किसी दृढ निश्चय की बिजली कौंधी। किसी एक का डडा छीनकर यह चिल्लाता हुआ वह भीड मे पिल पडा कि "कोतवाल साहब पुलीस दल के साथ आ गये है—सालो! अब तुम्हारी खैर नही।" बनने की बात थी—पुलीस-कोतवाल के नाम ने भीड पर जादू का असर किया। आक्रमण भूल गुण्डे तितर-बितर भाग चले। कई तो गगा मे कूद पडे। तरुण सीधे उस स्त्री की तरफ झपटा। उस समय रानी गहनो से लदी हुई मजलिस और मुजरे की पोशाक मे थी। तरुण ने सहसा उसे अपनी लबी भुजाओ मे उठा लिया। तब तक भीड काफी छँट गयी थी। वह उसे लेकर उस डोंगे से अपनी नौका की दिशा मे चला। लीलाधर भी पीछे नही था। मौका पाकर उसने अपनी नाव

मौके पर डोगे से भिडा रखी थी। तरुण को आते देख वह उल्लसित हो उठा—"इधर, गुरू महाराज ! मैने इधर नाव लगा रखी है। यह महामाया ही है न ? ईश्वर बडा कारसाज़ है। किस मौके पर हम यहाँ आये !"

लीलाधर ने बढकर तरुण के हाथ से रानी को सँभाला और नौका पर दुपट्टा बिछाकर लिटाया।

तरुण पुन डाँडो पर आ भिडा और त्वरित से भी शीघ्र नौका वहाँ से एक तरफ चुपचाप सनक-सी गयी। रानी मूर्छित हो गयी थी।

: २ :

३० वर्ष बाद लिखी जा रही यह कथा ३५ वर्ष पहले की है। कहानी काशी बनारस या वाराणसी की है। ३० वर्ष पहले की काशी के और आज की वाराणसी के सामाजिक-वातावरण मे क्या अन्तर पडा है, कहना कठिन है। ३० वर्ष पहले काशी मे राँडे थी, साँड थे, सीढियाँ थी और सन्यासी इतने थे कि इनसे बचकर काशी-सेवन सर्वथा असम्भव था। साँड काशी मे नही है—यह मै दूर दिल्ली से अनुभव करता हूँ। वेश्या-वृत्ति-विरोधी कानून की कसाई के बाद रण्डी-वृत्ति की राँडे भी कैसे हो सकती है ? काशी-रूपी सिहासन के साँड-राँड रूपी पाये ही जब नही रहे तब सीढी-सन्यासी सलामत हो भी तो कितने अप्राकृतिक-रूप मे होगे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सीढ़ियाँ तो बची है कि पत्थर है, पर, इस कलिकाल में भी सन्यासी है (आज भी)—और काशी में यह कलकत्ते के विकराल-ब्लैक-

बाज़ारी करोडी, व्यापारी घासीराम (घुग्घूराम फर्म) की राय मे सनातन-धर्म की शाश्वत महिमा है।

परन्तु कबीरचौरा मुहल्ले के लीलाधर मिश्र कत्थक की राय कुछ और ही है। लीलाधर मेरा परम परिचित। वह उस दिन गणराज्य दिवस पर अपने किसी शिष्य के साथ दिल्ली आया था। उसने काशी की गतिविधि पूछने पर जो उत्तर दिया वह अनोखा है।

"गुरूजी !" उसने बतलाया, "रॉड गयी, सॉड गये, सीढियॉ जो है—गयी-गुजरी से भी बदतर दशा मे है। रहे, गगा नहाने जाता ही कौन भकुवा है, जब कि नल-गगा घर-घर हाजिरी बजाती है ? सो, आजके सयानों ने सीढियो का रास्ता ही छोड दिया है ! त्याग के बल बिलकुल नही और ग्रहण के बल गपागप्प—सन्यासी है भी, तो ऐसे कि कलकत्ता बम्बई के ब्लैक-बाजारी-भक्त यदि उन्हे छोड दे, तो (केचुल छोडने पर सर्प नयी चमक, नया विष पाता है, पर) स्वामी-जन ऐसे नजर आये जैसे शर्म छूट जाने पर छबीली भटियारिन—औरत !"

"भई वाह ! लीलाधरजी, तुम तो कविता कर गये। बडी खुशी हुई मिलकर। एक ही व्यक्ति जब विश्व की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है तब यदि मै यह कहूँ कि आपको देखकर मैने सारी काशी के दर्शन पा लिए तो अतिशयोक्ति न होगी।"

"ना बाबा ! मुझ में सारी—आधुनिक—वाराणसी नही है !"

"तो फिर किसमे है ?"

"गलत हो सकती है, यह मेरी अपनी राय है कि गुण कही जाते नही; रूप भले ही बदल ले।"

"क्या मतलब ?"

"काशी के कु-ख्यात गुण रॉड-सॉड़-सीढी-सन्यासी उस अदा में आज उसमें न हो—पर है; दूसरे रूप में । आज रॉड-सॉड-सीढ़ी-

सन्यासी चारो के गुण काशी के पॉलिटीशियनो मे एकट्ठे हो गये है।"

"काशी के किसमे ?" मैने उत्सुक-प्रश्न किया। लीलाधर कत्थक के मुँह से पॉलिटिक्स सुनने की आशा मुझे नही थी।

"जबरे पार्टीबाज पॉलिटिकल नेताओ मे। पडितजी, सिहजी, मुन्शीजी, भैयाजी में। ये रॉड की तरह नीति-विरहित—वीर्य-विरोधी है महाराज ! यहाँ 'वीर्य' माने तेज-विरोधी। इनमे अपना तेज तो है नही (वोट से बडे बनें लँगोटिये) ये तेजस्वियो से जलते है।"

"तुम कह क्या गए लीलाधरजी ?"

"गुरू महाराज ! हम-जैसी जनता के भोलेपन की हरियाली लतेड कर ये पॉलिटिशियन सरासर साँड़ बने हुए है। दर्शन-दृष्टि दोनो से। क्या कभी किसी घाट की सीढियॉ ऐसी बारहबाट रही होगी—खडी सपाट—जैसी इन जनता-जीवियो की लोभ-लालसा की सीढी-पर-सीढी दर-सीढियाँ है। ऐसी फिसलनदार कि सभी फिसले। रहा सन्यासी रूप, सो, इन छापा-धारी पालिटिशियनो से बडा 'सम' और 'न्यासी' हो कौन सकता है जिन्होने त्याग की रौ मे आर्यत्व, कुलीनता हया– ब्रह्मचर्य तक का त्याग करके दिखा दिया ?"

"किस पार्टी के पॉलटिशियन ?"

"वही पार्टी—गुरूजी,—जो शक्तिशाली है।"

"अर्थात ?"

"जिसके सदस्य आप स्वय है।"

"था। हूँ नही, लीलाधरजी !"

"ओह ! आप सब समझ-बूझकर पूछ रहे थे,—समझ रहा था मै। भला आप वर्तमान से भूत कैसे हो गए ?"

"मै स्वयं मे वह साहस नही पाता जो पॉलिटिशियनो में होता है।"

"साहस ? और आप में नही ! कहिए अगूर खट्टे रहे। टिकिट नही मिली . . .।"

"तो तुम्हे मालूम है सब...?"

"सी० आई० डी० मै नही गुरू महाराज ! पर, आपके समाचार जानने की चिन्ता न होती, तो मै दिल्ली में आपको ढूँढ कैसे निकालता? पहले चुनाव में आपने टिकिट पाने की चेष्टा की थी। दूसरे का मुझे पता नही।"

"पहले ही चुनाव में जिस तरह मुझे टिकिट नही मिली और जिन्हे मिली जिस तरह—उस तरहदारी को देख तुम अगूर खट्टे ही कहो और यह किसी हद तक गलत भी नही, मै हमेशा के लिये समझ गया कि वह राजनीति जिसमे भूल-भुलैया मे डालने और पडने पर ही सफलता मिलती है मेरे बस-बूते की बात नही है। फिर मैने कभी कोशिश नही की।"

"आप अच्छे रहे। बचे रहे। कमजोरी के कारण भी बचना, अक्सर, तपवत् हो जाता है। गुरू महाराज ! सारे-के-सारे बिक गये है। किसी ने पद लिये, किसी ने पैसे लिये, किसी ने परमिट प्राप्त किये। गर्जे कि जो भी पा सकने मे समर्थ था उसी ने स्वराज्य के बाद, स्वदेशी मन्त्रो की साधना से पाकर विश्वास किया। आप करते क्या है ?"

"मजे...मौज !"

"मज़े ? मौज ? गुरू महाराज ! जब मुझसे कोई यह कहता है कि वह मजे-मौज कर रहा है तो मै यह समझता हूँ कि न तो वह मजे करता है, न मौज !"

"तुम मेरी कैसे बूझ सकते हो, लीलाधरजी ?"

"गुरू महाराज ! आपके चरणो के प्रताप से मै भी बासठ वसन्त विलोके हुआ हूँ। मौज-मज़ा जब भवसागर मे है ही नही—कैसे मानूँ कि कोई मौज-मजे मे है ?"

"आचार्य चतुरसेन ने बतलाया.. ।"

"जी—क्या ?"

"कि भ माने आकाश और ..।"

"ग माने गामिनी । ओह ! बकस ही मे भूल आया । काशी से आपके लिये ब्राह्मीपत्ती लाया हूँ ।"

"तो तुम्हारी अभी छनती है ?"

"नित्य । मगर नाम-मात्र । मै भग को नशा नही मानता ।"

"मै भी...।"

"क्यो...?"

"नशा है शराब । समुद्र-मन्थन मे शराब निकली थी, भग नही । पर, तुम भग को नशा क्यो नही मानते ?"

"यह तो औपधी है—गुरू महाराज ! मन यानी पेट साफ रखने वाली, भूख-वर्धिनी . ।"

"दारू माने जानते हो लीलाधरजी ?"

"क्या मतलब . ?"

"फारसी जबान मे दारू माने दवा है । मतलब जो चीज जिसे रास आ जाय—औषधी है, दवा है ।"

"ना ! मतलब—उचित मात्रा मे लेने में उन्मादक-मद दारू है और सर फिरानेवाली भग विजया है, औषधी है । लेकिन—गुरू महाराज ! नशे के बारे मे आपकी क्या राय है ?"

"आदमी नशा करेगा ।"

"कोई-न-कोई . ।"

"निश्चय ! मेरा दर्शन है...।"

"जी...।"

"कि वे नशे जो नशीली-वस्तुओ की लिस्ट के बाहर के है अधिक उन्मादक है । जैसे धर्म का नशा, प्रेम का नशा, दभ का नशा, दाम का नशा...।"

"गर्जे आप क्या नशा करने लगे ससार नशैलची हो गया . ।"

"भर्तृहरि का एक पद है . ।"

"जी . ।"

"पीत्वा मोह-मयी-प्रमाद-मदिरा मुन्मत्त भूत्वा जगत् ।"

"बलिहारी ! आप गये, जग गया ! तो नशे का प्रचार होना चाहिए ?"

"कम-से-कम भग का प्रचार हो और अन्तर्राष्ट्रीय-स्तर पर हो। नशे की मद में मेरी यह गभीर राय है।"

"नशे की मद मे गभीर राय भी हो सकती है ? हद हो गयी !"

"लीलाधरजी महाराज ! आज के विश्व की सारी गभीर राएँ, मन्त्रणाएँ, पियाले-पर-पियाले चढाने के आगे-पीछे ही होती है। विश्व के बडे-बडे राजनीतिक--बडे दो, बडे तीन, बडे चार— अजी बिना पीए कभी किसी को सूझी है ? और पीते ही . ।"

"वो सूझती है · ।"

"वो सूझती है कि सप्ताकाश की ! सूरज-चाँद से दो-चार। ये 'स्पुतनिक', ये 'एटलास'—सभी मत्त-मानव के मद-घट से छलके हुए ग्रह और उपग्रह है। वैज्ञानिक जिस अन्तरिक्ष के पार अपार धनसाध्य वजनी-पदार्थ-पूर्ण राकेट में पहुँचता है, H २० महाशक्ति के सहारे, वही जो दिव्य-शक्ति दमडी और दस रगडे मे पहुँचा दे—आचार्य चतुरसेन कहते थे उसी का सस्कृत नाम है . ।"

"भ. ग ! वाह ! वाह गुरू वाह ! भग-भवानी विचारो से तो सप्तावरण-भेद निस्सन्देह करती है।"

"हर बात पहले विचार-रूप ही मे आती है। विधना ने पहले विचार किया होगा, फिर सृष्टि का विस्तार। जो वस्तु सहज ही विचार-विवर्धन करने मे क्षम हो—जैसे नशा, जैसे प्रेम, जैसे भक्ति—वही अद्भुत और असंसारी-सारवान होती है।"

: ३ :

परिभाषाओ का पण्डित जो हो जाने परिभाषाएँ, मै तो यह जानता हूँ कि असत्य वह श्रेष्ठ जो सत्य मालूम पडे। जैसे—यह ससार। अत कहानी की कल्पना की सुवर्ण-सार्थकता यथार्थता की कसौटी पर कसी जाती है। कहानी श्रेष्ठ वह जो झूठी होने के बावजूद सर्वथा सच्ची मालूम पडे। लेकिन सामाजिक कहानी के सर्वथा-सत्य मालूम पडने मे भारी ख़तरा यह होता है कि लोग अनुमान भिडाने लगते है : कि अमुक व्यक्ति या परिवार के बारे मे तो अमुक कहानी या उपन्यास नही लिखा गया ? इसमे कभी-कभी लेखको को झझटतक मे पड जाना पडता है। सो, इस उपन्यास मे इतना तो मै बतलाऊँगा कि यह काशी के उच्च-ब्राह्मण-कुल के एक भ्रष्ट-भविष्य, तेजस्वी-तरुण की वासना की बेहवास-प्यास की कथा है, पर, यह नही सूचित करूँगा कि वह उच्च ब्राह्मण-कुल पाँडे लोगो का है या दुबे लोगो का अथवा मिसिर, सुकुल, तिवारी या त्रिपाठियो का ? यह काशी के भदैनी मुहल्ले की चर्चा है जिसका रस लेने के लिये हमे प्रथम विश्व-महायुद्ध के बाद की काशी के वातावरण मे पैठना पडेगा। यानी सन् १९१९-२० की काशी के वातावरण मे। सन् १९१९-२० की काशी मे फिर भी २०वी सदी उस तरह नही 'बस्सा' उठी थी जैसी कि आज की अवस्था है। हर शहर की--विदित बात है—कुछ विशेषताएँ होती है जो उसकी व्यक्तित्व-सी बन जाती है। वनारस की विशेषता थी दार्शनिक-फक्कडपन। हर बशर की अपनी खाल मे मस्त-मगन रहने की लगन। विशेष के लिये विशेष हाय हाय नही, पडोसी का विशेष देख जलना-बलना तो बहुत बडी बात। साधारण ज़रीयो से जीवन की सूखी रोटी को चुपडकर स्वादिष्ट बनाने का सारे समाज को सहज अभ्यास। कोपीनवन्त को भी देखकर धीमन्त-श्रीमन्तो ने सोल्लास कहा खलु

भाग्यवन्त ! खलु भाग्यवन्त ! हिन्दी मे और हिन्द मे लँगोटी मे फाग खेलने का मुहाविरा-मात्र होगा, लेकिन आह ! अभी गत कल तक की काशी मे लख-लख अलख बनारसी अक्षरश लँगोटी मे फाग—कुछ सानुराग कुछ तटस्थ-भाव से—खेलते थे। यानी कुछ सन्यासी, विवेकी, विज्ञानी, सत्यत सतत विरत होने पर भी जीवन-रत मालूम पडते थे। विलासी लोग थे ४० वर्ष पूर्व की काशी मे और कम नही—पर, सच्चे आशिक भी थे, प्रेमी भी थे, भावुक-भक्त भी थे। आज की वाराणसी और गत कल की वाराणसी की मनोवृत्ति का भेद केवल एक अक्षर 'अ' से अदा किया जा सकता है। उस काशी में फिर भी सन्तोष था , पर वर्तमान वाराणसी में असन्तोष-ही-असन्तोष है। तब मोटर नही थी, सिनेमा नही था, बिजली नही थी, ब्लैक नही था, डालडा नही था और आजादी नही थी। क्या ? आज की आजादी मे बिजली की रोशनी है, मोटर की शक्ति है, सिनेमा की विविध चित्र-विचित्रता है (जीवन के ब्लैक स्क्रीन पर ही सुदर्शित)। साथ ही डालडा या वनस्पति घी वर्त्तमान के जीवन का आधार है। ज्यो-ज्यो आजादी निकट आयी और आयी त्यो-त्यो काशी का घृत—स्नेह—जैसे हलका पडता गया। और मन्त्र है "आयुर्वैघृतम्" (घृत आयु है)। कहूँ तो कह सकता हूँ कि मैशीन का जोर ज्यो ज्यो बढता गया, त्यो-त्यो जानदार कमजोर होता गया। तब बिजली-सिनेमा-मोटर नहीं थी तो वो-वो गहरेबाज घोडे थे, ऐसे-ऐसे Stud साँड थे, हथिनी-सी गजगामिनी गाएँ नजर आती थीं, वो-वो छलकते-छैल 'बहरी अलँगी,' साफेबाज, डण्ड-पेल, जवानी के तूफानमेल दिखायी देते थे—कि एक छब ! रईस थे सचमुच रईसी-राग के, टिपटापवाले, तरहदार, (हरम-विलासी ही नही) विचार-विलासी, सर्व-भोगी-दार्शनिक, 'फरजन्दे इगलिशिया खास' तथा दूरन्देश, देश-भक्त भाव के रईस भी। वेश्याएँ थी—हाँ—क्लासिक वेश्याएँ: सरस्वती, विद्याधरी, बडी मोती, राजेश्वरी, तौखी, मैना, छोटी

मोती, जवाहर, टामी। एक-से-एक नामीगरामी, गर्वीली-गलेबाज गायिकाएँ। केवल हलके-फुलके पद नही—ध्रुपद, धमार, मालकोस, मलार, बागेश्वरी-बहार, विहाग, फाग, राग-उपराग, हाहाकार गाने-वाली अक्षरश कोमल-कमनीय कलावन्तिने। ध्वनि-विस्तारक-यन्त्र आज आया है—भोडा, सहज-स्वर पाने मे सर्वथा असमर्थ। लेकिन ४० वर्ष पूर्व की काशी की कलावन्तिने ऐसी केकी कठिनी थी कि कोसो तक उनकी ताने बिना किसी (ज्ञान या विज्ञान) व्यवधान अम्लान रूप से पहचानी जाती थी। प्रशसा-मुखर कनरसिया-बनरसिया कहते थे—"जैसे बडी मोती बुढवामगल के बजड़े पर चैता ललकार रही है।" ४० वर्ष पूर्व की काशी शरदपूर्णिमा की चाँदनी मे जादूनगरी-जैसी। नगरी आज भी वही है, पर, बिजली की जगमग जोत की जियादती से, ज्योत्स्नावाला जागता जादू जैसे जाता रहा।

: ४ :

रत्नशकर अपने वर्ग के ब्राह्मणो मे अव्वल-दर्जे के अमीर थे। भदैनी मे घाट-निकट उनका विशाल भवन था। बनारस में बहादुरपुर गाँव के निकट और मिर्जापुर जिले मे उनके बुजुर्गों से चली आती जबर-दस्त ज़मीदारी थी। सैकडो बीघे जरखेज जमीन, बाग, मन्दिर। भदैनी-भवन मे गाएँ थी, घोडे थे। रत्नशकर के पास जोडी की गाडी थी, टमटम था। जमीदारी के साथ ही लेन-देन का काम भी होता था। उस जमाने के अनुसार लक्ष्मी उनके घर मे बेडी पहनाकर बैठाई गयी थी।

कमी थी रत्नशकर को तो एक उत्तराधिकारी की। उन्हे मात्र

एक कन्या हुई थी जिसके बाद उनकी पत्नी ने गर्भधारण ही नही किया था। जाने क्या दैवी-माया-सी हो गयी। हजार प्रयत्न करने पर भी उस कन्या के बाद रत्नशकर के यहाँ कोई बच्चा हुआ ही नही। फलत रत्नशकर की वह पुत्री व्रजरानी ही उनके सारे स्नेह की अधिष्ठात्री या पात्री रही। बडी, विवाहता, सन्तानवती हो जाने पर भी। व्रजरानी की दो कन्याएँ काशी मे ही बढी थी और ननिहाल ही से उनकी शादी-सगाई सम्पन्न हुई थी। बेटा जगरूप यानी रत्नशकर का नाती काशी मे ही पैदा हुआ, नाना नानी के अपार लाड-प्यार मे पला, वही हिन्दू विश्वविद्यालय का एम० ए० हुआ और बडे ठाट-बाट से जीवन के पथ पर अग्रसर हुआ। नाना-नानी ने नवासे को ही गोद-जैसा ले लिया था।

लेकिन रत्नशकर के एक छोटा भाई और था, रामशकर। वह भी भदैनीवाले मकान मेंही रहता था. सम्मिलित परिवार मे। और उसके लडका ही नही, कई लडके थे। रामशकर अच्छा विद्वान और बुद्धिमान व्यक्ति था। विद्या-बुद्धि में रत्नशकर रामशकर से न्यून था। वह नही चाहता था कि पैतृक-सम्पत्ति का कोई भाग कन्या-कुलवालो के अधिकार में जाय। रत्नशकर के बाद वह स्वय को सभी सम्पत्ति का सर्वाधिकारी मानता था और फिर अपने पुत्रो को, न कि नाती-नवासे को। फिर भी, बडे भाई का प्रकट-विरोध रामशकर कदापि न करता। हाँ,यह ताडता रहता कि लिखा-पढी-जैसा ठोस काम वह न कर पाये। ननिहाल मे जगरूप जितने ठाट से रहता उसका चतुर्थांश भी रामशकर के लडके 'अपने बाप' के घर नही पाते थे। सूट-पर-सूट, रेशमी कपडे, जेबखर्च, बाइसिकिल, जगरूप के पास सब-कुछ। साथ ही, पूर्ण स्वतन्त्रता। रामशकर के लडके बाप के और कुल के रोब और मर्यादा मे दबे-बँधे भदैनी-भवन के फाटक के बाहर कदम न निकालते या निकाल पाते, पर, जगरूप ९ बजे सवेरे जो घर से निकलता तो अक्सर १० बजे

रात ही लौटता। नाना से अधिक जगरूप नानी का आदर करता था और नानी न कहकर उसे 'माई' सम्बोधित करता था।

मै कहूँ कि रत्नशकर का चरित्र निर्मल नही था तो कोई बडी उम्र बडा नाम, बडा भवन देखकर सन्देह न करे। क्योकि बडा हो जाने से हर कोई भव-बन्धन-मुक्त नही हो जाता। ४० वर्ष पूर्व काशी में अनेक ऐसे बड़े आदमी थे जिन्हे भद्रता के केचुल के अन्दर वासना का विषधर ही कहना उचित होगा। आदमी का दुर्बल होना सहज है, जैसे टट्टी-फरागत जाना। पर ऐसी दुर्बलता सरे-राह प्रकट करना सरासर अनुचित ही नही अक्षम्य-अपराध भी है ऊँचा बजकर भी रत्नशकर भदैनी-भवन के कोटर के अन्दर मन्द-कर्म किया करता था। शिवाला मुहल्ले की जवान मालिन 'भरत बो' को लगाकर पडित रत्नशकर के कई कामुक-किस्से है। वह अक्सर दोपहर दिन को फूलो का हिसाब लेने आती—मासिक एक रुपया पाँच आने और रत्नशकर उसको दुछत्ती मे बुला लेता और हिसाब करता—हर महीने। तीन-चार दिनो से कम मे एक रुपया पाँच आने का हिसाब न होता और घटो लग जाते। सारा कुनबा ताड गया कि पडितजी का वह हिसाब-किताब क्या था, पर, बडा रोब था रत्नशकर का—इतना बडा कि उसके अपने भी सामने चूँ नही कर सकते थे। एक एक आदमी जानता, एक-एक औरत जानती—घर का एक-एक बच्चा जानता कि दादाजी या नानाजी क्या पापड बेलते है। एक दिन जब रत्नशकर की पत्नी जगरूप के सामने उस मालिन को कोसने-सरापने लगी तो जगरूप ने भी मन्द-मालिन के विरुद्ध मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। और जब पडित जी तहसील-वसूली के लिये सुदूर मिर्जापुरी-इलाके पर गये, जवान जगरूप को मौका मिला। मालिन हिसाब के लिये आयी तो वही उसे दुछत्ती मे चढा ले गया। सारा घर जान गया कि सुलच्छन ने क्या किया, क्या कराया कुलच्छनी मालिन ने। जगरूप की छोटी बहन को भी पता चला

—फिर भी, किसी ने मुँह से चूँ तक नही किया। बाल-बच्चे, जिम्मेदारी के बावजूद, जो लोग साधिकार मन्द कर्म-करते है वे अपने हाथो आनेवाली पीढी के मुँह महा-माहुर-मदिरा का मारक-प्याला लगा देते है। इस कथा के नायक की तामीर मे भी दुर्भाग्य के कुछ ऐसे ही बीज घर मे ही पडे थे। फिर बनारस का बहका वातावरण। विवाह होने के पूर्व ही जगरूप यौवन की सारी बदफेलियाँ जान चुका था। उसके सग्रह मे तीन-तीन कोकशास्त्र सचित्र थे जिनमे एक जयपुरी चित्रकार का बनाया हुआ था जिसे उसने अपने नाना के सग्रह से चुरा लिया था।

स्वतन्त्र-दिमाग के तरुण निर्बन्ध-जीवन मे जैसे आजादी की बुराइयाँ सीख लेते है, वैसे ही कुछ भलाइयाँ भी उनके पल्ले पडती है यदि नितान्त मन्दभाग्य या बुद्धि न हुए। ऐसे लोग आत्मनिर्भर, समाज-विचरण-पटु हो जाते है। चित्रकार फणिभूषण के पुत्र अनिल की मित्रता मे जगरूप ने दशाश्वमेध घाट के दुष्टताओ के अड्डे तो देखे ही, पर चित्रकारी भी उसे आकर्षित किए बगैर न रह सकी। हारमोनियम बजाने और गाने का शौक भी फणिभूषण के घर से ही जगरूप को मिला। अल्ताफ दर्जी की दोस्ती मे उसने दालमडी या वेश्या-बाजार तो देखा ही—लगे-हाथ कपडे की कटिग और सीने का काम भी खासा सीख लिया। जगरूप को सबसे ज्यादा शौक नाटक—स्टेज का था। कालेज-जीवन मे हिन्दू कालेज-हाल मे उसके डाइरेक्शन मे डी० एल० राय के 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास' 'मेवाड पतन' नाटक बहुत ही सफलता से खेले गये थे।

जगरूप को पूरा विश्वास था कि वह नाना की सम्पत्ति का अधिकारी होगा। इसी विश्वास के आधार पर उसने जवानी-जन्य अनेक मनसूबे बना रखे थे कि सम्पत्ति पाते ही वह एक मोटर खरीदेगा—वह भी फोर्ड नही, डॉज नही—ब्यूक गाडी और दुनाली बन्दूक का लाइसेन्स निकलवायेगा। और मोटर में माशूक को बैठाकर शिकार पर जायेगा।

उसे यह ज्ञात नही था कि छोटा नाना रामशकर एन वक्त पर उसके सारे मनसूबो पर पानी फेर देगा। अधरो तक लगे प्याले को छलका देगा।

और यही होकर रहा। रत्नशकर जब बीमार पडा तब विलासियो की तरह बरसो बीमार रहा। फलतः उसके आगे ही सारा कामकाज रामशकर सँभालता रहा। अन्तिम-काल निकट जान रत्नशकर ने वकील बुलाकर रामशकर के सामने आदेश दिया कि वह ऐसे इच्छापत्र का मसविदा तैयार करे जिसके अनुसार सम्पत्ति का उसका अश उसके नाती जगरूप को मिले। इस पर रामशकर ने बडे भाई के मुँह पर तो रचक विरोध भी नही दिखाया—लेकिन वकील को मिला लिया। कागज पर रत्नशकर के दस्तखत प्राय मरणासन्न स्थिति मे कराये गए। यानी इच्छापत्र मे जगरूप की चर्चा तक न आयी, सम्पत्ति और अधिकार तो दूर की बात। रत्नशकर के गुजरते ही भदैनी भवन तथा उससे सम्बन्धित सम्पत्ति का अधिकारी रामशकर था। रत्नशकर की विधवा अब हद-से-हद ५० रुपये मासिक गुजारा पाने और कायदे से रहे तो रामशकर की कृपा से अनाज वगैरह मुफ्त पा जाने की अधिकारिणी रही गयी। इस तथ्य की गहराई जानने मे जगरूप को देर न लगी।

: ५ :

दो दो साल से हिन्दू-स्कूल की एडमिशन परीक्षा मे असफल होते-होते नन्दकुमार के नाको दम आ गया था। इगलिश और गणित दोनो ही उसके कमजोर थे। पारिवारिक-स्थिति भी दुर्बल ही थी। वह तो पढना छोड देना चाहता था, पर करता क्या। सन् १९२१ मे नन्दकुमार

पढ नही रहा था बल्कि पढाई के दरिया मे बह (क) रहा था—विवश। सो, महात्मा गाधी का असहयोग आन्दोलन उसके लिए वरदान-जैसा आया। फेल वह इस बार भी होता और फिर स्कूल से निकाल दिया जाता, पर असहयोग आन्दोलन मे 'आत्मा की पुकार' पर पढाई छोडने से नन्दकुमार की लाज ही नही रह गयी शहीदाना-रुतबा भी बढ गया। क्योकि असहयोग आन्दोलन के पहले—हवालात-जेल तो बडी चीजें—किसी के दरवाजे पर पुलीसवाले की लाल पगडी-मात्र नज़र आ जाने से सारे मुहल्ले का खून सूख-सा जाता था। जेल चोर-चीट-डाकू-हत्यारो की ही जगह मानी जाती थी। जहलखाना को लोग जहरखाना समझते थे। इसका सबब जेल के कष्ट तो थे ही यू० पी०—खासकर पूरबी यू० पी० में—भारी भय माना जाता था। जाति-भ्रष्ट हो जाने तथा जात-कुजात के कैदियो की लात से साने हुए आटे की रोटी खाने आदि का। लोगो मे यह भी धारणा जड पकड गयी थी कि जेलो मे भगी झाडू से पिटाई करता है। भूल या असावधानी से भी जेल जानेवाले को लडकी देना तो दूर की बात उसकी लडकी का पाणिग्रहण तक करनेवाले कठिनाई से मिलते थे।

किन्तु महात्माजी के आदेश से ब्रिटिश-राज्य का अन्त करने के लिए जब भारत का और काशी का जन-समुदाय कारागार भरने पर आरूढ़ हो गया तब बडे-बड़े तीसमार खाँ नौकरशाही-कर्मचारी भी एकबार चकित हो घबरा-से गये। क्योकि इन नये कैदियो के संसर्ग से जेलो के दायमी-बन्दियों के भी बिगडने का अन्देशा था। सो, यू० पी० सरकार ने प्रान्त की कुछ जेले केवल राजनीतिक बन्दियो के लिए रिजर्व करने का सक्रिय-निश्चय किया। ऐसी ही जेलो में काशी के चौकाघाट मुहल्ले मे स्थित जिला-जेल भी थी। उसमें यू० पी० के अनेक ज़िलो के राजनीतिक बन्दी तीन बडी-बडी बैरको तथा विशेष क्वार्टरो मे रखे गये थे। इनके साथ ही लोकल बन्दियो का खेवा-पर-

खेवा पुलीस के काले 'वानो' में भर-भरकर चौकाघाट की जेल मे रोज ही उतारा जाता था।

नन्दकुमार रहता था भदैनी, पर गिरफ्तार हुआ चौक कौतवाली के सामने, सत्रह जवानो की एक टोली का नेतृत्व करते हुए। लोग कोतवाली की हवालात मे इकट्ठे किये जाते और वही खडेघाट नामक पारसी मैजिस्ट्रेट उनका आनन-फानन निर्णय करता। जो कोई भी कहता कि वह असहयोगी स्वयसेवक या वालण्टियर है उसे महीने-डेढ-महीने की सजा सुनायी जाती थी। पर, जितने लोग वालण्टियर-रूप से हवालात मे पकड लाये गये थे उनमे सभी न तो काग्रेस के स्वयसेवक थे, न देश-भक्त, न राजनीतिज्ञ। बहुत से तफरीहन या प्रवाह मे बह आये थे—बिना समझे कि सत्याग्रह के क्या मानी, क्या मानी अहिंसा के। उनमें जितने 'डिस-ओबीडियन्स' के शायक थे उतने 'सिविल' कहलाने के लायक नही। उनमें एक गुण्डा था, पुराना जेल-पक्षी जो लडको को जेल जाते देखकर न जाने किस उत्साहवश स्वय भी पुलीस की पकड मे पड गया था। मैजिस्ट्रेट ने जब उससे पूछा कि वह वालण्टियर है ? तो उसने भुजा फटकारते हुए सुनाया · आलण्टियर-वालण्टियर नाही—बोल महात्मा गान्धी की जय! वैसे जो हवालाती अपने को स्वयसेवक नही स्वीकारता था, मिस्टर खडेघाट उसे छोड़ दिया करते थे, पर इस गुन्डे ने जो भुजा फटकारते हुए जोश-भरा उद्धत जवाब दिया तो जैसे मैजिस्ट्रेट बिदक-सा गया और उसे भी छः हफ्ते के लिए कठोर-कारा-दण्ड दे ही डाला। उसी झुण्ड मे जिसमे नन्दकुमार था : हवालात मे एक निर्वासित अफगानी 'शाहजादा' भी था। सरकार से गुजारा पानेवाला—लेकिन परम उन्मत्त, प्राय. पागल। लबा, चीमड, चट्टा, गोरा, केसरी-मूँछे, भेडिये-सी खूँखार चमकदार आँखे, महा उजड्ड, महा निर्भीक। जब उसके केस की बारी आयी तो हवालात के जगले के पास डटकर वह मैजिस्ट्रेट के मुँह पर सिगरेट के धुएँ की फूके मारने लगा। "तुमको मालूम नही ?" मैजि-

स्ट्रेट से उसने तीव्र-स्वर मे कहा : "जब मै काबुल मे था तुम-जैसे दर्जनो मेरे नौकर थे।" खड़ेघाट साहब ने उसे भी छ महीने की सख्त सजा दी। नन्दकुमार की छः हफ्ते की सजा हुई। वह मन-ही-मन सहमा हुआ था कि क्या मालूम जेल में क्या गति होगी, पर चौकाघाट जिला कारागार में पहुँचने पर उसे वहाँ काशी के एक-से-एक नामी-गरामी नेता, कार्यकर्त्ता और तरुण नजर आये। साथ ही सारी यू० पी० के कई सौ अरुण-तरुण-स्वराज्य-कामी भी वही थे। उसी जेल मे थे कृपलानीजी, सम्पूर्णानन्दजी, परमहंस राघवदासजी। कृपलानीजी तो अपने 'गान्धी आश्रम' के पचासो तरुणो से सुसेवित, सदल-बल थे। कृपलानीजी नन्दकुमार को जानते थे। उसे अन्दर देखते ही उन्होने पहले जगरूप के बारे में पूछा :

"तेरा सगी अभी आया नही ?"

"वह तो दादा, लखनऊ है; व्याकुल भारत नाटक कम्पनी की मैनेजरी सँभालता। गिरफ्तार होने के पहले जगरूप को लताड-भरा एक पत्र तो मैने डाल दिया है, पर, वह शौकीन जीव है—जेल जाना शायद ही चाहे।"

"एक-से-एक शौकीन जीव जेल जा रहे है—गान्धी के जादू से जेल खेल हो रही है। जगरूप भी आता ही होगा। पढ़ा नही तूने ? अरे विचित्र !" कृपलानी ने विचित्रनारायण शर्मा को सम्बोधित कर सुनाया : "नन्दकुमार को ज़रा कल का अखबार तो देना।"

लखनऊ के दैनिक 'सग्राम' में व्याकुल-भारत थिएट्रिकल कम्पनी के बारे में समाचार था, सचमुच विचित्र—कि पॉच-सौ दर्शक जब थिएटर-हाल मे बैठ गये तब मैनेजर श्री जगरूप ने मच पर आकर घोषित किया कि चूँकि मैजिस्ट्रेट ने नाटक के आरम्भ में वन्देमातरम् गाने पर पाबन्दी लगा दी है, अत. खेल 'अपना देश' नही दिखलाया जायगा। फिर भी, वन्देमातरम् तो गाया ही जायगा। कम्पनी के

मैनेजमेट ने निश्चय किया है कि हमारे सभी कार्यकर्त्ता एक जुलूस बना कर 'वन्देमातरम्' गाते हुए सारे लखनऊ की परिक्रमा करेगे। यह हमारा राष्ट्रीय गान है। इसके लिये कोई भी बलिदान हम सहर्ष करने को तैयार है।"

इस घोषरणा का परिरणाम यह हुआ कि जुलूस निकालने के पहले ही अधिकारियो ने व्याकुल-भारत कम्पनी के सभी कार्यकर्त्ताओ को गिरफ्तार कर लिया। उन पर स्थापित सरकार के विरुद्ध बद-अमनी के षड्यन्त्र का केस चलाया गया। सजा दी गयी। पहले एक अफगान प्रिन्स की चर्चा हो चुकी है। हवालात ही मे उसका आचरण—बकना, मैजिस्ट्रेट के मुँह पर धुआँ उडाना—नन्दकुमार को अनुचित लगा था। सत्य, अहिसा का अर्थ नन्दकुमार ने भी उस गभीरता से न समझा हो जिस गभीरता से गाधी ने समझाया था, फिर भी, वह पक्षपाती था सत्य-अहिसा ही का। इधर जेल मे आने पर भी शाहजादे का वही असत्य, और हिसक भाव रहा। उसको—अक्सर—अगम्भीर राजनीतिक-रॅगरूट घेरे रहते और वह प्राय बराबर धुआँधार बकता रहता "अग्रेज ? अग्रेज बिलकुल बदजात, बेईमान होता है।' हम अफगानी लोग अग्रेज को साँप से बदतर—नमाज छोडकर मारने काबिल मानते है। कसम खुदा की ! आजादी के जग मे हम गोरेबच्चे का खून पीयेगे—खून ! हरामियो के टुकड़े-टुकड़े करेगे।"

"मगर शाहजादा साहब, यह तो अहिसा नही—हिसा हुई।" नन्दकुमार के निकट बैठे एक बनारसी नें सुनाया। इस पर नन्दकुमार ने उसके कान मे कहा :

"बकने दो, बोलो मत, पागल है !" "क्या कहा ? क्या कहा ?" राक्षस की तरह दाँत किटकिटा, बिल्लौरी-आँखे चमका—धमकाने के स्वर में काबुली-शाहजादे ने नन्दकुमार से पूछा और फिर बक चला :

"कृपलानी के चेले ! ऐसे कृपलानी और ऐसे चेले—जब मैं काबुल

में था—मेरे यहाँ घास खोदते थे ।"

शाहजादा को पता नही था कि कृपलानीजी उसके पीछे ही मौन खडे उसकी बहकी बाते पहले तो मुस्कराते, फिर मन-ही-मन खुनसाते सुन रहे थे ।

"इसने मुझे पागल कहा—कृपलानी कगाल के चेले ने ! मै कृपलानी की बोटी-बोटी काट कर रख दूँगा—कसम खुदा की !"

जैसे अब कृपलानीजी का धैर्य जाता रहा। वह सामने आ रहे : "शाहजादा साहब ! तमीज से बाते करे । वरना याद रखे कृपलानी ऐसा अहिसक नही कि कोई कुछ बके वह सुनता रहे—दाहने पर लगे तो बायाँ गाल सामने करे । मै भी क्षत्रिय हूँ ।" और कृपलानी की दृष्टि अपने पैरो के खड़ाऊँ पर गयी । शायद उनका दाहना हाथ भी दाहने पाँव की तरफ अनायास बढ गया । उसी समय : "जय ! जय हो दादा कृपलानी की !" कहता हुआ कोई सवा-छः-फुटा जवान जेल के फाटक मे दाखिल हुआ । उसकी लम्बाई-चौडाई, बडे केश, रोबीले-फेस से अफगानी शाहजादा सहम-सा उठा : "कैसे-कैसे चेले इस कृपलानी के !"

आगन्तुक कृपलानी-भक्त कोई अन्य नही—लखनऊ मे सज़ा पाकर बनारस पहुँचाया गया—व्याकुल भारत नाटक कम्पनी का मैनेजर, भदैनी का विचित्र-ब्राह्मण, तरुण जगरूप ही था ।

"क्यो रे, बहुरूपिये !" 'दादा' कृपलानी ने सप्रेम पूछा ! "यह रूप भी तूने न छोडा ?"

जगरूप ने कृपलानी की चरण-वन्दना की ।

: ६ :

इस लेखनी से सन् १९२१ के उस राष्ट्रीय महाजागरण काल की काशी के चौकाघाट जिला-जेल की घटनाएँ दसियो बार लिखी गयी होगी, लेकिन उपन्यास मे पहली ही बार उतारी जा रही है इतने दिनो बाद जब अनेक आजाद घटनाओ की मस्ती परसो के नशे की तरह दिमाग से उतर गयी होगी। आन्दोलन और धरपकड आरम्भ होने के महीने-भर-तक तो काशी की चौकाघाट-जेल वैसी ही थी जैसी अन्धकार ब्रिटिश-राज के तत्कालीन-वातावरण में होनी चाहिये थी : जाग्रत नरक। काल-काले रंग का चौगिर्द बोलबाला ! कबल काला, लोहा काला, तारकोल काला, वार्डरो की वर्दियाँ काली। काले लोहे के तसले मे पडते ही महा-काली दाल, गला हुआ भलरा, अधकाली और लात से सानी आटे की रोटियाँ। जात पर-जात-कुजात-अजात सबकी एक पाँत। पाखाने खुले हुए। बैठनेवाले एक-दूसरे को निर्लज्ज देखते, सबको दूर से वार्डर देखता। वार्डर की निगरानी में आबदस्त लेने की व्यवस्था। गले मे लोहे की हँसली मे लटकता तौक जिस पर कैदी की सजा और छूटने का दिन इशारो में अकित। आन्दोलन के महीने-दो-महीने मे सज़ा पानेवाले मनस्वी मर्दो के सामने उपरिलिखित सारी मुसीबते आयी और बदाबदी आयी लेकिन इसके बाद ही आजादी के दीवानो का वह रेला जेल मे आया—रेले-पर-रेला—कि बेडियाँ कही पड़ी रही—तौक कही। और सारा जेलखाना एक बडा बाजार मालूम पडने लगा। विविध-जाति के भारतीय भाँति-भाँति के वेश में। शूद्र उसमें, द्विज उसमे। जैसे धोबी घाट पर हर जाति के पहरन-चोले एकत्र हो—जीवन, निर्मलता-धवलता के उज्वल-मोह में। मालूम पडता था जैसे राजाधिराज के घर बारात आयी हो। कमज़ोर-से-कमज़ोर असहयोगी बन्दी भी महान साम्राज्य के जोर से भी डरता नही

था। उस वक्त, उस जेल में जिसमे पाँचसौ के करीब तो राजनीतिक कैदी थे और साधारण कैदी ६०-७०—राजनीतिक बन्दियो के भोजनादि सेवाओ के लिये। शेष अराजनीतिक कैदी चौकाघाट जेल से हटा दिये गये थे। भीड बढ जाने पर राजनीतिक क़ैदियो ने जेल के भडारे पर अधिकार जमा लिया था। फलतः उन्ही की निगरानी मे अपराधी कैदी हाथ से आटा गूँध, बढिया दलिया, दाल और सब्जी—और जेल के विशाल तवे पर दो-दो दर्जन दिव्य रोटियाँ एकसाथ सहर्ष तैयार कर देते थे। जेल के 'चक्कर' मे पडनेवाले चारो दरवाजे तथा बैरको के फाटक बराबर खुले रहते थे। सारे दिन और आठ बजे राततक राज-नीतिक कैदी एक से दूसरी बैरको मे आते-जाते रहते। ऐसा लगता था जैसे कुभ या अर्ध-कुंभ का पर्व लगा हो और साधुओ की जमाते जुडी हो; जिनके महन्तो के आसनो के सामने भक्तो की भीड लगी हो। महन्त थे कृपलानी, सम्पूर्णानन्द, परमहस राघवदास-जैसे तेजस्वी, प्रौढ, तरुण-साधक। शेष साधारण कैदी-भक्त थे। उन असाधारण पुरुषो के बाद भक्तो की भीड भडकीले अफगानप्रिंस की गिर्द भी रहती थी जिससे उत्साहित हो वह अधपागल पूर्ण-पागल-प्रलाप धाराप्रवाह करने लगता : "काबुल मे, हमारे अफगानिस्तान मे, देखते-ही अंग्रेज बच्चे की बोटी-बोटी उडा देते है और मिमियाती मेमो को पकडकर पहाडो की गुफाओ में ले जाते है—हरामजादियो को पहले हरम और फिर गोर में सील-बन्द रखने के लिये।" अफगानी शाहज़ादा-जैसा हास्य-प्रद-रूप मुसलिम-ढग से प्रकट करता था, हिन्दू-दल मे भी उसीकी जोड का बदायूँ यू० पी० का कोई बहका हुआ ब्रह्मचारी वालण्टियर था जो अपने नाम का परतला लबे गैरिक डगले या कुरते पर धारण करता था जिस पर लाल कपडे के बडे-बडे अक्षरो में लिखा था . "वालण्टियर बाबा बाँके-बिहारी ब्रह्मचारी, बदायूँ, यू० पी।" यानी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मेरा कर क्या सकती है ! मै इस तरह पूरा पता सीने पर लिखकर सूचित करता

हूँ कि मै हूँ...हूँ मै काग्रेस का वालण्टियर। और यह बाबा बॉके-बिहारी गैर-जिम्मेदारी के रूप थे। छै-फुटे, बडे केश, दाढी, बडी-बडी अर्धलाल और डोरेदार कडी-कडी ऑखे, चपटी नाक, पतले और अनवरत फडकते होठ। इस साधु-वेशी वालटियर को लेक्चर झाडने का रोग था और लेक्चर भी जोश से भरा—होश से खाली। जब-तब जिस-तिस बैरक मे बिना इसकी पर्वा किये कि कोई सुनता भी है, वह अपना भीषण-भाषण शुरू कर देता : "सज्जनो, मेरे प्यारे भाइयो और बहनो! हिन्दुस्तान की आबादी ६८वे करोड, जिसमे से जलियानवाला बाग मे ५६ करोड आततायी जनरल डायर की मैशीन-गनो से भून दिये गये। इस क्रूर-कर्म का कुफल यह हुआ कि ३६ कोस पृथ्वी नीचे और ३६ कोस आकाश ऊपर लाल-लाल—लाल हो गया !"

दुर्भाग्य से एक दिन लेखक नन्दकुमार ने बाबा वालटियर बदायूनी को टोक दिया कि "महाराज, जब हिन्दुस्तान की सारी आबादी तेतीस ही करोड है तब ५६ करोड जलियानवाला बाग मे कैसे मारे गये ? फिर आप जितना तेज और उत्तेजित बोलते है उससे हिसा दरसती है जबकि हमारा आन्दोलन अहिसात्मक है।" फिर क्या था। बाबा बदायूनी मुँह से आग उगलते लेखक पर टूट ही पडे। वह तो बीच मे जगरूप आ रहा, लपककर उसने बाबा बिगडैल के पॉव पकड लिये—'बरैं-बालक एक सुभाऊ, इनहि न सन्त विदूषहि काऊ'—यह क्या जाने आपके गभीर भाषण का रहस्य।"

इस बदायूनी वालटियर की बराबर यही शिकायत रहती कि राजनीतिक कैदी लोग जिस भाव से कृपलानी, सम्पूर्णानिन्द, राघवदास आदि के प्रवचन सुनते उसी तरह उसको क्यो नही सुनते ? और वह ऐसे सभी बदियो को बेवकूफ समझता। परमहस राघवदास और बदायूनी एक ही बैरक में थे। दोनो वक्त जब सुपठित बन्दी तरुण परमहसजी से गीता का प्रवचन सुनते तब, मारे डाह के, वह परतला-

धारी बगड ब्रह्मचारी अपनी 'बर्थ' पर खडा हो जाता और वही ५६ करोडी- भाषण शुरू करने के पहले वन्दना-गान की तरह गाने लगता -

बाबाजी जेलख़ाने पड़े होंगे...
मोरे सैयाँ जेलख़ाने पड़े होंगे।
मोरे राजा जेल... ।
जगले, जंजीरों में बेड़ियों में होगे
चूतड़ो पर डडे पड़े होगे ।
मोरे सैयाँ जेलख़ाने—मोरे राजा जेलख़ाने,
बाबा जी जेलख़ाने पड़े होंगे।

आगे कहा जा चुका है, कैदियो के लिये काशी के नागरिक किसी-न-किसी बहाने खाने की विपुल सामग्री जेल मे बराबर भेजते थे। तिल-सक्रान्ति के दिन चावल, दाल, तिलवे, मिठाइयाँ, साग-सब्जियाँ, घी, दूध, दही, फल वगैरह बाहर से इस प्रचुरता में आये कि राजनीतिक कैदियो के साथ ही अपराधी कैदियो और लुक-छिपकर जेल के अधिकारियो तक ने कचराकूट किये। उस दिन जेल के खाते से बन्दियो पर एक छिब्बा भी खर्च न हुआ, सो, उसके बदले में, सुबह, राजनीतिक कैदियो ने नकद पैसे माँगे। पर जेलवालो ने गभीरता से लाचारी प्रकट की। क्योकि ऐसा कोई नियम था नही। सत्याग्रही कृपलानी वगैरह के नेतृत्व मे अड गये। जेल के अधिकारियो ने सदर्प सूचित किया कि इस माँग पर तूल देना भूल होगी। "भूल हो या कुछ हो, हम तो अपना हक वसूल करके ही छोडेगे।" किसी तरुण ने सत्याग्रहियो की मनोवृत्ति की सूचना दी।

नित्य ही जिस तरह सैकडो नये सत्याग्रही-बन्दी चौकाघाट जेल के अन्दर आते थे, वैसे ही, दर्जनो कैदी सजा समाप्त कर—छूट कर—बाहर भी जाते थे। तिल-सक्रान्तिवाली रकम को लेकर पजे लड ही गये। उस दिन जेल के अधिकारी नाक रगडकर हार गए, पर 'बच्चनें'

नामक रिहाई के एक कैदी का चारो बैरको मे पता ही न चला। इतना ही नही, हर बैरक मे दर्जनो सत्याग्रही स्वय को 'बच्चन' बतलाने लगे।

जेलवाले परेशान हो गये। उन्होने नेताओ की मदद बच्चन की तलाश मे माँगी। पर, सबकी ओर से दादा कृपलानी- ने व्यग्य से मुस्कराते हुए एक ही जवाब दिया : "खेद है, बच्चन के बारे में आप लोगो से हमारी जानकारी जर्रे बराबर भी ज्यादा नही।" इस पर एक बनारसी नेता शायद पं० कृष्णचन्द शर्मा ने अधिकारियो को सहास्य सुनाया कि यह भारतवर्ष है। यहाँ पुराकाल से जब भी कभी सकट पडता है तब उसका निवारण यज्ञ द्वारा ही किया जाता है। अतः तुम लोग बच्चन-प्राप्ति के लिए यज्ञ कराओ।

"मगर जेल के फण्ड मे यज्ञ के लिए कोई व्यवस्था नही है।" जेलर ने परेशान होकर कहा।

"तुम तिल-सक्रान्तिवाले पैसे दिला दो—पचास और एक इक्यावन नकद—देखे बच्चन बेटा कैसे नही प्रकट होता।" कृष्णचन्द्र शर्मा ने पुन हँसते हुए कहा।

और जेल मे १०० कैदी मर जायँ तो सौ मच्छर मरे लेकिन एक अधमरा कैदी भी भाग जाय तो शेर भाग गया। सारे स्टाफ पर सकट तबादले, तनज्जुली तथा तरह तरह की बेतरह तकलीफे—"बाबा, मै अपनी जेब से इक्यावन रुपये दे दूँगा"—जेलर ने कृपलानीजी से मिन्नत के लहज़े मे कहा—"अभी लीजिये ! जमादार ! बड़े बाबू से रुपये माँग-लाकर महात्मा (कृपलानी) जी को दे दो।"

"मगर बच्चन का पता रुपये आने से नही लगेगा"—किसी काले-कलूटे सत्याग्रही ने सुनाया—"यज्ञ होना ज़रूरी है।"

दूसरे दिन सचमुच जेल में यज्ञ हुआ। बडे-बडे नेता—सम्पूर्णानन्द, राघवदास, कृपलानी—कोई यजमान बना, कोई पुरोहित, कोई कुछ,

कोई कुछ। सारी जेल—अभागिनी, अछूत—यज्ञ-धूम से सुगन्धित हो उठी और तब 'बच्चन' नाम का बन्दी मिल गया।

लेकिन जेल के अधिकारी इस घटना से चिढ-से गये। दूसरे ही दिन से उन्होने कैदियो को अपनी-अपनी बैरक में रहने और बैरको के द्वार यथा-विधि बन्द रखने का आग्रह जोरदार किया।

: ७ :

वार्डरो की संख्या दुगनी कर दी गई। साथ ही सत्याग्रहियो को सूचित किया गया कि वे जेल मेनुअल की सीमा मे आचरण करे और अपनी-अपनी बैरक मे रहे। 'चक्कर' की तरफ से चारो वार्डो के ताले बन्द कर दिये गये तथा सोटाधारी की जगह बन्दूकधारी वार्डर तैनात कर दिये गये।

इसको सत्याग्रहियो ने पशु-बल का प्रदर्शन घोषित किया और इसके सामने झुकने से एकस्वर में अस्वीकार कर दिया। एक भी बन्दी बैरक मे बन्द होने को राजी न हुआ। जमादार आग्रह कर हार गया, डिपुटी जेलर हार गया, जेलर भी हार गया और यह कहता हुआ सदल-बल फाटक के दफ्तर की तरफ बढ गया कि इसका परिणाम अच्छा नही होगा। जेल मे प्राप्त आप लोगो की रही-सही सुविधा भी छिन जायेगी।

"सुविधा कुछ दान मे नही मिलती कि कोई छीन लेगा।- आप जो चाहे करे।" मौलाना रहमतुल्ला ने जवाब दिया। यह वार्ड नं० ३ की घटना है। जेलर के जाते ही सारे कैदी गोलाकार एकत्र हो निर्भय मनोविनोद करने लगे। जैसे : सीतापुर के एक छरहरे कवि ने यह तुक-

बन्दी सुनायी और मौलिक लहजे से :—

सग मोहन के
गोपजन बनके
नैन अजन के
रे निरजन के !
साध जीवन के
त्याग—ज्यों तिनके
भावना सनके
बाँसुरी सुनके
चल पड़े तनके
मस्त रे बनके !
स्थाप उत्तम को
काटने तम को
साथ सयम के
सामने यम के
भावना सनके
चल पडे तनके
मस्त रे बनके !

सीतापुरी-कवि के बाद बनारस कबीरचौरा मुहल्ले का कत्थक लीलाधर आवेश-भरा दर्शको के बीच में कत्थकी 'आमद' मुद्रा से आया और एक पुराना 'परन' मुँह और चरणो से अदा करने लगा—

श्रवण सुन्दर नाम गणपति ज्ञाननाथ गजानन
धिग् धान धिकिट धधिन तकत
कृतिक लबोदर एकदन्त धा !
कृतिक लबोदर एकदन्त धा !
कृतिक लंबोदर एकदन्त धा !

लीलाधर की तीसरी 'धा' पर सारे-के-सारे कैदियो—यहाँ तक कि—नेताओ के मुँह से भी सहसा 'धा' निकल गई। इसी समय चक्कर के फाटक से मिलिटरी की तेज आवाज आयी—जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर हार्वे फाटक पर सदल-बल खडा था। जरा ही देर बाद कृपलानीजी की पुकार हुई।

"देखिये मिस्टर कृपलानी ! आखिर यह जेल है ! इन्हे बैरको मे बन्द होना ही पडेगा।"

"बन्द तो हम लोग नित्य ही किये जाते है—मगर साढे नौ बजे रात के बाद। आजतक सारे दिन बैरके खुली रही तो सरकार का क्या नुकसान हो गया, असमर्थ हूँ समझने मे मै।"

"मेरे पास फालतू-वक्त नही है—मिस्टर कृपलानी..।"

"फालतू-वक्त है किसके पास मेजर...।"

"कैदी बैरको मे न गये और हमे बल-प्रयोग करना पडा तो जिम्मेदारी आपकी होगी।" मेजर हार्वे ने कर्कश सुनाया।

"मेजर हार्वे !" कृपलानी ने व्यग्य-मुस्कान के साथ सुनाया, "हम लोग जब बलवान ग्रेट-ब्रिटेन से सत्याग्रही-पजा लेने पर कमर कसे तैयार है तब आप तो उसके एक अदना पुर्जा-भर है ...।"

इस पर सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जेलर की तरफ कुछ सकेत किया। फाटक खोला गया, साथ ही, पचासो वार्डर अन्दर पिल पडे। बरजोरी—बहुतो को उठा-उठाकर—बैरको मे पहुँचाया गया। पशु-बल जब जोश मे आया तो उसने आला-अदने का विवेक नही किया। सत्याग्रही-नेता लोग भी बलात बैरको में पहुँचाये गये।

कृपलानीवाली बैरक मे ताला बन्द करने के पूर्व जेल-जमादार बदियो की गिनती करने लगा। एक-दो-तीन...पचास...पचपन .. छप्पन...। होना चाहिये सत्तावन ! जमादार पुन गिनने लगा। एक.. दो—छप्पन। पर "एक कैदी कम है।" अब नायब जेलर ने गिनना शुरू किया। फिर

भी वही छप्पन। लाचार वह कृपलानी की शरण आया।

"महात्माजी, एक कैदी कम हो रहा है।"

"देख लो भाई, जितने है यही हैं— फिर राजनीतिक कैदी भागने के लिये अपनी मर्जी से जेल नही आये है।"

"कैदी नही मिलेगा, सख्या सही नही होगी, तबतक बैरक बन्द हो कैसे सकती है ?"

"तुम कहो मै उठकर गिनती कर दूँ। पर आदमी जितने है उतने ही तो होगे ?"

"एक कोई कम है।"

"इसके लिए मै क्या कर सकता हूँ ? आदमी को यहाँ कहाँ छिपाया जा सकता है ? तलाशी ले लो !"

साढे नौ बजे रात तक गिनती-पर-गिनती होती रही, पर सत्तावनवाँ आदमी नही मिला। तब जगरूप ने उठकर कृपलानीजी से कहा :

"इन लोगो ने हमारे महान लेखक नन्दकुमारजी उर्फ नन्दन को तो गिना ही नही !"

"कहाँ है कम्बख्त राइटर...?"

"वह देखिये..." जगरूप ने अपनी तथा नन्दकुमार की बर्थों के बीच की 'झिरी' में बैठे लघु-काय लेखक को दिखलाया : "मुझे याद ही न रही और यह बर्थ पर टँगी मेरी टाँगो के बीच रैपर के अन्दर खर्राटे ले रहे थे। मै पुस्तक पढ़ने मे मशगूल था।" थोड़ी देर रुक, कृपलानी का रुख़ देख दुष्टता से वह मुस्कराया।

"याद रहे !" जगरूप ने मजाकाना अदा से कहा : "महाशय नन्दकुमार उर्फ 'नन्दन' मामूली लेखक नही है, जिनकी जरा पलक झप जाने से लन्दन की साम्राज्य-शक्ति सवा ढाई घंटे तक किंकर्त्तव्यविमूढ बनी रही।"

इसके दूसरे ही दिन चौकाघाट ज़िला-जेल का सियासी-जमघट

भग कर दिया गया और विविध सजाओ के सत्यागही-बन्दी एक बार पुन प्रान्त के विभिन्न कारागारो मे विभाजित कर दिये गये।

और चौराचौरी-हिसा-काण्ड हुआ, जिसके फलस्वरूप गान्धीजी ने फुलस्पीड-आन्दोलन के तूफान-मेल पर फुल-ब्रेक लगाया। ऐसी त्वरा से कि सारा रेलारेल हलहला उठा। आन्दोलन की ट्रेन उलट-सी गयी। सारे देश में निराशा और सन्नाटा छा गया। विदेशी प्रभाव का प्रेत पुनः प्रचण्ड-ताण्डव करने लगा।

: ८ :

यह मटन-मार्केट यानी मान्स का बाजार है। बम्बई के मशहूर, सुन्दर उपनगर सान्ताक्रूस की रेलवे-क्रासिग के पास उन दिनो अच्छा-सा मान्सो का बाजार था। उस बाजार के फाटक के आस-पास कई कसाई नौजवान अल सुबह ही आ जाते और गाँजे के दम लगाते या चरस-भरी सिगरेटे पीते थे तबतक जबतक नौजवानी से फुदकती, अध-नाचती, हाथ में झोला या बाँस की चँगेरी लिये वह साँवली क्रिश्चयन नौकरानी छोकरी अपने सेठ के लिये मटन वगैरह खरीदने को आ न जाती। उसे देखते ही सब-के-सब कसाई-कुमार धृष्ट-भाव से उसको घेर लेते :

"भेजा चाहिये...तो भेज मुझे ! तू क्यों तकलीफ उठाती है ?"
"कलेजा चाहिये तो मै (ला) दूँ ?
"सीने से लगती हो तबीअत...मै हाजिर करूँ ?"
"गज़ब रे ! अभी तो बारे ख़ुदा बारही बरस के है ?"
"तेरा नाम ? नाम आज बतला दे कि माला जपा करूँ ?"

सचमुच वह क्रिश्चियन लडकी बारह-बरस से विशेष की नही दिखती थी। उसने चमककर नाम बतलाया ·

"तेरी माँ !"

"अच्छा मेरी माँ ! तेरा नाम ?"

"तेरी बेन . !"

वह उन आवारो की तरफ ऐसे ओठ सिकोडती जैसे उन पर थूक देगी और बदमाश बिखर जाते। वह मार्केट मे उसी तरह नाचती, निर्भय घुस जाती।

"कैसी जालिम . !"

"कैसी कमसिन...!"

"क्या नाम ? कहाँ काम करती है ?"

"इसकी माँ एक बोहरा बडे आदमी के यहाँ खाना पकाती है। जुहू के पास बगला है। सैकडो नौकरानियाँ गोश्त लेने आती है, पर यह तो छोकरी है कि आफत ! एक दिन चरस के नशे मे चकाचक चूमने को जी चाहता है। बला से नतीजा कुछ हो।"

"ऐसी छोकरियो से भी जबरदस्ती जरूरी है क्या जिनके लिये चाकलेट, टाफी, एक एकन्नी-दुअन्नी काफी है।

"क्या कहते हो ?"

"मैने तो अभी परसो दाँतो मे चवन्नी दबाकर इससे कहा मूँ से ले सके तो ले ले ! और इसने तड़न, ताबड-तोड,अपने मूँ से मेरे ओठो में दबी चवन्नी ले ली। लेकिन अब फिर जो मैं उसे चूमने को लपका तो अँगूठा दिखाकर हरामिन नौ-दो-ग्यारह हो गयी।"

"कसम खुदा की !" एक ने चमककर सुनाया—"मेरे होठो से ले, तो मै रुपया देने को तैयार हूँ—चोटीदार, कलदार !"

"अबे चल बे चण्डू-चट्टू !" चवन्नीवाले ने सुनाया—"रुपया चोटीदार कभी तेरे बाप ने भी देखा है ?"

"देखा साले !" एक ने बीच ही में सुनाया - "कैसी तीखी गाली दे गया ? जिसके बाप का कोई ठिकाना ही नही—उसका बाप बखान गया।"

"हा-हा-हा-हा !"

"क्या कही है। वह देखो, आ रही है ! यह जब जवान हो जायगी तब क्या होगा ? अभी से दिलफेकुओ का खून जोश खा रहा है।"

"जी करता है · !"

"पहले मुझे कहने दे · ·जी करता है · !"

"अबे पहले मुझे कहने दे · जी करता है कि साली को नरम काकडी की नरह अक्खी-की-अक्खी खा जाऊँ।"

"इसकी माँ को नही देखा ? अगर यह नरम काकडी है, तो वह कटीला-फानस—कटहल का फल। मोटी, काली, दाँत बडे-बडे, नाक चिपटी, आँखो की जगह गोल-गोल गड्ढे। उसको तो दिनदहाडे चुडैल समझ कर आदमी भाग पडे और रात मे तो सरासर चुडैल। बडी लड़ाकी। तुम लोगो के नेक इरादे अपनी छोकरी के बारे मे उसे मालूम पड जायँ, तो एक-एक के सर पर वह डकिनी की तरह डकारने लगेगी। इसकी माँ को देख लोगे तो फिर इसकी साया से भी तौबा-तौबा करोगे।"

"जब माँ की इतनी गा गया तब बाप की भी गा जा · ·!"

"बम्बई की ऐसी छोकरियो के बाप की तमीज करना जिनकी माएँ नौजवानी से ही सेठो की खिदमत मे गदराई और बुढाई है, मामूली काम नही· · ·।"

तबतक वह लडकी मार्केट से 'बाजार' लेकर इनके सामने से गुज़री, परम प्यारी दुष्टता से तेज-तेज ताकती हुई।

"अरी · · !" एक ने रोका।

"ओरी की तो ऐसी वैसी मिस्टर !" वह तमकी—"भले आदमी की तरह नाम लेकर पुकारना सीखो। मेरा नाम है मिस मरियम रोज।"

"क्या नाम ?" एक ने धूर्त्त-भाव से सुनाया, "मेस्मरेजम ? भाई क्या नाम—जैसा नाम वैसा काम···मेस्मरेजम करना।"

"मेस्मरेजम नही—जगली कही के !—मिस मरियम रोज ।"

"अच्छा, चवन्नी मै अपने मूँ मे दबा दूँ ?"

"चल ! छोकरी छलककर छः फुट दूर जा रही। चवन्नी-जैसी तेरी सूरत भी हो। चवन्नी जिनके पास होती है वे मार्केट के अन्दर फटीचरी नही करते।" वह चन्द कदम और सडक की ओर बढ गयी। तबतक एक गुण्डे ने दाँतो में चवन्नी दबाकर उसे आकर्षित किया ही "देख ! नई चवन्नी है।"

"चल ! चालबाज ! धेले पर कलई करके मुझे ठगने चला है··।"

"चाँदी की है और चमाचम्म !"

"चल !" वह ऐसे बोली जैसे चवन्नीवाले को निकट बुला रही हो। "मुझे तो इतनी दूर से साफ कलईदार धेला नजर आ रहा है।"

वह आवारा जब यह साबित करने के लिये उसके निकट गया कि चवन्नी चवन्नी है, तब वह चचला बिजली की तेजी से उसके होठो से चवन्नी झपट कर नौ-दो-ग्यारह हो गयी और चवन्नीवाले का मुँह दुकडहे-सा रहा गया !

चवन्नी-चरित्र सुनकर मिस रोज की भीषण माता उस पर नाराज नही हुई। चवन्नी उसने स्वयं लेते हुए पुत्री को उपदेश दिया—"चवन्नी नही अभी तो दिन-दिन तुझे जवानी-पर-अफीम खानेवाले बम्बई के मर्द क्या-क्या रकमे देगे। पर जब मै तेरी उम्र की थी, तब किसी बात के बदले मे किसी मनचले से कुछ नही लेती थी और लेती थी तो ऐंठ

कर। उन्नीस बरस तक तो कोई मेरे इस तन को हाथ तक नही लगा सका था। तू तो अभी तनक-सी है, भले लग गया हो पन्द्रहवाँ तेरा। कहे देती हूँ, खबरदार जो कभी सौदा किया। पूछ तभी तक रहेगी जब तक मर्द से बची रहेगी। मर्द बराबर खराब होकर भी अरमे तक ज्यो-का-त्यो चिकनाघडा बना रह सकता है। पर, औरत का लटकना फाँसी पर लटकना होता है। तू मेरी लडकी—कलेजी, खून है—जिस दिन जानूँगी, तू किसी मर्द पर जान देती है—जाने सेन्ट जॉन—मै तेरी जान लेकर रहूँगी।"

गर्जेकि अपनी माता की सहमति से मिस मरियम रोज जवानी की दहलीज़ पर नाचते-कदम रखते ही मनचलो को ललचाकर, बनाकर अन्नी से, चवन्नी से, अठन्नी से रुपये तक ऐठने लगी लेकिन नितान्त धूर्त्त-बुद्धि से स्वय को पुरुषो के गभीर आक्रमणो से बिलकुल बचाती हुई। फिर भी रोज-रोज अनर्थ साधनेवाले को एक दिन फँसना ही होता है और अच्छी तरह से।

वह फँसी तो सान्ताक्रूस की पुलीस से। एक दिन शाम को मिस रोज किसी मनचले को जब बना रही थी, एक हवलदार दूर से ताड रहा था। ज्योही उससे कुछ ऐठकर वह भागने पर आमादा हुई त्योही हवलदार ने ललकारा। वह थर्रायी, डरी, काठ-सा मार गया उसे। अब तो हवलदार ने धर पकडा "रॉड, यह फोरस रोड है ? किसकी लडकी है ? चल चौकी पर ?"

हवलदार मराठा था, जिसके पास ही एक और सादा पुलीसमैन भी था। उसने उसी को वह लडकी सौप दी—इसको चौकी पर ले चल ! मै अभी आता हूँ—देख, कोई तग न करे।"

"तुम कहाँ जा रहे हो ?" सादे पुलीसमैन ने हलवदार से पूछा।

"मै जॉनबुल बार से अभी आता हूँ।"

सो, मिस रोज को पहली बार ऐसे पुरुष से पाला पडा सान्ता-

क्रूस पुलीसचौकी की हवालात मे, सारी रात, कि वह तिलमिलाकर रह गयी। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे बरसो की दुष्टता का दण्ड एक-ही रात मे दण्डदाता ने दे दिया। उसकी माँ को खबर दूसरे दिन किसी दिल-फेंक कसाई ने दी। तब—अपने सेठ की बडी कोशिश-पैरवियो से लडकी का लथपथ-उद्धार किया गया।

मिस रोज को पुरुष का पहला परिचय पुलीस चौकी मे सारी रात जो मिला उसका स्वाद सुहावना उसे न लगा। मगर, मैं यह नही कह रहा कि उसके मन मे कौमार्य का आदर था। सतीत्व के रहने-जाने का गम उसे नही था। अफसोस था तो यह कि वह पुरुष के चगुल में पड कैसे गयी। वह बोहरा सेठ भी जिसके यहाँ मिस रोज की माँ रसोईदारिन थी, इसी प्रतीक्षा मे था कि लडकी सयानी हो तो माता से प्रस्ताव करे। पर पाजी पुलीस ने पहले ही पहल कर दिया। पुलीस से रोज के छुडाने में सेठ के ३००) रुपये लगे तो और भी बात बन गयी, बिल्ले के भाग छीका टूटा। अन्यथा रोज की माता बरसो से मन-ही-मन तय किये बैठी थी कि सेठ ५० का हो, ५५ का, लडकी १५ की हो, १६ की; करोडपति की कृपा, बबैये-विलासी की कृपा, सुनहली और रुपहली होती है। फलत पुलीस-काण्ड के बाद रोजी का बाजार जाना प्राय बन्द हो गया और बोहरे सेठ ने उसे अपनी खास सेवा मे स्वीकार कर लिया।

सो, पुलीस के बाद दूसरा पुरुष भी जो रोजी को मिला वह नेक तो था—अनेक उपहार देनेवाला—पर, प्रौढ-कामी, निपुण रस-लोभी, सेठ की सेज पर भी स्वाद या सुख का अनुभव उससे कहा हुआ। और उसे लगा जैसे दण्ड ही वह बराबर पाती जा रही हो। पहले पुलीस की बर्बरता से, अब माता के लोभ और आश्रयदाता के काम से। सेठ की सेवा मे उसे भोजन-कपडो की सुविधा सहज थी। फिर भी एक घुटन-सी उसे होती थी, यातना-सी। अक्सर उसके मन मे

आता था कि ऐसी माता को छोड वह कही और भाग जाय कि ऐसे रस-हीन-जीवन से नजात मिले। फिर भी, अदना मजदूरन लडकी, जवानी की ललचीली ड्योढी पर आकर्षक खडी, कोई कुशल-प्रद जगह उसे वैसे ही नजर नही आयी जैसे गृद्ध-चीलो से भरे जगल मे चटकाली चिडिया को। और रोजी ने मन-ही-मन माता मरियम की मानौती की कि वही उसे नजात दिलावे इस नीच घुटन-भरे वातावरणसे।

बहुत दिनो बाद बारे उस दिन उसकी माँ ने सान्ताक्रूस के बाजार से कुछ लाने को भेजा। बहुत दिनो बाद जैसे व्याकुल पछी को पिजरे के बाहर की हवा का सुखद सामना हुआ। वह जैसे अनायास ही सही सडक से बहक-सी गयी। सान्ताक्रूस मार्केट छोड रेलवे लाईन पार कर सन्दिग्धमन मगर उसी तरह फुदकती चिडिया की तरह वह उस तरफ बढी जिधर मिलिटरीवालो की बैरके थी। पर कुछ दूर जा, कुछ सोच, वह पुन पीछे मुडी और एक दूसरी सडक की तरफ बढी। तभी पीछे से उसको किसी ने पुकारा —

"आया—ओ आया!"

पीछे मुडकर रोजी ने देखा तीन सूट-बूट-धारी आदमी—एक के हाथ मे बडा-सा पका हुआ कटहल।

"मै पूछता हूँ—फानस साफ करना तुमको आता है? छुरी हमारे पास है, प्लेट भी है, पर यह फल साफ कैसे किया जाता है, हम नही जानते।"

"अच्छा! फानस साफ करना तुम नही जानते—!" वह आश्चर्य चचल हँसी—"मै कर दूँगी। कहाँ है छुरी?"

"बिलकुल पास ही—" दूसरे ने सुनाया "वो देखो वहाँ! लोग बैठे हुए है न···?"

"हम लोग 'रायल फिल्म स्टूडियो' वाले आउट डोर तस्वीर लेने आये है।"

"ओह ! फिल्मवाले !"

वह उन तीनो के साथ यो हो रही जैसे हरे घसियारो के साथ बाल हरिणी।

और वह जरूर साँवली थी, पर चेहरा रोजी का कटवाला था। वह नाटी थी, फिर भी यौवन ने कटि, नितम्ब, सीना सभी अग परम सुडौल बनाये थे। यह मै किसी को लुभाने-बहकाने के लिए नही लिख रहा। जब रोजी कटहल साफ करने लगी तब फिल्म डाइरेक्टर और कैमरा-मैन ने उसके सारे अगो की पडताल कर डाली। उससे जरा दूर हट उन्होने आपस मे राय भी जाहिर की—

"स्वीट सिक्सटीन'''।"

"और अछूती ''।"

"चेहरा तो इसका फिल्म-लायक है।"

"उससे भी जियादा फिल्म कम्पनी के मालिको के लायक है।" डाइरेक्टर ने कहा।

और अबकी अबवाले जाने तब वह जमाना था जब फिल्म डाइ-रेक्टर बनाने मे खासी औरत सरासर सफलता की देवी साबित होती थी। सारे दिन और नि सन्देह आधीरात तक शराबे पीते हुए औरतों को अपनी सनको पर चाँदी के तार मे बाँधकर कोक-कठ-पुतलियो की तरह नाचते हुए फिल्म कम्पनियो के अधिकतर मालिक फिल्मे प्रोड्यूस किया करते थे। तब वह जमाना था जब बम्बई मे देसी-विदेसी शराबो और ताडी की त्रिवेणी दर-दर बहा करती थी जिसमे सर्वा ग स्नान कर भक्त लोग सगम-पुण्य लूटा करते थे। कृपया भूले नही—यह चर्चा तीस-पैतीस साल पूर्व की है।

'फानस तो खूब तुमने साफ किया।" "अब डाइरेक्टर उससे अकेले बाते कर रहा था। "कितने पैसे दू ?"

"पैसे ?" वह ऐसे मुस्कराई अधरोष्ठ सकुचित कर जैसे पूछती हो कि को इन ओठो का रस चखोगे ?

"तो क्या रुपया ?"

"रुपया ?" उसने अँगडाई ली। डाइरेक्टर को जैसे हवा मे लेलो अशर्फी दिखा दो बदन ! सुनाई पडा।

"तो क्या मामूली कटहल साफ करने की कीमत रुपये से भी विशेष ? ना बाई ! यह इन्साफ नही । यह एक रुपया लो। इससे जियादा भी तुम्हे मै दे-दिला सकता हूँ बशर्ते कि इस फिल्म मे एक छोटा-सा करेक्टर प्ले कर सको।"

फिल्म में काम ? रोजी मन ही मन नाच उठी—इसके लिए तो वह प्राण तक दे सकती थी। पर "मामी" उसको अपनी विभीषणा जननी की याद आयी।

"फिल्म मे काम कर तो लूँ—पर मेरी मामी मजूर नही करेगी।

"तुम छोडो मामी को ! मै सब देख लूँगा। चलो हमारे साथ ।"

"मगर मामी · ।"

"मारो गोली ! मजदूर लडकी को मामी उसकी जवानी से कुछ कमा लेने के सिवा और क्या दे सकती है ? तुम्हे तो—मजूर हो तो—मै अपनी पत्नी तक बना सकता हूँ !"

"क्या ?" रोजी ने डाइरेक्टर की तरफ ऐसे देखा जैसे कहती तो हो "झूठ !"

"सच कहता हूँ।" डाइरेक्टर ताड गया कि मछली फँसेगी—"और सबूत देता हूँ। यह मेरी जडाऊँ अगूठी—देखो तुम्हारी अगुली में आती है ? माँसे मत डरो—। मै वचा लूँगा।"

यानी शाम को जब फिल्म-पार्टी लौटी, रोजी डाइरेक्टर की मोटर मे थी। स्टूडियो मे आते-आते रात के आठ बज गए। स्टूडियो पहुँचने

पर रोजी ने देखा कि जहाँ "सेट" लगा हुआ था वही गोलमेज की चारो ओर बैठे कोई आठ-दस आदमी शराब पी रहे थे। उनमे से एक-एक ने उसकी तरफ ऐसे देखा जैसे वह चिकन की प्लेट हो। डाइरेक्टर रोजी को एक मोटे, लम्बे-तडगे आदमी के निकट ले गया। "रुस्तम सेठ! यह हिरोइन नयी लाया हूँ। चलेगी ?"

"चलेगी नही, दौडेगी ?" किसी दूसरे मद्यप ने कहा "शूँ नाम छे ?"

"मिस रोज ?"

"भई वाह! नाम क्या रसीला—जैसे बोसा!"

"इसे मेरे कमरे मे पहुँचाओ!"

स्टूडियो के दूसरे खण्ड पर रुस्तम सेठ का प्राईवेट रूम था। "सेठ ने पसन्द कर लिया। तुम किस्मतवाली हो। यह सेठ का अपना कमरा है। आज तुम इसी कमरे मे आराम करो। कल मैं अपनी फ्लैट मे ले चलूँगा। कोई डर की बात नही है।"

डाइरेक्टर चला गया। थोडी देर बाद एक छोकरा रोजी के लिये बढिया खाना—कई डिशो मे—और थोडी-सी लाल शराब रख गया। और रोजी ने खाना ही नही खाया, दारू भी पीली। फिर दरवाजा लगा सेठ के सुन्दर, अति सुखमय बिस्तरे पर वह लेट रही। डाइरेक्टर देखने मे सुन्दर और जवान, साथ ही गर्म-दिल था। रोजी को सचमुच वह पसन्द आ गया था। उस क्षण भी वह उसके निकट होता तो वह सुखी ही होती। क्योकि पुलीस और बोहरा सेठ के दुर्गन्धित-रसो म वह बहुत ही दुखी थी। रुपये-कपडे की भूख उसकी उतनी तेज नहीं थी जितनी एक विश्वस्त, सुन्दर जीवन-साथी की। डाइरेक्टर की सुखद चिन्ता मे ही रोजी को नीद आ गयी,—जैसे घनघोर बेहोशी की।

और नीद ही मे उसे लगा जैसे कोई जबरदस्त प्राणी उससे बलात्कार कर रहा है। पर नशे से दुर्बल उसमे बोला या चिल्लाया—

विरोध तक न किया जा सका। शायद वह मूर्छित हो गयी।

उसकी नीद खुली कोई आठ बजे दिन—तो क्या देखती है कि रायल फिल्म स्टूडियो का मालिक रुस्तमजी उसकी बगल मे भैसे की तरह पडा खर्राटे ले रहा है। उसने उठने की कोशिश की तो देह काँटे सी दुखती मालूम पडी। शक्ति समेटकर उठी तो पलग से नीचे गिर पडी। सामने देखती है बडे आईने मे अपना चित्र तो—नगी, बिखरी, ओठ सूखे रस-रहित, गालो पर दाँतो के निशान और सीने पर नाखूनो की कितने ही खरोचे।

"हरामी!" कुम्भकर्ण की तरह पडे रुस्तम को ताक कर उसने स्वगत कहा और चारोओर ऐसे देखने लगी जैसे उस नर-पशु को मारने के लिये कोई शस्त्र की उसे जरूरत हो।

रात के खाने के बरतन अभी वही पडे थे जिनमे छुरा भी था, काँटा भी। सहसा छुरा उठाकर उसने रुस्तम के सीने की तरफ ताना सोते मे जैसे हरामी ने मेरा खून पीया है वैसे ही, क्यो न सोते ही मे मै भी? क्यो न? इसका खून कर डालूँ?

और उसने हुमक कर वार करने को हाथ ऊँचे उठाया। पर, हाथ उठते ही उसे सान्ताक्रूस की पुलीसचौकी की याद आयी। थर्राई वह और गज-भर पीछे हट गयी। उसके हाथ से छूटकर टेबुल का छुरा 'थप्प' आवाज कर उठा जिससे रुस्तम सेठ जाग पडा। पर, उसका ध्यान छुरे की तरफ नही गया। उसने रोजो की नगी वाडी-मात्र देखी और उठते ही जैसे कामासक्त हो गया।

"इधर आ साली!" रुस्तम ने रोब से कहा। कपडे तो पहन ले।"

"देख!" रोजी ने रुस्तम को अपना तन तकाया "कैसा कचरा कर डाला। हरामी! कसाई!"

"बके मत!" रुस्तम ने स्त्री-स्वभाव-परिचित-भाव से कहा, "तू

खुद ही तो फिल्म मे काम करने को आयी है । इस धन्धे में वैसी लाज-शर्म व्यापार के विरुद्ध है । तुझे फिल्म मे काम करना है कि नही ?"

"नही ।" रोजी ने तनककर कहा ।

"अरी साली ! मोटी पगार मिलेगी, चारो तरफ जाहिरात होगी, दुनिया तुझे देखने को आयेगी, तू कभी रानी बनेगी, कभी देवी, कभी नवाब-जादी, कभी शाहजादी । हर मेकप मे नये कपडे-नये-नये जेवर, जरी की साडियाँ—पहले तू बाथ मे मुँह-हाथ धो आ ! और फिर सही दिमाग से जवाब दे । इस कम्पनी के दो भागीदार है । मै और अहमद सेठ बोहरा । मै जब तुझे हिरोइन चुन लूँगा—तब अहमद सेठ 'ना' नही करेगे । कहाँ मजदूरन की लानती जिन्दगी, कहाँ फिल्मस्टार का बहारदार-जीवन और कष्ट-कसाला की कहे तो बिना कसाला मसाला नही तैयार होता, तू जानती है ।

वह साइलेन्ट फिलमो का युग था—हाँ, —मिस रोज की नियुक्ति एक पिक्चर मे काम करने के लिये साढे सात-सौ रुपये पर हुई । साथ ही, ढाई-सौ नकद एडवान्स भी दे दिये गये । कहाँ आवारो की चोच से चवन्नी का चाटना, कहाँ फिल्म की ऐय्याशी और ढाई-सौ एडवान्स । रोजी-राजी होने के लिये ही आई थी । लेकिन पहली तस्वीर 'पन्ना दासी' के बनने मे पूरा वर्ष लग गया और पूरे वर्ष तक रोजी को कभी रुस्तम और कभी अहमद सेठ के साथ कडी रात बितानी पडी । बेशक उसे उपहार, हार, अँगूठियाँ, साड़ियाँ दोनो तगडे प्रेमी देते रहे, पर पिक्चर बनी एक ही ।

और उसी एक के बाजार मे आने से फिल्म-व्यापार मे रोजी के लिए राज-मार्ग-सा खुल गया । 'इम्पीरियल कम्पनी' से उसे आफर, 'शारदा कम्पनी' से उसे आफर—'रणजीत' वाले उसे हाथो-हाथ लेने को तैयार । फिर भी अकेले आगे बढने की ताकत अबला रोजी मे न थी । अत बुद्धिमानी से उसने उस डाइरेक्टर को नही छोडा—चिपकी ही

रही। बाहर ऐसा समझा जाता कि वह डाइरेक्टर श्रीलाल की पत्नी है। दोनो एक ही फ्लैट मे साथ-साथ रहते थे। पर दोनो ही एक-दूसरे के सहारे अपना-अपना धन्धा करते।

अब रोजी दो-दो हजार कलदार के कान्ट्रैक्ट पाने लगी। फिर तो उसके क्रिश्चियन दर्जी बाप ने मन-ही-मन और धर्म-मन्दिर मे भी जाकर प्रभु और उसके एकलौते बेटे को नमन किया और विभीषणा माता ने माता मरियम को। दोनो ने दोनो ही की कन्दील की आरती उतारी। वे, हर महीने, रोजी से सैकडो रुपए ले आते। वह इन्हे श्रद्धा से रुपए न देती और चटपट देकर झटपट भगा देती कि कोई यह न समझ सके कि उसके माता-पिता ऐसे वीभत्स और बेपोजीशन के आदमी है।

: ६ :

लीलाधर कत्थक का 'करेक्टर' मेरे मते इस कथा की विशेषता नही है। यह कथा तो ३५ वर्ष पूर्व की काशी—'भदैनी' के तरुण ब्राह्मण-कुमार जगरूप का पाठक-जगत के सामने रखने के लिए रची जा रही है, पर बहुत अशो तक प्लाट कपोल-कल्पना कम. जीवित चरित्रो के जीवन-सघर्ष पर अधिक आधारित होने से नाटक में जिसका जितना भाग और प्राण है, देना ही पडेगा।

लीलाधर वैसे भी महा-मनोरजक आदमी। पिछले परिच्छेदो मे उसकी ऐसी-ऐसी बाते आयी है कि अनायास ही कोई उसको गभीर विचारक और ज्ञानी मान ले—होती भी थी उसकी बाते गभीर-अनुभव और काल-ज्ञान-भरी हुई, पर लीलाधर को भी—सौ-मे-सौ की तरह—काल और वेदना ने ही बुद्धिमान बनाया था। होता क्या है

कि अच्छा अथवा सफल गुणी, कालानुसार, जब दु ख या वेदना पाता है कोरी कल्पना के आगे जब कठोर-सत्य आता है तब उसे चेतन का चाबुक-सा लगता है और वह अक्सर, पानीदार घोडे की तरह चमककर तेज हो पडता है। आरम्भ मे लीलाधर कत्थक की आचार-सहिता मे सदाचार नाम मात्र को भी नही था। बत्तीस साल की वय तक तो उसने ब्याह ही नही किया था और बाजार ही सूँघता, रस लेता रहा। वेश्याओ को सिखलाता, उन्ही के यहाँ मुजरे बजाता और फिर अव्वल-जान की कोठी की कमाई, दोयम-जान के कोठे पर उडा आता।

ब्याह भी सोच-विचारकर लीलाधर ने कहाँ किया था। किसी वेश्या के साथ बारात मे वह सारगी-वादक बनकर जयपुर गया था। वही से एक कत्थक की जवान और बडी ही सुन्दरी लडकी उडा लाया। 'शोभा' उसका नाम था। वह लीलाधर के रूप और गुण पर मोहित होकर विवश चली आयी थी। वह बडी ही वफादार लडकी थी। दोनो बराबर कबीरचौरा मुहल्ले मे पति-पत्नी की तरह रहते थे। कुछ दिनो तो लीलाधर शोभा का अनुरक्त-भक्त जैसा था—दो वर्षो तक, बस। इसी बीच शोभा के एक पुत्र पैदा हो चुका था। अब लीलाधर एक नयी वेश्या का दीवाना-परवाना बना जो ऐसी जालिम माशूका थी कि उसने लीलाधर के छक्के छुडा दिये—अपनी—फँसाऊ-अदाओ मे उसको जकडकर वह—रुपये-पर-रुपये और गहने पर-गहने माँगती—और वह देता। गा कर देता, नाच कर देता। कोठे-कोठे सारी रात बजा कर देता। फिर भी वेश्या माँगती ही जाती और जब न पाती तो लीलाधर से बुरे-से-बुरा बर्ताव करती।

उसने औरत के गहने बेचकर वेश्या की फरमायशे पूरी की, घर गिरो रखकर जर दिये और कुछ नही रह गया तब सुन्दरी शोभा को वेश्या बनाने का विचार किया। उसको फरेब देने, फुसलाने लगा कि वह नाचना सीख ले और बाजार मे बैठ जाय। फिर तो सारे बनारस के

आशिक उसको हाथो-हाथ उठा लेगे, सर-माथे पर। लीलाधर के इस प्रस्ताव पर घृणा और क्रोध से शोभा ने थूक दिया। बोली "जहर खाकर मर जाना बेहतर है बाजार मे नाचने से।" लीलाधर ने कहा . "अच्छा बाजार के लिए न सही, पति की आज्ञा से उसके प्रसन्नतार्थ तुम नाचना सीखो। किसी और से नही, मुझी स—।" मगर वह टस-से मस न हुई। लीलाधर ने आवेश में उस बेचारी को गालियाँ दी, धमकियाँ दी, जूतो से पीटा तक, पर, वह बराबर नाचने से नटती ही गयी। उसने कहा —"मै तुझे प्यार करती हूँ। तू मुझे मार डाल रे कसाई! मै तुझे ही प्यार करूँगी। तू मेरी जान ही पर आमादा है तो अब मै भी बहुत जीनेवाली नही—। लेकिन ओरे—ओरे अन्यायी? मै तुझे छोड़ूँगी नही। फिर—फिर मिलूँगी।"

और दो साल का बेटा रोता छोडकर शोभा अभागिनी, एक शाम, अपने कपडो पर मिट्टी का तेल छिडकर हो—हो होली की तरह सरासर सती हो गयी थी। सारे कबीरचौरा मुहल्ले मे हगामा-सा उठ खडा हुआ था। घर-गृहस्त औरते सन्नाटे में आ गयी थी मर्द हैरत में। सिपाही आये थे, पुलीस आयी थी। तब लीलाधर ने रोने का नाटक करते हुए पुलीस से यही कहा था कि शोभा का दिमाग कुछ सनक-सा गया था। अक्सर बकती-झकती थी। उसी सनक में, उसने मेरी गैरहाज़री मे, खुदकुशी कर ली है।

मगर मुल्लू कत्थक के घर एकत्र मुहल्ले की औरतो की चर्चा कुछ और ही थी .

"इसी मौत-पडे ने सता-सताकर बेचारी को जल-मरने को लाचार किया और अब मर जाने पर कहता है कि सनक गयी थी। इसकी पगडी मे आग लगे।"

"वह भी तो महा हठीली थी। नेक लुगाई थी तो क्या हुआ। अरे खाविन्द कहता था तो नाच लेती! यह भी कोई जान देने की

बात थी ? हम कत्थकों के लिए तो गाना-बजाना-नाचना ही सब-कुछ है। यही देव, यही पित्तर !"

"चलो बहन !" एक कत्थकिनी ने कहा—"तुम बे-सर-पाँव की—ऊहुँक !—अन्याय की बातें करने लगी। उसने ठीक किया कि मर-मिटी मगर शान, मान, आन के खिलाफ काम नहीं किया। आखिर अभागिनी शोभा थी तो राजस्थान की जौहरी-मिट्टी की बनी हुई-मर गयी, नाची नहीं। कत्थकों के यहाँ गाना-बजाना-नाचना धर्म है—माना, पर मर्दों का न कि औरतों का ·।"

"क्या धरम !" एक ने नाक सिकोडकर कहा—"यह मौतपड़ा धन्धा किसे भरपेट भरमहीने देता है ? इसी कबीरचौरे में ऐसे कितने कत्थक हैं जिन्हें खाते-पीते आसूदा कहा जा सके ? इस धन्धे पर फिट-कार है, किसी शय की। जिसने भी हाथ में तबूरा लिया, उसी के करम में भिखारीपन ! निशाचरी-वृत्ति · दिन में सोना, रात में रंडियों के समाज में, साज-बाज में जागना। कहते हैं गाना, बजाना, नाचना ऐसा हुनर है कि जानकार पत्थर पिघला दे, पानी बरसा दे, दीवाली जग-मगा दे। ऐसे हुनर का ज्ञानी रईसों के आगे यों दाँत दिखाता है जैसे आदमी में न मान हो न तेहा।"

"क्या बहन !" लछमन कत्थक की मोटी महिषी ने विवाद में अब योग दिया, नगाडे की आवाज में—'तुम तो पुराण ही उकट चली। धन्धे का कौन गुन्नह अगर आदमी का चलन ही ठीक न हो। तुम कहती हो गाने-बजाने वाले भूखों मरते हैं। मैं पूछती हूँ बडे रामदास भूखों मरते हैं ? मँगरू महाराज भूखों मरते हैं ? मेरा लच्छू जो है अभागा है ? क्या तुम भी बकती हो। इन लोगों को बाबू राजा, रईस, मियाँ, बडे-मियाँ, हाथो-हाथ उठाये रहते हैं। सबके घर-बार है, बाल-बच्चे हैं। अब जिसकी करनी न करतूत, चाल न चलन हो, वह तो लक्ष्मी के घर में अभागा रहेगा ही"

"अरे तुम तो चुप ही रहती लछमन बो···" पहली जबानतेज कथकिन ने कहा—"सारा कबीरचौरा जानता है कि तुम्हारे यहाँ चिकनाई कहाँ से आती है। घर मे पैसेवालो को घुसाकर रकम चीरने से गाने-बजाने के धन्धे का क्या वास्ता ? तुम चुप रहो। तुम्हारा मुँह बोलने लायक नही है।"

"और तोर रे ? कसबिन !" लछमन बो का धैर्य जाता रहा। वह शुद्ध या सहज स्त्री-स्वभाव उतर आयी और इसके बाद उस औरत-मण्डली मे वह महाभारत, उकटा-पुराण, यह ले-दे मचा कि परदे की बहुएँ बाहर निकल आयी; इस भय से कि हत्या तो किसी ने किसी की नही कर दी। और बच्चे तो मारे डर के भाग ही चले।

खैर, शोभा को आत्म-हत्या के बारे मे पुलिसवालो से झूठ-सच कह-सुन, रो-गा, हाथ-पाँव जोड उनकी 'प्रापर' पूजा-पत्री प्रस्तुत कर लीलाधर ने किसी तरह जान तो बचाई लेकिन इस मृत्यु का उसको बडा सख्त धक्का लगा। जैसे उसके माथे का एकाध पुर्जा ही गडबड हो गया। वह अर्धविक्षिप्त-सा आचरण करने लग गया। शोभा के शव के साथ लीलाधर घुँघरू बाँधकर चला और मणिकर्णिकाघाट पर उसकी चिता को आग देने के बाद रावण के रचे शिवताण्डवका एक श्लोक तेजस्वी कडकडाते स्वर मे उसने सुनाया —

स्मरान्तक, पुरान्तक, गजातक मखान्तकम्
गजान्धकान्ध कान्तक तमन्तकान्तक भजे।

और जलती हुई चिता के सामने ताण्डव-नृत्य नाचने लगा।

"इस शोक के अवसर पर क्या यह तमाशा लगा रखा है लीलाधर।" उसको एक पडौसी ने टोका तो उसने हँसकर जवाब दिया—"चाचा ! यह मरी नही है, नैहर गयी है। मुझसे वादा करके कि पुन लौटेगी, मिलेगी।"

"चल !" एक दूसरे कत्थक ने लीलाधर से साधिकार भर्त्सना के

स्वर मे कहा—"जबतक जीती थी तबतक तो तूने अभागिनी को भूसे-भाव सताया और अब करता है नाटक, स्वाँग, ढोंग-धतूरा। मेरी जबान कडवी, मै बदनाम पर सच बोले बगैर मुझसे रहा नही जाता। कोई खुश हो कि नाखुश। यह कत्थको की जात औरत-मारक है। स्त्री हम लोगो के जैसे सहती ही नही, हम उसे · · ।"

"जाने भी दो !" तीसरे समझदार ने समझाया। यह श्मशान है, शान्ति की जगह। जो हुआ, हुआ। उसे तो अब विधाता भी बदल नही सकता। अब तो हमारा फर्ज यही है कि शान्ति से परम-पिता से प्रार्थना करे कि वह प्रसीदे और अभागिनी आत्मा को शान्ति दे।"

श्मशान से घर लौटकर लीलाधर ने शोभा के पुत्र राजू को जैसे जीवन में पहली बार देखा, चीन्हा और प्रसन्न-पुलकित हुआ। "बेशक वह मरी नही। इस राजू मे वही शोभा राजती है। वही नाक, वही नक्शा।" और उसने द्विवर्षीय बच्चे को हृदय से लगा लिया—सावेश। बच्चे की आँखे ताज्जुब-मिश्रित भय से बडी-बडी हो उठी।

इस घटना के बाद पूरे बारह वर्षो तक लीलाधर था और राजू था। माता की तरह उसने बच्चे को पाला-पोसा। फिर गुरु की तरह गाने-बजाने और नाचने की शिक्षा देने लगा। चौदह साल का राजू राधा का रूप भरकर जब लास्य-पद्धति का नृत्य नाचने लगता तो लीलाधर को ऐसा लगता जैसे शोभा ही नाच रही है। कबीरचौरा मुहल्ले मे सैकडो कत्थक-कुमार, पर, राजू राजू ही था। उसके मुकाबले, एक भी, गा-बजा या नाच नही सकता था। लेकिन लीलाधर ने उसे कभी भाडे पर बाजार मे नही नचाया। यद्यपि दूसरे कत्थक जरा-सा हुनर जानते ही लडको को—पैसेवालो की सनको पर बेखटक नचाते थे।

लेकिन जब राजू चौदह वर्ष का चमाचम बालक हो गया तब जैसे लीलाधर की भावुकता व्यापारिक-रग पकडने को मचलने लगी।

"कत्थक का लडका नाचे-गायेगा नही तो क्या वेद-पाठ से जीविका कमायेगा ? मगर नाचनेवाले लडको का चलन शहरवाले बिगाड देते है। सौ-मे-सौ सुन्दर लडके पहले तो बदमाशो की झको के शिकार—फिर बीमार, फिर बेकार हो जाते है।" उसके विवेकी-मन ने तर्क किया। लेकिन मतलबी-मन ने तेजी से काट डाला—"लडके बिगडते नही, लडके ही रहते है। बिगडती लडकियाँ है, किसी की चपेट में पडकर। लडकी मिट्टी की गागरी, बिगडी तो बिगडी। लौडा है धातु का घडा—सौ बार मल लगने के बावजूद जरा ही माँज-धो से ज्यो-का-त्यो।"

सो, पहली बार लीलाधर ने राजू को काशी के एक संगीत सम्मेलन मे नचाया। और एक ही प्रदर्शन मे उस लडके ने रसिया बन रसियो को प्रसन्न कर दिया। चल निकला उसका धन्धा। अब लीलाधर पचीस रुपये मे एक घटा तक नाचने का सौदा करता। इस स्थिति मे वासना के नशे में लडके-लडकी मे भेद न करनेवाले सर्व-भोगी भी राजू की तरफ हाथ लपकाते, लेकिन लीलाधर बराबर निगरानी करता। ऐसो से रुपये तो ऐठ लेता, पर लडके को उनके आक्रमण से बचाता। रुपये ऐठने के इस मोह मे लीलाधर बखुशी अपने बेटे को राधा या कृष्ण की पोशाक मे, बदचलनो की गोद मे, उनके चुम्बनो की बौछारो मे जाने देता; पर सावधानी से, इसके आगे की दुर्घटनाओ को बचाता हुआ और इसमे उसे कुछ भी अनैतिक या अस्वाभाविक न लगता। क्योकि जब वह स्वय राजू-जैसा था तब अपने अभिभावको द्वारा इससे भी बुरी विधि से बाजार-बाजार नचाया जाता था। कहते है काचन यानी लक्ष्मी अथवा टके मे सब गुण होते है। यह सही हो या न हो, पर यह तो सर्वथा सही है कि ठनाठन की चमाचम में अनेक दुर्गुण सद्गुण की तरह नजर आते ही है। कुछ आज ही नही, उस काल से जब आदमी ने रुपये के लिए पहली

बार आदमी की जानतक लेने मे पुण्य के दर्शन पाये थे और जब औरत ने पहली बार लोभ या अभाव-वश टके को सतीत्व से—स्वर्ग से—बढकर माना था।

: १० :

"नर्तन-रत त्रिभंगी-मुद्रा मे इस बालक के छोटे-छोटे दोनो चरण" जगरूप ने लीलाधर से कहा "चरणो की चारुता के चमत्कारी चित्र जैसे है! यह किसका लडका है लीलाधरजी?"

"हाँ बेटा राजू!" लीलाधर ने नाचते हुए किशोर से कहा "चाचा के सामने अदा तो करो! पहले वाणी से, फिर भाव से और फिर पावो से ••।"

"भूत नाथ, भय-हरन, भीम, भय-भवन, भूमिधर,
भानुमत, भगवन्त, भूति-भूषन, भुजग बर,
भव्य-भाव-वल्लभ भवेस, भव-भार-विभजन-
भूरि-भोग, भैरव, कु-जोग-गजन, जन-रजन
भारती बदन, विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक नयन,
कह तुलसिदास किन भजसि मन, भद्र-सदन मर्दन मयन।
धिग धृकिट धान, धिग धृकिट धान
कृतिक धृकिट धा!
धृकिट धा! धा!"

किशोर राजू ने तुलसीदास का पद मुँह से सुनाने के बाद नृत्य के बोल पावँ और मुँह दोनो से अदा किये और जगरूप उस लडके की शोभा एकटक देखता ही रहा।

राजू का नख-शिख वर्णन किये बिना फोटो का फोकस सही शायद न हो। सर पर जरी के काम की किश्तीनुमा टोपी। पट्टेदार केश, किमखाब की अचकन, चूडीदार पाजामा और किशोर-सुलभ चुस्त कमर मे गुलाबी रग का फबीला कामी-दुपट्टा। विमल-मुख, कमल-नेत्र मौन रहने पर भी राजू का रूप मुखर-मनोहर।

"बडा हठीला छोकरा है।" लीलाधर ने सुनाया—"दो वर्ष का था तभी इसकी माता जाती रही। इसे कैसे पाला—मेरा जियरा ही जानता है। बडा ही हठीला. .।"

"राजू खुश किस वस्तु से होता है? मिठाइयो से?"

"ऊहुँक।"

"खिलौनो—कपडो से?"

"ना बाबा! आप हँसेगे—यह खुश रहता है...रुपये से। पैसे से नही, हाँ। आप क्या समझते है? यह रुपये जुटाता है। इसकी गोलख में आज भी जितनी रकम होगी उतनी मेरे पास भी न होगी।"

"तो मै इसे रुपये से राजी करूँ?" जगरूप ने जेब मे हाथ डाला।

"अरे ना! ना महाराज! मै इसको देता हूँ न। आप अन्याय न करे...।"

"लो राजू!' एक रुपया जगरूप ने लडके की ओर बढाया।

"नही राजू!" लीलाधर ने मना किया, पर राजू ने लपककर जगरूप से रुपया ले ही लिया। जगरूप ने पुन जेब मे हाथ डाला और एक रुपया और निकाला। सचमुच अब राजू जगरूप की गोद मे था। लीलाधर ने पूछा

"केमरा मै जहाँ से लाया वहाँ रख आऊँ?" जगरूप ने इशारे से स्वीकृति दी। लीलाधर वहाँ से जैसे जान-बूझकर हट गया।

: ११ :

जगरूप की 'माई' यानी नानी महादेवी के 'स्त्री'-मन मे यदि मोह न होता तो वह नि स्सन्देह महा-महा मुसीबतो से मूतलक बच जाती। पर, महादेवी ही अभागिनी क्यो ? सारे मानव-समाज का कठिन कष्ट-दाता मोह ही है। "मोह सकल ब्याधिन कर मूला" कहा है न गुसाईं बाबा ने।

स्त्रियो के स्वभाव में पुरुषो से काम, क्रोध, लोभ, मोहादि अष्ट-गुण अधिक होते है, यह भी मानने को इन लकीरो का लेखक तैयार नही। स्त्री-पुरुष के गुण-स्वभाव में मै यह भेद मानता हूँ कि स्त्री गुणो को अधिक दृढता से पकडती है जब कि पुरुष की पकड प्रायः शिथिल हुआ करती है, मौका-परस्त हानि-लाभ के अनुमान से भागने या टिकने वाली। पुरुष बा आसानी अँकडने के बाद जबरे से पाला पडने पर कह सकता है कि चलो ! मेरी मूछे खडी नही, झुकी सही। पर औरत जब एक बार अँकड या अड जायगी तब इस पार या उस पार होकर रहेगी वह अपने निश्चयो मे ऐसी दृढ न होती तो गर्भ धारण करने मे घोर कष्ट अनुभव करने के बाद भी वह पुन -पुन. जननी न बनती, 'तन तरु-नता गवाँकर।'

रत्नशकर की पत्नी मे तो स्त्रियोचित वह दृढता और भी अधिक थी। ब्रजरानी के रूप मे एक कन्या-रत्न के बाद उसे पन्तति हुई ही नही—इस रहस्य मे भी उसके चरित्र की दृढता ही दबी हुई है। व्याह के बाद बनारस आने पर साल-दो-साल तो खैर खैरियत रही। वह अपने पति को पत्निपरायण और चरित्रवान जानती रही। पर रत्न-शकर की नाभि मे छिपी पाप की काली कस्तूरी की बद-बू वातावरण-व्यापिनी थी। अत एक दिन मानिनी महादेवी को विश्वास हो ही गया कि उसका पति नीचे डूबकर नीच-रस लेनेवाला है। बात यो बनी।

कुसुम चुडहारिन महादेवी को जब चूडियाँ पहनाने आयी तब उसकी अँगुली की एक अँगूठी महादेवी को पहचानी जैसी लगी। फलत वह बार-बार अँगूठी ही देखती रही।

आखिर चुडहारिन ने लीला से मुस्कराकर बतलाया—

"बहूरानी, मै ब्राह्मणी के आगे झूठ नही कहूँगी। आज जानबूझ कर मै यही मुदरी पहनकर आयी कि तुम देखो और पूछो और मै बतलाऊँ कि यह मुझे किससे और क्योकर मिली।"

"यह मुदरी तो ब्रजरानी के बाप को मेरे बाप ने व्याह के अवसर पर दी थी .और उनसे कही खो गयी थी। तुझे कैसे मिली ?"

"मुझे मालिक ने दी. ।"

"बिरजू के बाप ने . ?"

"नही तो क्या मै सेध मारकर ले गयी। खोयी नही थी। ऐसी रकम और मालिक जैसे चतुर प्राणी स खो जाय। बहूरानी की बाते। उन्होने मुझे दी थी।"

"कब ? क्यो ?"

"तुम नैहर गई हुई थी, छ महीने पहिले की बात है। मैं आयी चूडियाँ पहनाने। मालिक ने दुछत्ती की खिडकी से इशारे से ऊपर बुलाया "इधर आजा।" मै समझी बहूरानी दुछत्ती मे है। निर्भय चली गयी। भय लगा तब जब मालिक ने मेरे घुसते ही दरवाजा बन्द कर दिया...।"

"झूठ ! कमीनी कही की" महादेवी कुसुम पर लाल-पीली पडी "खबरदार ! जो कभी ऐसी बात जुबान पर लायी !"

"झूठ नही बहूरानी, मैं तुम्हे चेताने आयी हूँ। मालिक आजकल भरतबो मालिन से गुँथे हुए है। जाँच करा लो। मेरी बात झूठ निकले तो अपनी जूती से मेरी जबान काट लो। मुझे तो यह अँगूठी ही दी थी लेकिन उसको सोने की तिलडी सिकड़ी दी है।"

"सिकडी ? सोने की ?"

"हाँ ।"

"गोल-गोल दानेवाली ?"

"अच्छा, तो वह सिकडी भी तुम्हारी पहचानी-जानी है ।"

चुडहारिन ने महादेवी को अपनी पाप-कमायी मालिन की तिलडी सिकडी से चिढकर, जलकर बतलायी थी, पर महादेवी के लिये उतना बहुत था । यह काम-वासना ऐसी बलवती हो सकती है कि आदमी को कर्त्तव्य से विरत कर दे । लानत है इस वासना और काम पर । स्त्री को पति का हृदय ही न मिला तो विश्व की सारी सुविधाएँ मिलती रहे, पाई-न-पाई बराबर । महादेवी कई दिनो तक गभीर चिन्ता-मग्न रही ।

"मै जिसकी मन-वचन-कर्म से उपासना करूँ वही मेरा ऐसा अनादर करे । जब चुडहारिन और मालिन बिना काम नही चलना था तो फेरो मे डालकर मुझे क्यो फेर में डाला गया ! नाम बडे रे दरसन थोडे । ब्राह्मण और पक्ति और ये पुण्य-कर्म ।"

महादेवी को अपनी बुवाजी की याद आयी जो अपने पति को पतित जानते ही घर की दक्खिनवाली कोठरी बन्द कर देह पर घी उँडेल कपूर जला कर सती हो गयी थी । मनत महादेवी ने भी देह पर घी उँडेल अपने वस्त्रो मे आग लगा ली थी, पर वह एकबारगी जलकर सर्वथा सती नही हुई थी । उसकी आग तो सारी जिन्दगी उसे जलाती रही । गर्भधारण करना तो दूर की बात—फिर महादेवी कभी रत्नशकर की अकशायिनी हुई ही नही और जबतक जीवित रही अखण्ड ब्रह्मचारिणी की तरह 'तपती-सी' रही । ब्रजरानी के बाद दूसरी सन्तान न होने के पीछे रत्नशकर की दुश्चरित्रता और महादेवी का उग्र-चरित्र था । दुर्भाग्य या रज वीर्य का दोष नही । महादेवी की यह तपस्या और भी रूक्ष हो जाती हे यह विचार मे आते ही कि उसकी

देवरानी को सोने सा एक बेटा था जिस पर कितना नाज था उसे। महादेवी के सारे मालिकपन को उसकी देवरानी पुत्र-पालन-सुख की तुला के पासँग मे भी नही तौलती थी। यह बात महादेवी के मातृ-मन को बहुत ही खलती थी। फलत विवाह के पूर्व ही उसने ब्रजरानी के बेटे को, पैदा होते ही, गोद लेने का निश्चय किया था, इस दृढता से कि विवाह के बाद जब कई वर्षो तक बिरजू के बेटा नहीं हुआ, हुई बेटियाँ ही, तब महादेवी ने जन्तर-मन्तर, साधू-फकीरो को भी नही छोडा था। नतीजा यह हुआ कि बिरजू को बेटा तो हुआ, पर, चलन उसकी बद हो गयी। यहाँ तक कि सारे भदैनी मुहले मे बद-बू-सी फैल उठी। खैर।

"महादेवी को बेटा चाहिये था, उसने बेटा पाया, यह अलग बात है कि मोह की बहुत-सी वस्तुएँ दूसरी जरूरी चीजो के विकट विनाश के मूल्य मे मिलती है। ब्रजरानी के गर्भ मे जब जगरूप आया, तब प्राय दो वर्ष से उसने अपने ग्रामीण पति का मुँह नही देखा था। बाद मे लोक-लाज के लिये सब-कुछ जानकर महादेवी नें बेटी को महीना-भर के लिये ससुराल भेज दिया था; जहाँ से हफ्ते-भर के अन्दर ही वह लड़-झगडकर बनारस लौट आयी थी। पर, समाज की आँखो मे धूल झोकने के लिये इतना काफी था। कुछ भी क्यो न हो महादेवी को एक बेटा चाहिये था जिसे वह अपने बाद भदैनी की विपुल सम्पत्ति का अधिकारी अपने पति से बनवाने पर तुली थी। और देवरानी ने क्या अपने लडके को पाला होगा—दासी की तरह घर मे रहनेवाली। सारी मलाई तो महादेवी के हाथ मे रहती थी। उसने भदैनी की मारी मलाई से ब्रजरानी के बालक अपने नाती की पालिश-मालिश शुरू की।

महादेवी की ये तरकीबे उसके देवर रामशकर के तेज़ बनारसी चश्मो से छिपी नही थी। फिर भी परम्परा के अनुसार बडा भाई स्वामी होता था, छोटा सेवक। कुछ बोलना छोटे के लिये मर्यादा-भग

करना जैसा हो जाता था। सो, रामशकर ऊपर-ऊपर मौन रहा, पर, अन्दर-अन्दर हमेशा सावधान रहा। अलबत्ता उसकी पत्नी जेठानी के पक्षपात से पीडित हो सूखते-सूखते एक दिन मर ही गयी। चालीस वर्ष की वय मे रामशकर ने दूसरी शादी बनारस की ही कुलीना ब्राह्मण कन्या से की जिससे पाँच वर्षो तक वह बराबर बेटे-पर-बेटे ही पैदा करता रहा। औरत मरने पर आ गयी और हाथ जोडने लगी : "दया-निधान! इतने ही बच्चो को पालने के लिये एक जन्म चाहिये। मेरी जान पर रहम कीजिये।" "मुझे इतने बेटे चाहिये" रामशकर ने सनातनी गभीरता से सुनाया "कि कदाचित् भाई साहब जगरूप को उत्तराधिकारी बनाने मे सफल भी हो जायँ तो कोरे बहुमत से मेरे बेटे उसे मार भगाये।'

: १२ :

ईमान की बात यह है कि रामशकर का बड़ा बेटा विनीत, भद्र यानी बडे-छोटे का लेहाज करनेवाला था। यह जानते हुए भी कि माताओ मे तनाव है वह 'बडी माँ' को कभी अनादर से नही स्मरण करता था। पर जगरूप उसके बिलकुल विपरीत था। बचपन से ही उसकी आदतें दुष्टता-भरी-चिबिल्लई की थी और दुष्टता और चिबिल्लई वह अपनो ही से नही सबसे एक भाव से ढीठ, निर्लज्ज, करता था। जैसे एक दिन रत्नशकर दोपहर को सो रहे थे तब, धीरे-से, उनके निकट जा उनकी गहरी नाभि मे छोटी मोमबत्ती खडी करके उसे जला दी थी। और फिर ऊपर दुछत्ती की खिडकी मे बैठकर तमाशा देख रहा था कि कैसे मोमबत्ती पिघलती है और नानाजी के

पेट पर गर्म-तरल मोम बहता है। कैसे चमककर नानाजी उठ-बैठते है "अरे बदमाश !" जगरूप की दुष्टता पहचानने के बावजूद रत्नशकर बिगडे नही और वह खिडकी से खिलखिलाकर हँस पडा।

ब्रजरानी (जगरूप की माता) को सारे दिन पान-सुपारी खाने की लत थी। उसकी एक बटुई (थैली) थी जिसकी जेबो मे पिसा कत्था, सुपारी के टुकडे, चूने की डिब्बी, तम्बाकू, लौग वगैरह होता था। अपनी माता की उस थैली मे जगरूप अक्सर लाल बर्रे पकडकर रख देता और उसके दशन से व्यग्र हो ब्रजरानी जब चिल्लाने लगती तब वह परम प्रसन्न हो-होकर, उछल-उछलकर हँसता। मुहल्ले से आये-दिन महादेवी के सामने उसके लडैते की शिकायते आती, यद्यपि मोह-भरी वह विश्वास एक पर भी न करती : "तुम सभी मेरे बच्चे से जलती हो। पडोसन नही, मुद्दइन हो ! चलो !"

जगरूप की दूसरी बहन मोहनी भी हठीली मिजाजवाली थी। तब जगरूप १० साल का होगा, वह १८ की थी, जगरूप के पास एक केमरा था जिससे उसने सारे घर की तस्वीरे उतारी थी। एक मोहनी बहन को छोडकर। क्योकि मोहनी उसे तस्वीर लेने ही नही देती थी। जगरूप ने कहा मै तेरी तस्वीर उतार कर रहूँगा !" "अरे चल !" मोहनी ने जवाब दिया "जरा गडही के पानी से मुँह तो धो आ !" जगरूप ने कहा : "हाथ मार !" मोहनी ने कहा "हाथ मार या सर मार, मेरी फोटो तू नही ले सकता। ले ले तो, मै तुझे ५) रुपये इनाम दूँ।"

कहते है, इस कहा-सुनी के सातवे ही दिनजग-रूप ने अपनी माई (नानी) के हाथ मे मोहनी की ऐसी तस्वीर रख दी कि भदैनी-भवन के सब-के-सब हैरान-परीशान रह गये। चित्र मे मोहनी स्नानघर के अन्दर नलके के नीचे नगी नहा रही थी ! जगरूप ने निर्लज्ज-भाव से माई से आग्रह किया कि बहन से उसके जीते हुए रुपये ५) वह

दिला दे। "चौपटनऊँ! जबरा चोर—सेंध में गावै!" माई ने ताबड-तोड कई तमाचे जगरूप के जडे और उस चित्र के टुकडे-टुकडे कर दिये। महादेवी जगरूप को मारने-पीटने की कल्पना तक नही कर सकती थी, पर उस 'अपराध' पर उसका धैर्य जैसे टूट गया। मारने को कई चटकने वह जड गयी, पर पश्चात्ताप मे २४ घटे तक उसने दानापानी भी नही लिया।

उस घटना ने महादेवी को पहली बार गभीरता से विचारने का मौका दिया कि जगरूप को गोद लेने मे उसने भूल तो नही की? लौडा कुल घालक तो नही होगा? पूत के लच्छन पालने पर। इसके सारे लच्छन कुलच्छन ही है। लेकिन इसके आगे सोचने की हिम्मत महादेवी को न होती। जैसे जगरूप के जन्म का अनुचित-आरभ महादेवी की आँखो के आगे फिर जाता। पर, मारे भय के उस अशुभ-सत्य का सामना वह न कर पाती। आँखे मूँद लेती। एक लाचारी महसूस करती और निश्चय करती कि अब जिसे पकड लिया है उसे निभाने ही में कुशल है। फिर, बचपन सभी का गैरजिम्मेदार होता है। लेकिन यह तो गैर जिम्मेदारी नही, नीचता है। जगरूप की आदतो, लच्छनो मे बचपन से जियादा दुष्टता है। अपने ही तर्कों को आप ही काटती हुई वह पुन चिन्तामग्न हो जाती यह बालक है कि 'राक्षस'?

पर वह राक्षस था या बालक महादेवी के अन्त मन पर उसका सर्वथा अधिकार हो चुका था। वह उस लौडे के बारे मे सही निर्णय पर पहुँचने मे मारे मोह के असमर्थ-सी हो गयी थी। जगरूप जिस किसी वस्तु का आग्रह करता लेकर रहता और वह चाहती कि उसके 'भैया' का जी कदापि न टूटे। बकस-के-बकस तो उसके कपडे भरे पडे थे। दर्जनो जूते। उसके पठन-पाठन का कमरा गालीचा और पर्दो से—बिलकुल रईसी रग से सजा हुआ था—जबकि, उसी घर मे, उस सम्पत्ति के कम अधिकारी नही—रामशकर ने जब एक लडका था

तब भी, प्रथम स्त्री के देहान्त के बाद दूसरी से जब कई लडके हो गये तब भी, अपनी किफायतशारी का ढग दृढता से छोडा नही। उसके सारे लडके आचरण में कसे हुए रखे जाते थे—नियमित, सयमित। बकसो-वस्त्र तो दूर की बात उसके लडको के पास जरूरी कपडे तक न होते। वह यही चाहता सिद्धान्तत कि लडको को खर्राची की लत न लगे, वे शौकीन न बने! वैसे कोई कमी या रोक नही थी, चाहने मात्र से रामशकर भी अपने बेटो को चितचाही चीजे अनायास दे सकता था। सो, वह अपने बेटो की बुनियादे बनाता रहा, साथ ही, जगरूप की जड में कीडे लगने देता रहा।

इसी दर्मियान अति-भोग से रत्नशकर बीमार रहने लगे। फलत लेन-देन, जर-जागीर आदि के सँभालने की सारी जिम्मेदारी रामशकर के हाथो में आ रही जिससे अपनी जड मजबूत करने के पक्ष मे उसने बढ-बढकर हाथ मारे। लेकिन इस कपट से कि रत्नशकर मरते दम तक यही सोचते रहे वह जगरूप ही को अपने हक का हकदार बनाये जा रहे है। पर, रामशकर ने बाजी अपने पक्ष मे खेली और सफल। रत्नशकर के इच्छा-पत्र मे जगरूप की कही चर्चा तक नही थी।

"तो ?" पति के मरने के बाद देवर के दबाव से दहलकर महादेवी ने सोचा "तो क्या अब देवरानी की सेवा करनी पडेगी ? उसकी हथेली से लेकर खाना होगा? मेरे 'भैया' के लिए कुछ भी नही किया जा सकता अब ? कल तक तो जो मै चाहती थी वही होता था, पर आज मेरी रोटी तक देवरानी की दूभर दया पर निर्भर ! हे राम ! तुम्हारी इतनी पूजा-अर्चना जो सारी जिन्दगी मै करती रही उसका यही परिणाम है कि आज मेरे पास लडैते नैनतारा का विवाह करने के काबिल भी धन नही। 'राज देन कहि दीन बन।' इस लडके का भविष्य क्या होगा ? हे राम ! हे भगवान !"

"क्या ?" एकाएक महादेवी के मन मे एक चमक खिली—"क्या?

ठाकुरजी के ? अरे ना ! क्या ? बुरा क्या है ? इस देवर ने मुझे कही की भी तो नही छोडा । हे भगवान आज मेरी कैसी बुद्धि बना रहे हो।

महादेवी कई दिनो तक अपने आपे मे नही थी । अक्सर ज़ोर से पुकार उठती · "हे भगवान् यह कैसा प्रकाश—कैसी बुद्धि?" जैसे उसके अन्तराल मे किसी विकट निर्णय का बडवानल खेल रहा था और कोई कूल-किनारा नजर नही आ रहा था। तबतक दीपावली का त्यौहार आया। उस अवसर पर दुबे परिवार के कुल-देवता के खानदानी आभूषण उन्हे पहनाये जाते थे। ऐसा साल मे एक ही बार होता था।

इस बार महादेवी जब दर्शनो को गयी तब देवालय के पट बन्द कर, देवताओ के सारे गहने और सोना- चादी के बरतन उसने साव-धानी से चुन-चुनकर गायब कर दिये। फिर रामशकर ने लाख चिल्ल-पो मचाई, देव-कोप का भय दिखलाया, पर महादेवी ने साँस तक न ली कि कुछ नही तो चालिस हजार का वह सब सामान हुआ तो क्या हुआ ? कुलीनता का तकाजा था, लोकापवाद-सग्रह उचित नही था, सारी मलाई तो उसके हाथ लग ही चुकी थी, अत देवधन के इस छाछ के लिये रोना या दिमाग खराब करना अविवेक पूर्ण सोचकर रामशकर मौन रह गया। पर रूखा हो गया अपनी बेवा भौजी से। यहाँ तक कि जगरूप के व्याह मे भी उसने कोई विशेष रुचि न दिखायी। विवाह भदैनी से हो यह भी उसने मजूर नही किया। जगरूप की शादी उसके पितृगृह गोरखपुर जिले के पण्डितपुर गॉव से हुआ। लडकी माडा राज्य के एक साधारण ब्राह्मण की थी।

स्वय जगरूप ने ऐसे ब्याह की कल्पना तक नही की थी। उसकी आँखो में तो नाना रत्नशकर की धन-शक्ति की राजसी माया बसी थी। जागीरदारी ठाट-बाट का दूल्हा बनना चाहता था। उसने जब देखा कि नाना जी के परमधाम पधारते ही उसके सारे सपने भग हो गये, तो व्याह करने से ही इन्कार कर दिया। सो भी तब जब उसकी माई ने

लडकीवाले को वचन दे दिया था। फलतः महादेवी ने लडकी के बारे में अपने लडैते की झूठ-सच से भरमा कर कार्य साधने का निश्चय किया। यह सोचकर के एक बार जब सम्बन्ध हो जायगा, गले में जुआ पड जायगा तब बछेडा खूँटे से बँध कर सही चाल-ढाल पर आ ही जायगा। उसने जगरूप को बतलाया कि "लडकीवाला गरीब भी वैसा नही। लडकी का बाप मॉडा राज्य का अधिकारी रह चुका है और पेशन पाता है। लडकी क्या साक्षात लक्ष्मी है। देखेगा तो कहेगा दुनिया मे ऐसी देखी ही नही।"

"पढी-लिखी है ?"

"राजा की निगरानी में।"

"राजा की निगरानी !"

"और नही तो क्या—अपने राजा के लिये मैने ऐसी लडकी चुनी है जो राजा की देख-रेख मे पाली-पोसी गयी है।"

"वह गाना जानती है ?"

"कोयल की तरह रे।"

"बजाना जानती है ?"

"वीणा, हाँ—सरस्वती की तरह।"

"माई," अब अनुराग लेते हुए जगरूप ने पूछा—"उसे मोटर चलाना आता है ?"

"कैसे लडके आज के! कैसी पसन्द इनकी ! इसने यह तो नही पूछा कि लडकी शीलवती है कि नही, कुल-पालिका है कि नही, घर-गृहस्थी मे निपुण है कि नही। आज के लौडो को गृहणी नही गायिका, नाच-नारी, मेम चाहिये। भैये ! मै कहती हूँ माँडावाली लड़की लक्ष्मी है लक्ष्मी।"

: १३ :

जगरूप का व्याह माँडाराज्य मे हो गया। बारात बनारस से नही गोरखपुर से गयी थी। भदैनी-भवन से रामशकर ने मदद काफी की, पर, अपने कसे, कजूस—मक्खीचूस-ढग से। वह बारात मे भी गया, यद्यपि उसकी सद्भावना न तो महादेवी से थी न जगरूप से। कुल मिलाकर बारात जगरूप की नज़र से शर्मनाक थी। जिस जागीरी-ठाटबाट के मनसूबे उसने बाँध रखे थे उसका कही नामतक नही था। वैसे ही, न तो उसे ससुर का घर पसन्द आया, न माँडाशहर,—"तब ?" उसने सोचा, "बहू भी भद्दी, देहातिन होगी—? माई ने झूठ ही कहा था कि लडकी पढी-लिखी, गाने-नाचने मे निपुण है ? ऐसी के साथ जिन्दगी निभानी पडेगी जो लैला न शीरी, सोनी न शशि ? और तब जब आलरेडी बनारस की बीसियो बाँकी तवायिफे उस पर जान देती है ?"

मण्डप मे जाते-जाते जगरूप ने मन-ही-मन निश्चित किया कि यदि उसकी पत्नी बाँकी-छबीली 'गूजरी-गागर' न हुई तो वह उससे कोई सरोकार नही रखेगा। माई ने जिसे पसन्द किया—वही उसकी सेवा लेगी।

जगरूप का मगल-काल में यो अमगल सोचना अनतिदूर-भविष्य मे उसके आगे आया। विवाह गोरखपुर से होने पर भी वर-वधू की मधु-रात बनारस (भदैनी) मे ही हुई और वह मधु-रात ही विष-रात बन कर रही।

असिल में उसकी पत्नी प्रेमा का पालन-पोषण ब्राह्मण और सनातनी यानी तपस्वी-परम्परा मे हुआ था। उसे सावित्री-सीता के शील की सीख पितृ-सदन मे सहज ही मिली थी। स्त्री का कर्त्ता-धर्त्ता पति ही है और त्रिकाल मे वही हो सकता है, यही उसे कथा, पुराण,

रामायण की श्रद्धामयी साक्षी से बतलाया गया था। सनातन आर्य वैवाहिक-विधि के विविध वैदिक-मन्त्रो का अर्थ विवाह से बहुत पहले पिता ने प्रेमा को सावधानी से समझाया था। पति-घर आने के पहले उसके पिता ने तुलसीकृत रामायण के राजा जनक शब्दो मे उसे आशीर्वाद दिया था "पुत्रि, पवित्र करसि कुल दोऊ।"

ब्याह के पहले प्रेमा के मन मे कोई शर्त, कोई कल्पना नही थी, कि पति ऐसा हो या वैसा हो। पुरुष के बारे मे सपने मे भी सोचने का स्वभाव ही शायद उस लडकी को नही मिला था। ब्याह के अवसर पर कुल-देवता के पूजन के समय, 'कोहबर' मे, जनकनन्दिनी की तरह ही उसने हाथकगन की आरसी मे जगरूप का रूप जो देखा तो सहज आत्मीय-भाव और श्रद्धा से मन-ही-मन उसको प्रणामकर उस पर निछावर हो गयी। "मन जाहि राच्यो मिलहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो।" जगरूप साँवला था भी—लबा, बडी-बडी आँखे, लमछर और सपाट आर्य-नासिका, फडकते हँसीले अधरोष्ठ। प्रेमा ने मन-ही-मन कृतार्थ हो भगवती पार्वती सर्वमगला को प्रणाम किया। साथही, अपने सम्पूर्ण नारीत्व के साथ पतिपरायणता का प्रण किया।

मधुरातवाले दिन बहुत बहुओ की तरह वह सकुचित, भीत नही रही। क्योकि प्रेमा की माता ने उसे हिदायत दे रखी थी कि पहली रात वह पहले पति की आरती उतारे और पद-पूजन करे—फिर दाम्पत्य-सुख मे रत हो। उधर शहरीछैला जगरूप मधुरात के दिन भी साढे ग्यारह बजे रात घूम-फिर कर लौटा था—नशे मे धुत, लडखड़ाता! आते ही उसने कोट उतारकर खूँटी पर टाँगा ही था कि प्रेमा आरती ले थाल में चन्दन-पुष्पादि लिये कमरे मे दाखिल हुई : घूँघट काढे, मुग्धा, विनीता, हसगामिनी।

"हुँह!" जगरूप ने अरुचि प्रकट की। "यह सब क्या है? न तो मै देवता हूँ, नही देवता को पसन्द ही करनेवाला हूँ। स्त्री पति की

आरती तो केवल अपने चन्द्रानन से उतार सकती है।" उसने उत्तेजित-उजलत से उमँगकर प्रेमा के घूँघट की तरफ हाथ बढाया। वह झिझकी, काँप उठी पुरुष के एकान्त-स्पर्श से—आरती का थाल उसके हाथ से गिर पडा। पति-पूजन की सारी सामग्री पथरीली पृथ्वी पर अशुभ-भविष्य-भावना-सी बिखर गयी। पुरुष का स्पर्श, आरती का पतन, घूँघट पर आक्रमण—प्रेमा मन-ही-मन इस कदर घबरा उठी कि वहाँ से भाग जाने की इच्छा प्रबल होने पर भी शेर के सामने मृगी की तरह वह भाग न सकी। न ही घूँघट सरकाने का विरोध कर पायी। अलबत्ता पसीने-पसीने होकर काँपने लगी। तबतक घूँघट खुल चुका था। उसकी आँखे नीची थी नही तो उसने देखा होता कि पहली ही उन्मत्त-दृष्टि में जगरूप को उसका रूप जरा भी जँचा नही—"हिश ! देहातिन ! बिल्ली! कौडी-सी आँखे, पकौडी-सी नाक ! हिश ! हिश !! हिश !!!" और दूसरे ही क्षण वह कमरे के बाहर—जैसे लडखडाता हुआ आया था वैसे ही।

प्रेमा, बराबर, किकर्त्तव्यविमूढा ही बनी रही। क्षण, पल, आधी घडी, घडी—"ओह ! प्राणपति अप्रसन्न होकर चले गये।" अब उसे होश आया, अब उसे स्मरण आया—"हिश ! देहातिन—बिल्ली ! कौडी-सी आँखे, पकौड़ी-सी नाक ! हिश ! हिश !!" लहकता-दहकता एक-एक अक्षर ?

उसकी हड्डियो में जैसे मृत्यु काँप उठी। क्या उसके पति ने उसको पसन्द नही किया ? वह गये कहाँ ? कोट भी छोडते गए !

कोट की याद आते ही प्रेमा जगरूप के कोट की तरफ लपकी। जैसे उस वस्त्र ही के स्पर्श से पति-स्पर्श का पुण्य प्राप्त करने। खूँटी पर टँगे कोट को उसने अपने मुख पर तौलिया की तरह लपेट लिया—और मुग्धा के प्रथम-प्रेम से कण्टकित हो उठी ! पर उसी क्षण उसे कोट की जेबो मे कुछ कडी वस्तुओ का आभास हुआ—और आतुर जाँच

करने पर पता चला कि एक तो शराब की चिपटी-सी बोतल थी जिसमें अभी भी कुछ मदिरा शेष थी; दूसरी जेब से कार्ड साइज का एक चित्र निकला। चित्र क्या था विष का बुझा वाण था प्रेमा के प्राणो की तरफ नियति द्वारा अचूक चलाया हुआ। उस चित्र मे उसका पति किसी युवती को हृदय से लगाकर चूम रहा था।

प्रेमा का माथा चक्कर खाने लगा और आँखो के आगे अँधियारा छाने लगा। लगा जैसे दम घुट जायगा, प्राण छूट जायँगे। वह अधड से उखड़ी प्रफुल्लित मालती लता की तरह पृथ्वी पर लोटने—तडपने—लगी। वह मूर्छित हो गयी।

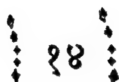
सारी रात प्रेमा के सुहाग-कक्ष के द्वार खुले रहे, कमरे मे प्रकाश प्रसन्न हँसता रहा—पर, उस हतभागिनी के प्राणो में निविड अधकार परिव्याप्त था। सवेरे महादेवी ने आकर देखा तो प्रेमा बेहोश पडी थी—बगल मे दारू की बोतल। "इसे भी तो उस पाजी ने मदिरापान नही कराया ? हे राम ! कैसा अभागा लडका है।"

अविलब उसकी नजर प्रेमा के हाथ के पास पडी हुई तस्वीर पर पडी—"ओह यह बात हुई !!"

मानो महादेवी को प्रेमा की मूर्छा के कारण का कुछ-कुछ आभास हुआ। मन-ही-मन बडी खिन्न ही हुई लेकिन होश मे आने पर प्रेमा से महादेवी ने यही कहा कि—"पति के दोषो पर भी हिन्दू-पतिव्रताएँ कभी ध्यान नही देती। ध्यान देती है केवल सन्नारी के कर्त्तव्य पर जिसका स्पष्टीकरण तुलसीदास की एक चौपाई से हो जाता है. अध, बधिर, क्रोधी अतिदीना—सकल कला, सब विद्याहीना। ऐसेहु पति कर किये अपमाना—नारि पाय जमपुर दुख नाना। मर्द के छत्तीस राग; इसी पर बजने लगे तो गृहस्थी क्षण-भर डगरने वाली नही। फिर नयी उम्र मे मर्द कुछ-न-कुछ वैसे ही होते है जैसा कि 'भैया' है। समय सब सुधार देता है—बडे-बडे बाँको को बिलकुल

सीधा करके धर देता है। दूध-सा सच्चा-मर्द शहरो मे शायद ही किसी भागवती के भागो में हो तो हो—लाख में कोई एक। भले ही गगाजल-सी पवित्र स्त्रियाँ घर-घर में हो। यह भैया मेरा शहरियो की सगत मे ऐसा बन गया है बहूरानी, नही तो, मै अपने बेटे को क्या जानती नही। हृदय का बडा ही भोलानाथ है तेरा मालिक।

फिर, जब महादेवी को यह आभास लगा कि जगरूप पाणिगृहीता की मधुरात मे विष बोकर रानी नाम की वेश्या के यहाँ रात-भर रहा तब उसके अन्त. का न्यायासन हिल उठा। जो 'भैया' को उसने कभी नही कहा था उस दिन कहा: "चाडाल! पापी! तुझे लाज नही आयी। लक्ष्म-बहू को लात मारकर चुडैल के कोठे पर रात बिताने मे? मै कह देती हूँ भैये! यह सब नही चलने का। मेरी जान ही लेना है तुझे तो एक ही बार गला घोटकर मार डाल, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। न देखूँगी, न झखूँगी।" महादेवी की आँखो मे ग्लानि-भरे क्रोध के सहृदय आँसू आ गये।



"सारी कलाएँ अनैतिक होती है," कहा है—शायद—अग्रेजी-भाषा के विचित्र, चरित्र-विरहित मगर महान कलाकार आँस्कर वाइल्ड ने। आँस्कर वाइल्ड के अन्तर का कलाकार अग्नि-स्वरूप था। उसमें चित्त-पट्ट, आड़ा-खडा सब-कुछ पच जाता था।

आँस्कर वाइल्ड ही क्यो, किसी भी नाम लेने लायक कलाकार की कला परिपक्वता पाने पर अग्नि-स्वरूप हो उठती है। किसी भी सिद्ध-कलाकार मे पाप-पुण्य दोनो ही आत्मसात या हजम करने की असीम-

शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वैसे तो ज्यादातर मानव सासारिक अपकर्मों में रत ही हो जाता है। आदमी का भोग-रत होना महज-सहज है। पर कला, कोई भी, सधती, पकती, उग्र होती है तप से, योग से। साथ ही सडती, विकृत होती, गन्धाने लगती है ग्रहण से, भोग से। ऑस्कर वाइल्ड की कतिपय कृतियाँ कितनी कमनीय कि क्या कहने! काबिल कलम चूमने के! कितनो के साथ इन पक्तियो के लेखक की रायानुसार भी ऑस्कर वाइल्ड जब लिखता था तब विख्यात बर्नार्ड शा से बदाबदी बेहतर लिखता था। मेरी राय से—प्रतिभादेवी यदि दोनो ही पर तुष्ट मान ली जायँ तो—वाइल्ड पर वह माशूका की तरह मुग्ध थी और शा पर माता की तरह। शा का कलाकार विशेषत भोग से परे. साबुन-सिगरेट नही, मान्स-मद-माशूकाएँ नही। शा हँसोड़ न होते, तो सन्त-सम्प्रदाय के साधक समझे जाते। कमनीय-कलाकारो की कृष्ण-काग मडली मे बर्नार्ड शा—'बकोयथा'—विदित बगुल-पंखी।

लेकिन ऑस्कर वाइल्ड का आर्टिस्ट, उसके अन्त करण का ईश्वर—कलाकार-सरासर कृष्ण-कन्हैया था। कला-सिद्धि की सुरीली बाँसुरी लहराने पर रसकी कोई भी नागरी उसकी सखी, और कोई भी रसिक-कुमार उसका सखा। जानते है जनाब सखा माने? स माने सग, खामाने खाने वाला : दाँत-काटी-रोटी !

वाइल्ड स्वतः को कला का खुदा समझता था,—एक तरफ और दूसरी तरफ लँगोटे का कच्चा, विकृत-वासनाओ का दास था। परन्तु पक्के कलाकार की कच्चाई कही भी बड़ाई नही बख्शती। यहाँ तक कि सुख से भोगा भोग ही रोग बनकर कलाकार ही नही उसकी अमरकला को भी एक बार 'करियामुख' कर डालता है।

वाइल्ड की दसियो अमृत-कृतियो को उसकी बदनामी और सजा के बाद बीसियो बरसो तक इगलैड और युरोपवाले छुपेरुस्तम भले आदमी हाथ से छूना तक पाप मानते थे! कला के इस खुदा के अतिम

दिन स्वजनो तथा जन्म-भूमि से सुदूर परदेस, अभाव और गलित-मरण रूपी नरक मे गुजरे थे।

दुनिया का रवैया शक्कर से घी खाने का—जबकि वाइल्ड निरा घी ही खानेवाला था। जियादातर कलाकार नामधारी होते है डूबकर निगलनेवाले। अपराध और दण्ड की मछली उनके गले में भी अँटकती है रोग, असफलता, शोक के दारुण रूप मे, पर, समाज के आक्रोश से वे बच जाते है। डके की चोट भोगी कलाकार होने से ऑस्कर वाइल्ड जैसा बेइज्जत और बर्बाद हुआ वह कलाकारो के इतिहास मे शायद बेजोड है।

फिर भी, जहाँ तक इन पक्तियो के लेखक का देखा-सुना, पढा-गुना हुआ है, यह समाज दुराचारी पाने पर, लेखनी के धनिको पर जितना बिगडता, खड्गहस्त होता है, उतना सगीतकारो पर नही। शायद इसीलिये कि लेखक की कला विशेष टिकाऊ होती है, बुरी-भली होने से अर्से तक, बुरा-भला परिणाम प्रकट कर-करा सकती है। पर, सगीतकार की कला अधिक प्रभावकारी होने पर भी टिकाऊ कम होती है। शायद इसलिये कि सगीतकार का प्रभाव—क्षणिक होने के बावजूद—इतना प्रबल-प्रसन्न होता है कि श्रोता सहज ही 'ऐसे गुणी के सात खून माफ' करने के बेसुध-'मूड' मे आ जाता है। टिकाऊ होने पर भी लेखक की कला तत्काल और प्रबल-प्रभाव डालनेवाली ब-मुश्किल ही होती है।

लेकिन मै पुन ऑस्कर वाइल्ड के इस अभिमत पर आना चाहता हूँ कि सारी कलाएँ अनैतिक होती है। क्या आप इस मन्तव्य को ठीक मानते है ? मै इस तर्क से ठीक मानना चाहूँगा कि नीति विधान की बालिका है, दायरे में रहने की हामी, जबकि कला किसी भी प्रतिबन्ध को विवश माननेवाली त्रिकाल में भी नही होती। अतः अनैतिक छोड कर वह और हो ही क्या सकती है ?

लीलाधर कत्थक की चर्चा पिछले पन्नो मे आ चुकी है। उसी भले आदमी के सिलसिले में मुझे ऑस्कर वाइल्ड की याद आयी और इतनी चर्चा चली। जिस 'करम' के लिये ऑस्कर बदनाम हुआ, जेल गया, और (तत्त्वत) जान से जाता रहा—उन्नीसवी सदी के अन्त मे—उसी कुकरम के करीब काशी, कबीरचौरा के कत्थक लीलाधर का भोजन-भडारा था, आजीविका थी, बीसवी सदी के चौबीसवे साल तक! यह तभी की कथा है।

कत्थक-कला का आरम्भ वैष्णवी-पूजालयो से हुआ हो, पर, अन्त नवाबी दरबारो से हुआ। यानी वैष्णव-सम्प्रदाय मे विकसित होने वाली यह भाव-नृत्यकला आराधना से हटकर जब अर्थ-साधना पर उतर आयी—ईश्वर को त्याग नर को रिझाने पर—तभी हलकी, अगभीर, भव्य-भाव-विरहित हो गयी।

अक्सर अच्छे कत्थक-कुमार को नवाब और मुसलिमकाल के अनेक हिन्दू जागीरदार भी अपनी भोग सेवा मे रख लेते थे—जिसमें सारी वैष्णवता दुर्गन्धित बनकर रह जाती थी। लीलाधर के बेटे राजू को जगरूप ने सीने से लगाकर व्यवहार अभद्र भले ही किया हो—भद्रता की नजर से—पर, ३५ वर्ष पूर्व की काशी की (अ-) सभ्यता के अनुसार वह अस्वाभाविक नही थी। ऐसे खतरो की जगहो पर राजू को लेकर लीलाधर जान-बूझकर जाता था और कोई रकमी-आसामी उसके आगे भी यदि उसके बेटे को बुरी तबियत से चूम या चिपटा लेता तो लोभी लीलाधर प्रसन्न श्रद्धा के साथ सब कुछ नजर-अन्दाज कर जाता।

इसका परिणाम यह हुआ कि शहर के आवारो मे वेश्याओ के प्रति जैसी भावनाएँ थी, वैसीही कत्थक-लड़को के प्रति भी। अनेक मनचले तो राजू-जैसे कत्थक-कुमारो को गहरेबाज एक्को पर सनकाते हुए बहरी तरफ ले जाते और उनके हुनर देखते, अपने दिखाते। अपनी उम्र में स्वय वैसेही रहनेवाले अभिभावको को यह सब बुरा या

अस्वाभाविक लगता भी तो क्या। सो, कत्थको के कुल या मुहल्ले में चरित्र की परिभाषा वैसी दूधोधुली, साध्वी, सम्भव नही थी जैसी भदैनी-जैसे पक्के मुहल्लो के छुपे-रुस्तमो के वातावरण की थी। देखे तो नाच, गान, सुर-तान के आगे शील-मान-विधान-व्यवधान सम्भव ही नही है। जिसने 'क्वचित गानवती सती' कहा—सौ मे निन्नानवे बार सच कहा था।

कबीरचौरा मुहल्ले के सभी कत्थक सदाचार-हीन थे ऐसा कहना तो झूठ है, पर, यह सर्वथा सच है कि उनमे जो सचमुच नेक आचरण वाले, बाल-बच्चो के प्रेमी, प्रभु-भक्त थे वे भी अपने घर लौटते थे आधी रात के बाद!—वेश्याओ के मुहल्ले से, हाँ। क्योकि सारगी, तबला बजाकर, इस कोठे से उस कोठे, वह अपनी आजीविका कमाते थे। लीलाधर भी वैसाही कत्थक था। कहा गया है कि कबीरचौरा मुहल्ला कत्थक, कायस्थ और कबीर-पथियो का केन्द्र, पर, कत्थको के कारण उस मुहल्ले मे दालमण्डी की एक-से-एक छोटी-बडी रण्डियाँ सुबह शाम, दोपहर बराबर नजर आती थी। वे कत्थको से गाना, नाचना सीखने अक्सर उनके घर ही पर आ जाया करती थी। उन्ही मे एक वेश्या रानी नाम की थी जिसे लीलाधर कई वर्षो से सगीत-शिक्षा दे रहा था। रानी तवायफ होने पर भी काफी दिलफेक थी। यह तो लीलाधर अनुभव से जानता था। उसका यौवन यद्यपि समाप्त-प्राय था, पर कण्ठ बडा ही सुरीला था। लीलाधर अमीर और देखनौट नवयुवको को रानी की तरफ आकर्षित किया करता था। और साफ लफ्जो मे कहूँ तो वह रानी का उस्ताद ही नही 'दल्लाल' भी था। लीलाधर का प्रवेश काशी के एक-से-एक घरानो मे। गीत-गोविन्द के पद वह अपने समय में अद्वितीय गाता था। लीलाधर कत्थक का गीत-गोविन्द सुनने के लिए काशी के सुज्ञ-रसिक बँगले-बागीचो मे गोष्टियाँ जोड़ा करते थे। इस तरह उसकी ख्याति रानी के हक में और भी

फलदात्री थी। पर—ध्यान रहे ! —रानी के प्रति लीलाधर के मन में कोई बद-विचार नहीं था। वह सच्चे मन से उसका सहायक मात्र था। रानी के लिये इस तरह की आखिरी मदद लीलाधर की यह थी कि उसने भदैनी के ब्राह्मण रईस रत्नशकर के नाती जगरूप का परिचय उससे करा दिया। पहले जगरूप आकर्षित हुआ इस भाव से जैसे दुनिया न देखा हुआ भोला युवक हो। उसने ऐसा प्रकट किया जैसे बिना रानी उसकी जिन्दगानी बे-पानी हो, बे-रस, बे-जान हो जायगी।

रानी ने जानकर जाना जगरूप जवान था। वह मन-ही-मन परम प्रसन्न हुई। यहाँ तक कि जानदार जगरूप से परिचय होने के बाद अधिक रूपसी बन चली ! इसी रानी के लिये जगरूप ने अपनी फूल-सेज छोड दी थी, और नेक नव-वधू को न जाने क्या-क्या असुन्दर बाते सुनाकर। इसी रानी की तस्वीर जगरूप के कोट-पॉकेट मे प्रेमा अभागिनी को मिली थी। इसी रानी—सुन्दर गानेवाली अधेडप्राय तवायफ को उडाकर जगरूप, एक दिन, सारी काशी मे कानाफूसियो का छछूँदर छोडता हुआ, भदैनी-भवन छोडता हुआ, विवाहिता, प्रेमा, प्रियवदा पत्नी छोडता हुआ, मोहमयी मातामही छोडता हुआ बम्बई चला गया।

रानी ने समझा जगरूप में उसे—उस उम्र में—गर्मागर्म प्रेमी तो मिला ! ओह, धन्य !! लेकिन जगरूप ने बम्बई मे जाकर जमने में सहायता देने के लिये उसको अपना पहला फ़ाइनेन्सर या महाजना मात्र माना। क्योकि उसके पास तो लाखो की बातो के सिवा एक छदाम तक नही था। और रानी जवानी मे जमकर कमाई हुई नाचनारी थी।

: १५ :

आज तो खैर खुदा के फजलोकरम से इस देश में वेश्याएँ नुमाया है ही नही, पर यह कथा तो ३०-४० वर्ष पूर्व की है। ३०-४० वर्ष पूर्व या उससे भी पहले पुण्य-पुरी-काशी वाराणसी की यह गति थी कराल-कलिकाल यहाँ तक विकट-व्याप्त हो चला था कि चातुर्वर्ण-व्यवस्था में मुख्य ब्राह्मण लोग ही वेश्या तक की कमाई की चिकनाई पडिताई के चेहरे पर चमकाने मे किंचितमात्र भी आना-कानी नही करते थे। कितने द्विज तरुणो को समर्थ गणिकाओ ने रखेल की तरह रख छोडा था। ब्राह्मण बहुत अच्छे, वेश्याएँ बहुत बुरी, पर चाँदी की चमचम पगडडी पर दोनो की चाल एक। वेश्या चाँदी पर उलटी-सीधी हो जाय तो वह स्वधर्म का पालन करती है। लेकिन ऊँची, दार्शनिक नाकवाला द्विज जब चाँदी की चमक से चौधिया चारो खाने चित्त पसर जाय तब वह क्या करता है—क्या कहा जाय ? यही न कि इस कठिन कलिकाल मे चार की जगह एक ही वर्ण बच रहा है कहिये—पैसा-पकड-वर्ण।

जगरूप का सहजमन उसी पैसा-पकड-वर्ण का था। बचपन से तरुणाई तक काशी के कितने ही बडो—यानी नामधारी बडो—का परिचय का उसको परम निकट से मिला था। 'धन जैसे भी मिले धन्य है' शहरियो की यह व्यवहारिक-परिभाषा जगरूप की बुद्धि मे 'टौटेक' यानी चौचक्क यानी सटीक जँच गयी थी। अत बिलकुल बाजारू वेश्या को भी बेवकूफ बनाने में हिचक उसे नही हुई। उसने सावधानी से ताड लिया था, रानी के पास गहने ही कई हजार रुपये के थे। साथ ही उसकी सगीत-कला-निपुणता पर भी भरोसा था।

रही रानी—सो, वह गुणवन्ती गणिका होने से दिलफेक स्त्री थी। साथ ही बरसो के नीरस वेश्या-जीवन से वह ऊब भी गयी थी।

जगरूप के रूप मे एक श्रेष्ठ, गुणी, कुलीन, तरुण पुरुष को पहचान और यह ताडकर कि वह उम्र मे भी कुछ छोटा ही होगा, उसको जीवन-सगी बनाने मे रानी को कोई घाटे का-सा सौदा नही मालूम पडा। तय हुआ यह कि दोनो पति-पत्नी की तरह बम्बई मे विदित होगे।

बम्बई पहुँचकर आरम्भ में दोनो धोबी तालाब मुहल्ले के प्रसिद्ध न्यू काश्मीरी होटल मे ठहरे। धोबी तालाब से किसी को ऐसा भ्रम न हो कि वहाँ तालाब या धोबी है। सारा धोबी तालाब मुहल्ला विशाल-विशाल अट्टालिकाओ, बडे-बडे दफ्तरो, बडी-बडी दुकानो से पुर है। फिर भी नाम है धोबी तालाब।

होटल का मालिक-मैनेजर ५५ साला, बिलौरी आँखे, गुट्ठल, कुन्दे जैसा, चुकन्दर-सा लाल। देखते ही पहले शैतान का साथी लेकिन कुछ देर बाद इनसान का हमशक्ल मालूम पडता था। जगरूप ने देखा उसकी आँखे क्या पूरी सर्च-लाइट थी। रजिस्टर मे नाम नोट करते हुए जगरूप और रानी को ध्यान से देख उसने पूछा—

"मिस्टर जगरूप...? शर्मा, वर्मा, सिह, गुप्ता ?"

"जगरूप शर्मा .।" जगरूप ने कहा।

"यह बहनजी कौन है...?"

"माई वाईफ—।"

"अच्छा—अच्छा...। खाना आपको कैसा लगेगा ? वेजीटेरियन या नान वेजीटेरियन.. ? हमारे यहाँ दोनो ही व्यवस्थाएँ अलग-अलग है।"

"अच्छा प्रश्न किया आपने" जगरूप ने कहा—"हम यहाँ हफ्तो ठहर सकते है। तबतक जबतक रिहाइश की कोई अन्य व्यवस्था न हो जाय। हम दोनो ही नान वेजीटेरियन है।"

"खुद मै पसन्द करता हूँ नान वेजीटेरियन डिशे; पर खाता हूँ बिलकुल वेजीटेरियन ! रोगी हो गया हूँ।" यह मोटापा रोग नही

तो क्या है ? पर नान वेजीटेरियन ग्राहक और ग्राहिकाग्रा से मेरे प्राण सहज प्रसन्न रहते है। आप तो काशी के पण्डित है—जी चाहे जबतक अपना ही घर समझकर रहे—बेफिकर।"

लेकिन तेज-निगाह होटलवाले को विश्वास नही हुआ कि काशी का ब्राह्मण—और ब्राह्मणी विशेषत —मासाहारिणी होगी। रानी की तरफ कनखियो उसने देखा, तो उसकी दृष्टि को अपनी नजर की प्रतीक्षा मे पाया। होटलवाले को देख, फिर अपने सीने की तरफ देख नीची नजर रानी ने निचले होठ पर धीरे-धीरे जीभ दौडाई जैसे अव्यक्त प्यास विदित कर रही हो।

होटलवाला महा खुर्राट। वह तुरन्त ताड-सा गया कि हो-न-हो दाल मे कुछ काला हो। पर, अपना भाव प्रकट उसने नही किया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन। चौथे दिन जगरूप जब विशाल बम्बई मे अपने योग्य 'जॉब' ढूँढने चला गया और निश्चय हो गया कि ६ बजे साय के पहले पलटनेवाला नही है, तब, दो बजे दोपहर—जबकि होटलो मे तुलनात्मक सन्नाटा रहता है—वह जगरूप के दर-वाजे पर पहुँचा। उसने हलकी थपकी दी। क्षण-भर बाद दरवाजा खुला और मिसेज जगरूप सामने नजर आयी।"

"ओह ! आप !" रानी ने सकौतूहल कहा।

"जी—थोडी देर पहले शायद आपही यह सौ का नोट मेरे आफिस मे भूल आयी थी ?"

"हॉ-हॉ, मैनेजर साहब !" सहसा रानी ने झूठ कहा, "मेरे हाथ से कब छूट रहा इसका अबतक मुझे पता नही। आप बडे ही भले कि लौटा रहे है। नही तो आजकल आदमी एक रुपये पर अपना ईमान छोड देता है।"

"और औरत. .?"

"आदमी माने मर्द-औरत दोनो ही...।"

"सच कहती है। यह लीजिए नोट। पर, सच कहिएगा—आप ही तो भूल आयी थी ? क्षमा करियेगा—दस तरह के गाहक मेरे यहाँ आते रहते है। इसीलिए पुन पूछता हूँ।"

"मेरा ही है—भगवान की कसम।" रानी ने कहा, नोट सँभालती हुई।

इसी समय आया होटल का एक नौकर भागता हुआ घबराया-सा "सेठ, गोरा पुलीस सार्जेण्ट आया है; साथ मे कई सिपाही लेकर। कहता है उसका सौ का नोट गुम हो गया है। तलाशी लेगा।"

"चल-चल गोरे को बैठा दफ्तर में। बहुतेरे देखे है। चल, मै आता हूँ।" होटल-मालिक ने देखा—रानी के हाथ से वह नोट पृथ्वी पर गिर पडा। साथ ही वह थर्रा उठी।

"आप डरे नही। जब आदमी एक रुपये पर ईमान छोड सकता है तब सौ बहुत होते है। पर यह बात तय रही कि अब से जबतक आप बम्बई मे रहे, मेरी कोई बात टालेगी नही। पुलीस को मै समझा लूँगा—लेकिन थोडी ही देर में एक साहब आपसे मिलने आये तो आप नाराज उन्हे न करना। ये रुपये पेशगी रहे। आज ही नही जब भी कभी मै कोई काम आपको दूँगा अच्छे, खासे दामोवाला काम।"

और थोडी ही देर बाद रानी के रूम में सूट-बूट-धारी, लम्बा-तगडा एक महाराष्ट्रीय आया। वह प्राय. दो घण्टे तक रानी के साथ रहा। इसी बीच रानी को पता चला कि वह आदमी पैसोवाला और इजिनीयर है तथा उस आदमी को पता चला कि रानी गाती भी बखूबी है। रानी उस इजिनीयर को ऐसी पसन्द आगयी कि उसने उसको फ्लैट दिलवाने तथा अपनी पत्नी का सगीत-शिक्षिका बनवाने तथा इसी बहाने अपने घर तक पहुँचाने का चारा फेका।

"तुम्हारा आदमी क्या करता है ?" इजिनीयर ने रानी से पूछा।

"अभी तो हम आये ही है। आज चौथा दिन है। वह काम-धन्धे की तलाश में है।"

"कैसा काम चाहिए . ?"

"वह एम ए है।"

"तब तो अच्छा है, दफ्तर वगैरह में कोई काम...।"

"वह अच्छे, होशियार मूर्तिकार है ।.. मामूली मिट्टी से चाहे तो जिसकी मूर्ति, चुटकियो में, बना सकते है।"

"वाह ! यह मामूली हुनर नही है। पर, मूर्तिकार से जियादा कमाई बम्बई-जैसे शहरो मे चित्रकार सहज ही कर सकता है।"

"वह चित्रकार भी है। और एक्टर भी। यद्यपि किसी व्यापारी-कम्पनी में कभी काम नही किया, पर मौका मिले तो वह बहुत ही तेज-जहन आदमी है।"

"मिलेगा मौका" इंजिनीयर ने कहा, "तुम्हारा आदमी अगर चित्रकार है, पेटिग जानता है, तो मै उसे एक फिल्म कम्पनी में पर्दे रगने का काम कल दिला सकता हूँ।"

"बडी मेहरबानी..."

"पर—तुम्हारे लिये रानी बाई।" इजिनीयर ने कहा, "मेरे-जैसा आदमी एक बार जिसे मान लेता है" मान ही लेता है। तुम्हारे लिये जान हाजिर है।"

"झूठ...।"

"सच।"

"तो अपनी यह हीरेवाली अँगूठी मुझे दीजिए पहले।"

"तुम्हे अँटेगी नही, ले लो—भले।"

"और यह सोने की कलाई-घडी भी...।"

"यह मर्दाना डिज़ाइन की है।"—तुम्हारे लिये जनानी घडी ला दूँगा। इसे ही लेना है, तो ले सकती हो।"

पर्स मे भी कुछ है ? जितने भी रुपये हो मुझे अभी दे दो।"

इजिनीयर ने जेब से चमडे का बडा पर्स निकाला और उसे रानी के सामने उलट दिया।

: १६ :

जगरूप तीन दिनो तक लगातार इलाहाबाद के एक वैश्य मित्र को ढूँढता रहा, जिसका पता उसे भूल गया था। उसने एक प्रकाशक परिचित से सहायता चाही, पर, सफलता न मिली। इलाहाबाद के कालकादेवी-स्थित प्रसिद्ध ज्योतिषी धनपति पाण्डेय से पूछा। इस लेहाज से कि शायद एक इलाहाबादी दूसरे इलाहाबादी को जानता हो—पर, वहाँ भी कोई बात बनी नही। तब उसने मजाकन ज्योतिषी से कहा कि आप तो त्रिकालज्ञ है, इलाहाबाद के भूत—पर भारी—फिल्म डिस्ट्रिब्यूटर श्रीचन्द का पता नही लगा सकते क्या ? ज्योतिषी ने कहा : अवश्य। परन्तु बिना दक्षिणा ज्योतिष का दिव्य-चक्र चलना तो दूर हिलता भी नही। इस पर जगरूप ने ज्योतिषी के आगे रुपया सवा पेश किया। "अब कहिये !"

"फिलमवाले का पता.. " ज्योतिषी ने दक्षिणा टेट करते हुए इत्मीनान से बतलाया · "किसी फिल्म कपनी वाले से पूछो। यहाँ दादर और चौपाटी के आस-पास अनेक फिल्म-कपनियाँ है। किसी एक मे दरियाफ्त करो।" इस पर जब जगरूप चला तो चघड ज्योतिषी ने उसे रोका : "देखो, यदि तुम्हारा काम सिद्ध हो जाय, तो मारुती को सवा पाव लड्डू चढाना और फिर उसे पाँच सेर लड्डुओ में मिलाकर मेरे यहाँ प्रसाद दे जाना। हाँ। भूलना नही। ज्योतिष्य दिव्य यानी दैव-विद्या है।"

जगरूप हँसा—ठठाकर।

"हँसे क्यो ?"

"कि मारुती को नैवेद्य सवा पाव और मनुष्य को प्रसाद पाँच सेर ! यदि मै सवा पाँच सेर लड्डु चढाऊँ और फिर सारे आपको दे जाऊँ तो कोई फर्क पडेगा ?"

"पसेरी-पहाड का ! मामूली फर्क नही। सवा पाँच सेर मन्दिर मे ले जाओगे, तो उसमे से पाओगे सवा पाव। बाकी सब पुजारी के। मारुती खुद खाते होते तो भी कोई बात होती। जजमान और देवता के बीच मे सर्वस्वापहारी यह प्राणी—पुजारी धर्म के वातावरण में रस भग-सा करता है।"

जगरूप ज्योतिषी के यहाँ से चल, ट्राम पकड, चौपाटी आया और किसी फिल्म कपनी का बोर्ड ढूँढने लगा। किसी ने बतलाया कि एक फिल्म कपनी फ्रेंच पुल के नीचे है जो निकट ही है। उक्त फिल्म कपनी के फाटक पर भी जगरूप के पहुँचते देर न लगी। लेकिन निर्दयी पठान ने उसको कपनी के फाटक के अन्दर घुसने की इजाजत दी ही नही। देर तक फाटक के पास खडा वह देखता रहा कि मोटर से आने वाले तो सीधे स्टूडियो मे दाखिल हो जाते थे पठान का सलाम लेते हुए लेकिन पैदल घुसनेवालो को पठान कर्कशता से रोकता था।

तुरन्त ही जगरूप के दिमाग मे एक चमक चमकी। जैसे कोई युक्ति उसे सूझी। वह वहाँ से हट आधा फर्लांग दूर मोटर-टैक्सी-स्टैण्ड पर आया और एक टैक्सीवाले से यह तय करने लगा कि केवल सामने की स्टूडियो के अन्दर दाखिल करने का वह क्या लेगा ? टैक्सीवाला जगरूप का मकसद ताड गया।

"मजदूरी मतलब दूरी तो कुछ भी नही," उसने सुनाया "यो भी छोडा जा सकता है —पर मै दो रुपए से कम नही लूँगा।"

"चलो !" जगरूप ने कहा।

"पहले रुपये दे दो। समझो कि स्टूडियो मे दाखिल ही हो।" टैक्सी मे बैठते ही जगरूप ने दो रुपए टैक्सीवाले को अग्रिम दिये। और टैक्सी चली, बढी, फिल्म कपनी के फाटक पर आयी।

बिना यह देखे कि अन्दर कौन है, पहरेदार पठान ने सैनिक सलामी दी। और जगरूप जीवन मे पहली बार फिल्म कपनी की चहारदीवारी के अन्दर। अन्दर भी फिल्म स्टूडियो तो दर अन्दर था। अभी जगरूप कपनी के आफिस के निकट था। फिर भी फिल्म कपनी की हवा से ही उसे ऐसी तृप्ति हुई जैसी तृप्ति पुराने टाइप के हिन्दुओ को तीर्थ की हवा मे विदित होती है। जगन्नाथपुरी पहुँचकर जैसे कोई आस्तिक अपने को कृतकृत्य माने वैसा ही कुछ अनुभव जगरूप के मन को उस फिल्म कपनी के दफ्तर के सामने हुआ। वह आफिसो के सामने लगे बोर्डो को पढने लगा और 'इन्क्वायिरी' के सामने रुका। अन्दर एक अधेढ आदमी बैठा था...

"यस्सर ?" जगरूप की तरफ मुखातिब हो उसने प्रश्नवाचक मुख बनाया।

"क्षमा कीजियेगा, मै मिस्टर श्रीचन्द गुप्ता के बारे में जानना चाहता हूँ।"

"लेकिन मिस्टर श्रीचन्द गुप्ता का फिल्मी-धन्धे से पिछले दो साल से कोई वास्ता नही रहा।"

"यह मुझे मालूम है।" शिष्टता से जगरूप ने कहा—"मै उनका वर्त्तमान पता जानना चाहता था।"

"जवान दोस्त !" इन्क्वायिरीवाले ने हँसकर कहा—"मालूम हो भी, तो तुम-जैसे नौजवान को मिस्टर श्रीचन्द गुप्ता का पता बतलाना मॉरली मै ना-मुनासिब मानता हूँ।

"पर—महाशय !" जगरूप ने भद्र आजिजी दिखायी, "वह मेरे पुराने बन्धु है। पिछले तीन दिनो से मैं परेशान हूँ उनके पते के पीछे।

बडी मिहरबानी होगी यदि आप बतला सके।"

"नम्बर तेरह, वालकेश्वर रोड. ।"

जगरूप नम्बर नोट करने लगा।

"लेकिन" इन्क्वायिरीवाले ने पुन अर्थ भरे-भाव से कहा—"तुम्हे मजे मे मालूम होगा, यह तेरह नबर कैसा कु-नबर माना जाता है।"

"जियादातर अग्रेजो युरोपियनो मे।"

"और 'तीन-तेरह' कहाँ का महाविरा है ?"

जगरूप चुप रहा।

"और 'तेरही' ? कुछ भी हो श्रीचन्द चौबीसो घटे तुम्हे उसी बँगले में मिलेंगे।"

"मतलब ? वह घूमने-फिरने, सभा-सोसायिटी वगैरह मे भी नही जाते ?"

"तुमने कहा तुम उनके मित्र हो, पर, परिज्ञान इतना भी नही कि श्रीचन्द गुप्त किस स्थिति में कब से है ! अब वह स्वतन्त्र श्रीचन्द नही रहे।"

"अर्थात् ? "

" 'बन्धु' तुमने कहा था ? बन्धु बन्धन मे है।"

"मै समझ नही पा रहा। बन्धन मानी : जेल मे ?"

"जेल गवर्नमेन्ट देती है, जिसकी एक सीमा, अवधि होती है। श्रीचन्दजी की जेल असीम आजन्म-जैसी है।"

"आप तो हैरत-भरी बाते बघार रहे है ! कुछ साफ भी फ़रमायेगे ?"

"तुम जा ही रहे हो—नबर तेरह ! देखने मे चुस्त-चालाक युवक मालूम पड़ते हो। अपने बन्धु का बन्धन अपनी आँखो देखोगे।"

"कृपा कीजिये—चक्कर में न डालिए।"

"एक अनजान नौजवान चक्कर से बचे इसीलिये—किसी हदतक

भद्रता भुलाकर—मैने तुम से तुम्हारे बन्धु-श्री के बारे मे चर्चा की। वह सरकारी-बन्धन मे नही, अपने-आप विकट-बटे-बन्धन मे जकडे हुए है। सुनो . फिल्म डिस्ट्रिब्यूशन का एकाधिकार नष्ट, बर्मा, सुमित्रा, जावा तक का ब्यापार नप्ट, क्रेडिट बाजार नष्ट—दाने-दाने के मोहताज ! तब—तब तुम्हे पता नही ?"

"नही तो—तब क्या हुआ !

"तुम्हारे बन्धु वेश्या बन गये।"

"क्या मतलब ? मर्द वेश्या बन गया ?"

"जी हाँ जनाब – किसी मर्द-मार, मालदार मगर बूढी सेठानी ने उन्हे रख लिया है ?"

"रख लिया है ?

"हाँ-हाँ, जैसे समर्थ मर्द औरत को रखता है, वैसेही समर्थ औरत बबई शहर मे मर्द को रखती है। सो वह बूढी, मर्द-मार, मनचली आपके बन्धु बेचारे को बँगले के बाहर तक निकलने नही देती।

"क्यो ?"

"तुम अपनी माशूका को बाजार घूमने दोगे—? नही। उसी तरह वह औरत भी अपने रखेल, अपने माशूक को अपने ही लिये रखती है। लेकिन तुम तो उधर जा ही रहे हो, देखकर 'पतियाना'।"

इसी समय एक तगड़ा, तपाकदार आदमी बातो मे मशगूल जगरूप के पीछे की तरफ से 'इन्क्वायिरी' के दरवाज़े पर आया। उसको देखते ही अन्दरवाला शख्श, कुर्सी छोडकर, अदब से खडा हो गया।

"अरे आठविले !" अफसराना पर सरस-भाव से उसने पूछा "पेन्टर अभी आया नही। सेट रुका हुआ है, शूटिग बहुत ही जरूरी है। तूने फोन किया तो क्या जवाब मिला ?"

"सेठ !" आठविले ने अदब से सुनाया—"आज फोर्ट मे एक आर्ट एक्जिबिशन है कि नही, आज शाम तक शायद ही कोई अच्छा

पेन्टर मिल सके . ।"

अब सेठ की नजर जगरूप पर गयी। गर्दन तक झूलते केश, सवा छ फुट लम्बा, जवान, अच्छा कटा-सिला सूट, बूट, रंगीली नेकटाई ..।

"तुम क्या चाहते हो ?" आकर्षित-जैसा होकर सेठ ने जगरूप से पूछा।

"आया तो था मै अपने दोस्त श्रीचन्द गुप्ता का पता-ठिकाना पूछने जिसे आठविले साहब ने मिहरबानी कर बतला भी दिया है। बीच मे दखल देने की माफी चाहता हूँ पेन्टर मै भी हूँ। क्या पेन्ट करना है ?"

"तुम्हारा नाम ?"

"जगरूप।"

"कहाँ, किस कालेज मे आर्ट सीखा ?"

"मै काम आपका चला दूँगा पूरा विश्वास-भरोसा है। कृपया पहले काम मुझे बतलाइये। रही आर्ट-कालेज की बात, सो मेरा तो यह तजरिबा है कि अक्सर, आर्ट-कालेज में सीखनेवालो से शौकिया साधनेवाले बेहतर आर्ट जानते है। वैसे मै बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय का एम० ए० हूँ जिसका अर्थ होता है · मास्टर आव आर्ट। लेकिन आप बखूबी जानते है यह आर्ट पेन्टिग का नही, साहित्य का है।

"गुड ! मेरे साथ आओ। स्टूडियो के अन्दर पहले काम समझलो।"

और बात जब बननेवाली होती है तब यो ही, अनायास ही, बन जाती है। वह तगडा आदमी उस फिल्म कम्पनी का पारसी मालिक रुस्तम सेठ था। असिल मे जोरदार-व्यक्तित्व दुनिया मे अक्सर जो काम करता है अन्य गुण बमुश्किल कर पाते है। जगरूप का व्यक्तित्व ऐसा ही कुछ था। पहले उसीने रास्ता बनाया। सिद्धेश्वरी का रथ

बाद में आया ।

काम कोई मुश्किल नही था । एक राजस्थानी जागीरदार के ड्राइंग-रूम की सेटिंग का पर्दा रँगना था । जगरूप ने वह काम तो किया ही, साथ ही सेटिंग्स् मास्टर को फर्नीचर वग़ैर सही-सही चुनने मे भी जानकारी और कलापूर्ण सलाहे दी । सारा काम कोई चार घंटे का था । सेट तैयार हो जाने के बाद रुस्तम सेठ ने जगरूप की पीठ ठोकी—"शाबास ! आज तुम न मिल जाते तो शूटिंग हो ही न पाती । कहाँ रहते हो? कल फिर मुझसे मिलो । तब तक यह लो !" रुस्तमजी ने जगरूप के हाथ में सौ-सौ के दो नोट पकड़ाये ।

: १७ :

नम्बर १३ वालकेश्वर रोड के मिलने मे जगरूप को कोई भी असुविधा न हुई । जब वह पहुँचा तब उस बँगले के बाहर ही अधेड़ावस्था से भी आगे उम्रवाली एक दुबली-पतली, मटमैली-गोरी स्त्री को नौकरानी को डाँट पिलाते पाया । वह स्त्री इसे अन्दर घुसते हुए देखकर शान्त तो सहसा हो गयी लेकिन उसके चेहरे पर रूखा-रोष फिर भी बना ही था ।

"कहो भाई, शूँ काम छे ?" आधी हिन्दी और आधी गुजराती मे पूछा उसने ।

"मै श्रीचन्दजी की तलाश मे आया हूँ ।"

"कहाँ से आये ?"

"काशी—बनारस से । श्रीचन्दजी मेरे बाल-बन्धु है ।"

"पर अभी तो वह बाहर गये हुए है। अभी-अभी ही गये है और शायद शाम के पहले लौटनेवाले नही है... ।"

"क्या ? बाहर गये है श्रीचन्दजी ? मुझे तो बतलाया गया था कि बँगले-बाहर कभी जाते ही नही. . ।"

"अच्छा !" हँसती आँखो से तरुण जगरूप को ताकती उस स्त्री न कहा—"किसने बतलाया ? क्या बतलायेगे—मिहरबानी कर ?"

"मै एक फिलम कम्पनी से श्रीचन्दजी का पता निकालकर यहाँ आया हूँ ।"

"नाश हो इन फिल्म-वालो का !" घृणा से उस स्त्री ने सुनाया "फिलम का यह धन्धा ही तो उन्हे ले डूबा... । मैं न होती तो आज बाबूजी जेलखाने मे होते । पावनेदारो के दावो से बँधे हुए । यह धन्धा नही है—यही फिल्मी-रोजगार—यह तो एक अन्धड है । इसकी तेजी मे सोना-चाँदी की बरसात बला से होती हो; पर, पगडियाँ, टोपियाँ, इज्जते भी हवा हो जाती है । . पर...लो ! वह तो लौटे आ रहे है !"

सचमुच श्रीचन्द बँगले के अहाते में दाखिल होता दिखायी पडा । जगरूप से आँखे चार होते ही, पहचानते ही, श्रीचन्द ने ललककर उसको कण्ठ से लगा लिया "तुम ? जगरूप ?? मेरी आँखे विश्वास नही करना चाहती । बाँका बनारस छोड तुम बम्बई में ?"

"क्यो ??" जगरूप ने पूछा "बम्बई मेरे लिये मुजिर है क्या ?"

"मुजिर या मुआफिक का फैसला तो तब हो जब कुछ दिन यहाँ की आबोहवा मे कोई रहे । मै तो यह कह रहा था कि जियादातर यू० पी० वाले इतने कूप-मण्डूक होते है कि जहाँ पैदा होगे वही भूखो अभावो, अपमानो मर जायेगे, पर, घर-बाहर कदम निकालना हराम है उन्हे । बनारसियो ने तो इस मसले पर एक दोहा तक गढ रखा है "चना चबेना गग-जल जो पुरवै करतार, काशी कभू न छोडिये विश्वनाथ दरबार ।" मै गलत तो नही कहता हूँ ? लेकिन ओह !" उस स्त्री की

तरफ देखकर श्रीचन्द ने कहा : "सुधाजी, क्षमा करना ! बहुत दिनो बाद मित्र को पाने की प्रसन्नता मे आपसे परिचय कराना ही भूल गया—मिस्टर जगरूप, एम० ए०, रईस बनारस (जगरूप से) आप मेरी पत्नी सुधादेवी... ।"

"नमस्ते !" जगरूप ने सुधा को नमन किया, "बडे भाग्य कि श्रीचन्द के पहले मुझे श्री लक्ष्मीजी के दर्शन मिले ।"

"यह मेरा परम मित्र है सुधाजी ।" श्रीचन्द ने बतलाया । "हिन्दू स्कूल और कालेज मे हम साथ-ही साथ छ. साल तक पढे हुए है । यह बेहूदा भी भारी है । अगर कोई बेहूदगी कर बैठे तो ध्यान न दीजियेगा । इसके लिये जरा चाय वगैरह—आओ बेटा ! इधर बरामदे में बैठे ।" बेतकल्लुफ ढग से बनारसी लहजे मे श्रीचन्द ने कहा और जगरूप का हाथ पकडकर उसे सजे हुए बरामदे की तरफ प्राय घसीट ले चला । अब जगरूप की बारी थी बनारसी-रंग बाँधने की । उसने श्रीचन्द के कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से कहा "अबे साले ! यह तो तेरी अम्मा मालूम पडती है ।"

"अरे चुप !" श्रीचन्द ने जगरूप के मुँह पर अपना हाथ रखते कहा, "सुन लेगी, तो तेरे साथ मैं भी बँगले-बाहर निकाला जाऊँगा ।"

"और इलाहाबाद वाली भाभी... ?"

"इलाहाबाद है । इसे बबई वाली भाभी समझो ।"

"इसको मालूम है कि तेरी शादी हो चुकी है ?"

"ना !"

"तो मै बतलाऊँगा । आने तो दे चाय लेकर—साले ! सिनेमा की डिस्ट्रीब्यूटरी से मुँह काला किया तो अब चिडियाँ फँसाता फिरता है ?"

"अरे साले चुप रह ! दीवार के भी कान होते है—१० लाख की बेवा-राँड सेठानी है और सारे-का-सारा बन्देखाँ के ही पल्ले पडनेवाला है ? बशर्ते कि तू... ।"

"मै तो अभी भडा फोडता हूँ। आने भी दे.. ।"

"तेरे हाथ जोडूँ !"

"तो मुझे भी ऐसी ही कोई मालदार आसामी बतला ।"

"तू आपही पा जायगा। यह बम्बई शहर है। यहाँ माले-मस्त सेठ सुन्दरियो के पीछे सर्वस्व लुटाते है और फिर अक्सर, उन पर अधिकार पाते ही काल के गाल मे चले जाते है। तब वे ही सुन्दरियाँ तगडे, तन्दुरुस्त, तेजस्वी तरुणो के पीछे सर्वस्व लुटाने की लोभ-ललित-लीलाएँ करती है।

"माले हराम बूद सूये हराम गश्त . ।"

"कुछ भी हो . ।" ललचाये-मन से श्रीचन्द ने कहा—"ऐश करने वाले धन-पति तो बबई में ही नजर आते है।"

"और कलकत्ते मे .?"

"शादोनादिर; कभी-कदाच !"

"और बबई में ..?"

"हर मौसम मे . ।"

"मै तो कई दिनो से गली-गली चक्कर काट रहा हूँ लेकिन एक भी दिल-फेक माशूक नजर नही आया।"

"अबे साले। कब जनमा कब राक्षस हुआ। अभी कल तो आया है। पहले कुछ दिन चौपाटी का सेव-गाँठिया खाकर इस चकार चेहरे पर बबैया, सुमुद्री, नमकीन, पानी तो चढा। जरूर फँसाया जायगा।"

"फँसाया ?"

"ऐसा कि याद करे !"

"चल-चल !" जगरूप ने जवान अदा से सुनाया—'मेरे मते एक मुहब्बत का ही फन्दा ऐसा होता जिसमे फँसने मे मजा-ही-मजा होता है।"

"मजा-ही-मजा...?"

"वे-रेशे लंगडे आम की तरह, बे-दानाअगूर की तरह।"

"भोगने योग्य ऐसा कोई सुख नही होता जगरूप जिसे बे-रेशा बे-दाना, माना जा सके। हर नशे में खुमार, हर चढाव मे उतार।"

"वाह बेटा!" जगरूप ने कहा "तू तो देखता हूँ अम्माजी के ससर्ग से दार्शनिक हो गया है!—नाटक की भाषा बोलने लगा! मैं कहे देता हूँ। जल्द ही कोई चिडिया बन्दे खाँ के लिए भी नही फँसवायेगा, तो मै तेरी सारी कलई खोलकर रख दूँगा।"

"कुछ ही दिनो की बात है .।" श्रीचन्द ने जैसे कुछ याद करके चाव से सुनाना शुरू किया "बबई के विख्यात ऐय्याश सेठ पूनमचन्द झवेरी को पता पडा कि उसके प्रतिद्वन्द्वी सेठ अब्दुल भाई बोहरे ने काश्मीर की एक निहायत सुन्दगी औरत को, बडे जतन से, बबई बुलाया है। औरत भी लाख में एक है। बस—सेठ पूनमचन्द झवेरी के गुर्गे मौको पर तैनात हो गये। कुछ ऐसा षड्यन्त्र रचा गया कि ट्रेन से उतरकर अब्दुल भाई की मोटर की जगह वह नाजनी सेठ पूनमचन्द की रोल्स राईस गाडी मे आ गयी जिसमे सेठ स्वय विराजमान थे।

"पर आप तो अब्दुल भाई-जैसे नही मालूम पडते.. ?"

"वह मेरा जिगरी दोस्त है। एक रूह दो कालिब।' पूनमचन्द सेठ ने सुन्दरी से कहा—"मुझे वही समझो।" सेठ ने काश्मीरी कामिनी को कण्ठ से लगाने की कोशिश की, परन्तु वह चिकनी मछली-सी गाडी के दूसरे कोने में सटक गयी—"सेठ अब्दुल.. " "उसने सुनाया। एक ही आदमी है, जो एक-एक चुम्बन के लिए दो-दो हज़ार रुपये दे सकते है,—बिना माथे पर शिकन डाले।"

"तुम मेरे निकट तो आओ ? पूनमचन्द झवेरी ने कहा "मै तुम्हे एक चुम्बन के लिए तीन हजार रुपये दूँगा।" सेठ ने सोचा अब सुन्दरी उसकी गोद मे ही होगी। पर वह थी काश्मीर की खेली हुई

चली गयी।

"है न ?" जगरूप ने जवाब दिया।

सुधा को किंचित दूर देख श्रीचन्द ने पूछा—"कैसी बाई बे! भाभीजी को लाया है साथ क्या ? वह तो बनारस से बबई आनेवाली नही। साले! चिडिया को जेब मे रखकर यो ही 'चिडिया-चिडिया' रट लगाये था। कहाँ की है ?"

"विशुद्ध काशी-वासिनी. ।"

"कौन—भला ?"

"गन्धर्व-ललना रानी .. ।"

"तवायफ ?"

'तवायफ जब थी, थी। फिलहाल तो मेरी वायिफ है, तवायफ नही।"

"अबे हरामी! तवायफ भी कही वायफ हो सकती है ?"

"क्यो ? जब पुरुष ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—चतुरग-रूप बदल सकता है, तब स्त्री पर कोई प्रतिबन्ध है क्या ?" तब तक सुधा सिके हुए पापड लेकर आयी, दूर ही से सुनाती—"बहनजी है, तो जगह ताबडतोड, तड्न, मिल जायगी।"

"ताबडतोड, तड्न ?" सुधा का जगरूप पर प्रसाद श्रीचन्द के अन्तरमन को जैसे सुहाया नही। उसने कहा "मालावार पहाड पर आनन-फानन स्थान मिलना मुमकिन है, मै तो नही मानता।"

"मगर मै मानती हूँ।" अड-सी गयी सुधा।

"कैसे आप मानती है ? मुझे तो पता नही। कहाँ कोई जगह है ?"

"फिलहाल तो दो कमरे भाई जी को मै इसी बँगले मे दे सकती हूँ। तबतक के लिये जबतक दूसरी जगह मिल न जाय।"

"अनेक धन्यवाद!" विनम्र-भाव से जगरूप ने श्रीचन्द द्वारा

अपनी तरफ बढायी चाय की प्याली गृह-स्वामिनी की तरफ बढाते हुए कहा।

"आप यहाँ धन्धा क्या करेगे ?"

"मेरा इरादा फिल्म लाइन पकडने का...।"

"चौपट हो जाओगे मिस्टर।" मर्यादा से किंचित हट सुधा ने सुनाया "देखो अपने दोस्त की तरफ ! फिल्म-बाजार में एक दिन यह हजरत 'हार्ट के किंग' थे—आगे-पीछे बल्लमदार-चोपदार चलते थे। —पर, आज ? चोपदार नही, वल्लमदार नही, किंग-पन नही, रहा हार्ट जिसे रोज ही तो मै हजरत के सीने मे टटोलती हूँ कि है तो कहाँ ? और गया तो कहा ?"

"वाह, सुधा जी—क्या बात आप कह गयी !" जगरूप ने चापलूसी की (जिससे स्त्री परम प्रसन्न होती है !) "इस मेरे यार के पास सूरत है, सीरत है, हिकमत और दौलत है, पर, हार्ट इसका कहाँ है यही हैरानी मुझे भी बराबर रही। है ? क्या कहती है आप ?"

"पथरा है ! हार्ट की तलाश मे मेरे पल्ले तो पथरा ही पडा, एक इन्ही नही—सारी मर्द जाति मे...।"

"श्रीचन्द के बारे मे आप भले चाहे जो कहे लेकिन—मैं माफी चाहता हूँ। सारी मर्द जाति का अन्दाज एक से कैसे लग सकता है . ?"

'हम स्त्रियाँ तो भाई ! एक ही चावल से भगौना-भरे भात का भेद भाँप लेती है।"

'खूब !" जगरूप ने श्रीचन्द की तरफ देखकर सुनाया, "बहनजी की बातो से आनन्द आ गया !"

"आनन्द आपको आ गया ?" सुधा ने सुनाया "मेरी बातो से ? लेकिन आपके मित्र की तो बराबर यही शिकायत रही है कि मुझे बोलना ही नही आता .. ।"

"यह क्या जाने—कद्रे गौहर शाहदानद आवदानद जौहरी !" जगरूप ने सुनाया।

: १८ :

बनारस के विकृत-विलासी, प्रायः जागीरदार ब्राह्मण-कुल के लडैते जगरूप के जीवन का परम आदर्श था खाना-पीना और जागीरदारी ठाट-बाट से ऐश आराम करना। जागीरदारी ठाट माने माल कर्ज का हो या नक्द खरीदा, अपना हो या पराया धूमधाम से उसे उडाना। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये, आज भी—यह कहानी तो एक युग-पूर्व की है—सिनेमा कपनी से बढकर दूसरा स्थल शायद ही कोई हो। सो जागीरदारी का जनाजा उठ जाने के बाद भी आज के, टको के, जागीरदार फिल्म-धन्धे के आस-पास दीपक-पतिगो-से मँडलाते हुए मरते दिखायी पडते है। सो, फिल्म कपनी से जीवन आरभ करने मे जगरूप ने अपने जाने, सवा सोलह आने सही मार्ग चुना था। भाग्य ने भी उसका खूब ही साथ दिया। दूसरी बार स्टूडियो मे पहुँचने पर रुस्तम सेठ ने उससे पूछा

"तुम एक्टिग कर सकते हो ?"

"बखूबी सेठ" जगरूप ने चमडे के बेग से कई तस्वीरे निकाल कर रुस्तम सेठ के हाथ मे दी। जब मै कालेज में पढता था, दुर्गादास, नाट्क मे दुर्गादास के रूप मे 'मेवाड-पतन' में बूढे शेर सरदार गोविन्द सिह के रूप मे—यह देखे—औरगजेब के रूप मे।"

"ठीक ..।" कुछ विचारता हुआ रुस्तम सेठ बोला "मुझे एक 'विलन' करेक्टर करने वाले एक्टर की 'बगुला भगत' पिक्चर के लिये जरूरत

है। तुम्हे मै फिलहाल साढे चार सौ रुपये माहवार दूँगा।"

"धन्यवाद अनेक ! रुस्तम सेठ ?" जगरूप ने सोत्साह सुनाया "रुपये तो आप लाख दे सकते है लेनेवाला होना चाहिये। मै खल-चरित्र की एक्टिग करने को तैयार हूँ।"

सयोग की बात 'बगुला भगत' पिक्चर की शूटिग आधी भी न हो पायी थी कि डाइरेक्टर लल्लूभाई हार्ट फेल हो जाने से जान से जाते रहे।

इधर अबतक की शूटिग में जगरूप ने अपनी चौरगी-योग्यता दिखला कर रुस्तम सेठ को प्रसन्न कर लिया था। सो 'बगुला भगत' का शेषभाग—खल-नायक का काम अजाम देते हुए भी जगरूप ही ने डाइरेक्ट किया और खूब किया। जिस तस्वीर की तैयारी के लिये लल्लूभाई ने आठ महीने तय कर रखे थे उसको जगरूप ने अथक परिश्रम से साढे चार ही महीने में तैयार कर दिया। यह मूक वचन अथवा साइलेट फिल्म-काल की कथा है। अभी बोलती मशीनो का आगमन भारत मे नही हुआ था। 'बगुँला भगत' तस्वीर कुछ ऐसी जन-प्रिय हुई कि भारत ही नही, बर्मा, सिहापुर, सिलोन के फिल्म रसिको ने भी उसे बारम्बार देखा। अब जगरूप की नियुक्ति डाइरेक्टर की तरह हो गई। ऐसा डाइरेक्टर जिसके मुकाबिले का विविध-कला-पारगत बबई के तत्कालीन फिल्म धन्धे में एक नही था।

यह बात है तब की जब बबई मे इम्पीरियल, शारदा, कृष्ण, रणजीत आदि फिल्म कपनियाँ अस्तित्व मे आ चुकी थी और मूक-चित्रो का निर्माण एक-पर-एक शुरू हो चुका था। यह तब की बात है जब के प्रसिद्ध हीरो मास्टर विट्ठल, नन्दराम पहलवान, बिलमोरिया और जाल मरचेन्ट-जैसे होते थे तथा हीरोइने होती थी सुलोचना, जिल्लू, पुतली, गौहर (रणजीत), जुबेदा-जैसी। तब फिल्म कपनी का मालिक अधिक महत्व-मडित होता था; उसके बाद डिस्ट्रीब्यूटर। डाइरेक्टर तीसरे दर्जे का अधिकारी माना जाता था। उसकी ड्यूटी कंपनी के

मालिक और डिस्ट्रीब्यूटर को भी, खुश रखना होती थी। खुश रखना इस अर्थ मे कि उसे फिल्म की वेश्याओ या अर्ध-वेश्याओ को कपनी के मालिको की अक-शायिनी बनाने की मध्यस्थता भी करनी पडती थी। उन डाइरेक्टरो की नौकरी जियादा पक्की थी जो किसी-न-किसी तरह कपनी के मालिक को कोई सुन्दरी उपहार मे दे सकते थे। बस, मालिक को वश मे करते ही डाइरेक्टर सर्वे-सर्वा बन जाता था। उलटा-पलटा समझाकर वह चाहे जिस औरत को हीरोइन, चाहे जिस एक्टर को हीरो बनवा सकता था।

फलत. हीरो-हीरोइन या फिल्म एक्टर बनने या किसी स्टोरी मे बढिया करेक्टर पाने के शौकीन पहले यह पता लगाने की चेष्टा करते थे कि डाइरेक्टर की दुर्बलताएँ क्या है ? दारू ? दारा ? दाम ? (नजर, उपहार)। इसका नतीजा यह होता था कि अच्छे डाइरेक्टरो के यहाँ शराबे और सुन्दरियाँ बिना तलब—बरबस पहुँच जाया करती थी।

जगरूप बनारस से यही भावना-भर कर बबई पहुँचा था कि स्वर्ग मे शराबे, सुन्दरियाँ, साथ ही, सम्यक सुविधा सतत रहती है, अत स्वर्ग स्वर्ग कहलाता है। फिल्म लाइन मे सफलता की पहली ही सीढी पर पग रखते ही उसे महसूस हुआ कि पृथ्वी पर यदि कही स्वर्ग हो कता है तो वह बबई और फिल्म लाइन मे है। कहा जा चुका है सगरूप जवान था, रोबीला था, गुणो का आकर था, चट—और बनारसी (करैला और नीमचढा) था।

फिल्म कपनी मे डाइरेक्टरी मिलते ही जैसे स्वयमेव आवश्यक सुविधाएँ उसे प्राप्त हो गयी। एक गुजराती एक्टर ने अपना वाल-केश्वर रोडवाला तीन कमरोवाला फ्लैट उसके लिये तद्दन खाली कर दिया—खुद बाँदरा मे जाकर रहने लगा—इसलिये कि डाइरेक्टर खुश रहा तो सौभाग्य खुश रहेगा ही। इसके बाद महाराष्ट्रीय

इजिनीयर की मदद से स्थान प्राप्त करने की कोई भी आवश्यकता नही रही। जगरूप ने मासिक भाडे पर बहुत-सा फर्नीचर नये और बबैया ढग का फ्लैट में सजाया। लेकिन अब जो कलापूर्ण अक्ल से उसने सोचा तो बबई के—खासकर फिल्म के—वातावरण मे बनारसी वेश्या रानी गोल छेद मे चौकोर खूँटी सी मालूम पडी, बिलकुल अनफिट, देहातिन। फिल्म स्टूडियो मे कैसी-कैसी औरते, कैसी चुस्ती, चचलता और शोखी से महँकती-चहकती वासना की निमन्त्रण-ज्वाला-सी दहकती हुई होती है। और एक है यह रानी विलास की उबासी— जैसे गजरा बासी। न शोखी, न नमक, न लोच। पर उस समय रानी से जगरूप लडा नही, क्योकि पत्नी-रूप मे वह, पाखण्डी समाज रूपी बाजार मे, सुरक्षा की ढाल थी। छडा या वह जिसके भाग्य मे बीवी नही, बबई में ठहरने की जगह भी बु-मुश्किल पाता है, जब कि औरत वाला, भले उसकी लुगाई वेश्या ही क्यो न हो, अखण्ड सौभाग्यवतियो और सीता-सतियो के समाज मे सुन्दर स्थान पा जाता है और ससम्मान!

फिर रानी उसके लिये दोनो समय भोजन जो बना दिया करती थी। फिर सारे दिन—अक्सर आधीरात तक— तो वह स्टूडियो में रहा करता था जहाँ उसके स्वर्ग का सारा सरमाया सरासर था। रानी से लडने या उसे बनारस भेजने मे जगरूप को किसी रूप मे मुनाफा नही था लेकिन रानी उसके चित से उतर चुकी थी। इसे महसूस करने मे रानी को बहुत विलब नही लगा लेकिन वह बनारस का बाजार छोडकर चली आयी थी जहाँ एकाएक लौटने मे इस बात का भय था कि फिर ग्राहको-अनुग्राहको की भीड हो—न हो। जगरूप की मतलबी-नीयत ताड़ते ही रानी ने सोचा—वफा का तबला एक नही दोनो हाथ से बजता है—अकेले न दाहिना तबला-वादन है, न बायाँ।

जब वह वफादार नही तो वही क्यो रहे ? सो, रानी ने इजिनीयर का पल्का पकडा ।

: १६ :

और महादेवी दूसरी धातु की बनी हुई स्त्री थी । उसकी धमनियो मे विपरीत-स्थिति में साहस से डटने, साथ ही, अपने-रग से सटनेवाला रक्त प्रवाहित था । जीवन के पिछले पहर मे नियति द्वारा बारबार पछाडी जाने पर भी पूर्ण पराजय मे जैसे उस दृढ, गभीर औरत को नारकीय-मरण नजर आता था । तभी तो रामशकर द्वारा सर्वाधिकार छिने जाने पर घर के इष्टदेवो के दागीने (गहने) तक उडा लेने से वह हिचकी नही । तब उसने सोचा था कि अपने पास की सचित-निधि और उन गहनो से अपने लाडले नाती जगरूप के हरेक आराम की विधि बैठा-कर फिर वह मरेगी । लेकिन जब जगरूप ही उसके स्नेह को ठेगा दिखा कर, भावनाओ के गाल पर यथार्थ का प्राण-पीडक तमाचा लगाकर बनारस की एक सड़ी वेश्या के शाथ बम्बई चला गया तब तो महादेवी की एक बार तो कमर ही टूट-जैसी गयी ।

भदैनी-भवन के आधे-भाग पर महादेवी का कब्जा अभी था, इस लिये कि रामशकर ने समाज के लेहाज से उसे बे-दखल करना श्रेष्ठ नही समझा जिसे अभी कल तक गृह-स्वामिनी और भाभी-माँ कहकर वह कृतार्थ होता था । मगर, भारी घर पर अधिकार---भयानक अवसरो पर पर दुर्भाग्य में अधिक भायँ-भायँ भर जाता है । दस बडे-बडे कमरे, चार छतें, जिनमें दो-सौ-सौ-'फुटी', सर-समान, राय-रसोई, सारी दुनिया का गार्हस्थिक पलजर; लेकिन प्राणी इन-गिनकर तीन महादेकी, ब्रजरानी.

प्रेमा। बिना सर का धड जैसे, वैसे ही (अबलाओ की आँखो मे) बिना सरपरस्त का घर।

जब तक 'वह' था—वह भी घर पर कहाँ रहा करता था। फिर भी, उसकी भावना से सारा घर दिन-रात, भरा और हरा-भरा रहता था। सफाई उसके लिये होती थी, व्रत-पूजाएँ उसके लिये होती थी। घर मे जो भोजन बनता था ठाकुरजी के लिये नही, जगरूप के लिये। सो, जगरूप के बम्बई चले जाने के बाद आधे भदैनी-भवन में स्यापे-जैसा सन्नाटा भर गया। सरे शाम ही वह घर उन अनाथा स्त्रियो को खाने दौडता था और सारी रात—जबतक दुश्चिन्ताओ से थककर सो जाने पर वे दु स्वप्न न देखने लगती—वह घर मानो उनके कलेजे कुरेदता रहता। कई बार महादेवी ने सोचा कि उस घर का त्याग कर वह कहीं भाग जाय, दर-दर मुक्त विचरे और राम-नाम लेती भीख माँगे। इस भयानक-वातावरण से, घुटन-भरी हवा से, रक्त सुखानेवाले अपने ही आवास से प्राण बचाकर। लेकिन कुलीनता, सस्कार, समाज की उठी हुई अँगुलियो का खयाल उसकी जरा-जर्जर-काया में कँपकँपी उत्पन्न कर देते।

रत्नशंकर के आँखे मूँदते ही रामशकर भाई से भुजग बन गया हो सो बात नही। व्यवहार सब पूर्ववत् ही चलता रहा। महादेवी से सामना होने पर वह प्रणाम करता, आदर दिखाता, विनम्रता दरसाता; पर, इन सबके पीछे होता पाखण्ड ही। सच्चाई की बू-बास तक नदारद। क्योकि मतलब के मौके पर वह निष्ठुर, पैसा-पकड़, सन्दिग्ध-हृदय यानी काला-कठोर ही रहता। फलत· महादेवी आदि का हृदय-कमल खिलता नही था सिवाय कुँभलाने, सिवाय कुँभलाने के।

इसी दिखावे में रामशकर की पत्नी ने एक दिन अपनी गोद का बालक महादेवी की गोद में यह कहते हुए दे दिया कि "बहनजी, यह मुन्नू भी तो आपही का है। आज से मैने इसे आपको दिया।" तब महादेवी एक आह खीचती हुई मुन्नू को देवरानी को लौटाती हुई बोली :

"नही बहन, अपना लाल तुम आप सँभालो । बच्चे मुझ अभागिन को सहते ही नही ।" और वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

देवरानी के जाने के बाद अभिमानिनी महादेवी ने सोचा, "कल की बिटिया तिल्ली में से तिल काढे । महादेवी को दिखाने-सुनाने आयी थी कि उसके इतने बेटे है कि एक-दो का दान तक कर सकती है । सोचती है कि इसके बेटे को अगर मै गोद ले लूँ तो मेरे पास जो लेई-पूँजी है अन्त में उसी की होकर रहेगी । मुद्दइन, मुझे चराने चली है । जानती नही कि जिस बेटे को पाल-पोसकर मैने हाथी-जैसा बनाया है, छोडूँगी नही उसे मै । मैला मे गिर पडने पर भी कोई अपना लाल छोडता है ? मेरा—जो कुछ भी है वही पायेगा । मेरा पिड-पानी मेरा 'भैया' करेगा न कि इस साँपिनी सौत के सँपोले ।

पर, अपने जगरूप को वह पुन पाये तो कैसे ? सारे ससार से परे खीचकर घर लाये तो कैसे ? बम्बई वह खुद जाये क्या ? मगर वहाँ जाकर क्या कहकर वह उसे हठीले, जिद्दी, 'कुलबोरन' को 'पतुरिया' से 'धर्म-पत्नी' का महत्व विशेष समझा सकेगी ? हाय रे अभाग्य ! वह महत्व नही समझता; धर्म नही समझता, पत्नी के लिये उसके हृदय में आदर नही है । उसे तो चाहिये नटिनी, ऐसी औरत जो नाचे-गाये-तोड़े तान ! अपनी मति भ्रमित, बुद्धि शिथिल पाते ही महादेवी के मन में आया कि इस घोर सक्ट-काल मे उसे अपने कुल-पुरोहित विनायक मिश्र की शुभ-सम्मति लेनी चाहिये । मिश्रजी का स्वर्गीय रत्नशकर के दरबार में बडा सम्मान था । विनायक मिश्र श्रेष्ठ वेदज्ञ, कर्मकाण्डी ब्राह्मण तो थे ही ज्योतिषी भी आबदार थे । भदैनी-भवन मे ड्योढी बाहर और भीतर—दशरथ राजभवन में गुरु वसिष्ठ की तरह—एक भाव से उनका आदर-सत्कार होता था । वह भदैनी-भवन से डेढ मील परे, शहर के मध्य 'राजा दरवाजा' मुहल्ले मे रहते थे । और महादेवी अभी सोच ही रही थी कि मिश्रजी को किससे बुलवाए कि दरवाजे पर

किसी ने थपकियाँ दी। विनायकजी स्वय आ पधारे थे।

"मै इसलिये आज आया महारानीजी, भगवान मगल करे!" पुरोहित 'महादेवी' को बराबर महारानी कहा करता था "कि आज हम दोनो ही एक ही विपदा के मारे हुए है।"

"भगवान रक्षा करे! पडित महाराज!" महादेवी ने कहा, "मै तो खुद ही आपको बुलाने जा रही थी—आप स्वय पधार गये अन्तर्यामी, दीन-दयालु की तरह। मेरी बिपदा तो, खैर, जग-जाहिर है। 'वह' क्या चले गये मेरी खुशी के दिन ही खत्म हो गये (पति की याद मे महादेवी सजल हो उठी) पर आप पर कैसी विपत्ति...?"

"ठीक वैसीही महारानीजी, भगवान मगल करे! जैसी आपकी वर्त्तमान विपत्ति है। कल राजमोहन पक्के महल के एक खत्री दोस्त की बहन के साथ न जाने कहाँ चम्पत हो गया।"

"हे राम! उसकी सगाई हुए तो अभी एक वर्ष भी पूरा नही हुआ। पडित महाराज! बहू यही है या नैहर?"

"यही है महारानीजी और कल ही से रोते-रोते सारे घर मे उसने करुणा-सा भर रखा है। भगवान मगल करे—मकान मे कदम रखा नही जाता। कुल की मर्यादा से खेल! अपने ही नही, दूसरे के भी! यह तो मै था कि लडकी के बिगडे-दिल बाप को मैने तर्क से, कुतर्क से दबा दिया, निरुत्तर कर दिया। मैने कहा: तुम्हारी लडकी ही बद-चलन थी। मै दावा करूँगा कि वही मेरे लडके को भगा ले गयी: भेडा बना कर, गधा बना कर, उल्लू बना कर। फिर भी, अपने मन मे मै बराबर सोचता रहा कि सिक्का अपना ही खोटा था।"

"ब्राह्मण-क्षत्रिय ऊँची नाकवालो के लडको को यह हो क्या गया है पडित महाराज! कि ये ज्यो-ज्यो बडे और बुद्धिमान होते है त्यो-त्यो अपनी चाल-चलन, सदाचार से हीन होते जाते है? भैया के बम्बई चले जाने से हमारा तो घरौदा ही धूल मे मिल गया। ऐसा क्यो पडित

महाराज ! पडितो के पूत पडित क्यो नही होते ?"

"इन छोकरो को स्कूल-कालेजो में विदेशी शिक्षा-दीक्षा के लिये भेज कर और स्वदेशी वैदिक, सनातन, शास्त्रीय-शिक्षा से रहित रख कर, भगवान मगल करे—सच पूछिये तो पहले ही हमने अपने पाँव पर कुल्हाडी मार ली है। यह निर्लज्ज व्यभिचार-रोग किस सीमा तक विदेशी-शिक्षित युवको में वर्त्तमान है ! हमारी पडिताई, प्राचीन-पद्धति में तो इसकी बू-बास तक नही थी; जिसमें अक्षर के पहले धर्माचार और सदाचार बच्चो के विकास-क्षेत्र में बोए जाते थे। साथ ही, इस बीज के बोनेवाले गुरु स्वय धर्माचारी, सदाचारी होते थे।"

"मै यह पूछती हूँ पडित महाराज !" महादेवी ने जिज्ञासा की "कि लडके तो खैर लडके है, बह-बहाकर फिर ठिकाने आ जायेगे। लेकिन इन बेचारी बहुओ का क्या होगा जो अपना दुखडा न तो चीख सकती है न पुकार। अक्सर मेरे मन मे इन्साफ पुकार उठता है कि जब लौडे हद दर्जे तक आज़ाद हो चुके है तब लौडियो को ही बन्धन और चूल्हे और भाड में झोकने से कुलो की कुलीनता कबतक बचेगी ? मै झूठ न कहूँगी, ऐसे मौको पर मुसलमानो में प्रचलित तलाक-पद्धति मुझे बिलकुल उचित मालूम पड़ती है।"

"आप कह क्या रही है, महारानीजी भगवान मगल करे !" वृद्ध विनायक मिश्र ने मिश्रित-विरोध स्वर में सुनाया "आप जैसी सती-साध्वी के मुँह से अलाक-तलाक का प्रतिपादन सुनकर मुझे महान आश्चर्य होता है।"

"आप एक तरफ तो बच्चो को अपने धरम-करम की उचित शिक्षा नही देगे और दूसरी ओर तलाक के नाम से भी काँप उठेगे। महाराज ! इसमे मोह हो, भावुकता हो, लेकिन व्यावहारिकता भी है ? कह सकते है ?" जरा, दृढ किन्तु सरस-ढग से, महादेवी ने सुनाया।"

"मगर, महारानीजी !" ब्राह्मण ने सहृदय आग्रह से कहा "आर्य-

विवाह में तलाक की गुंजायश जरा भी नही है। भगवान मंगल करे ! आप भूली तो न होगी। आर्य-विवाह-विधि में वर वधू को आकाश के तारे ध्रुव, अरुन्धती को दिखलाता है और वधू कहती है : आपने भी कहा होगा—

ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम्,
अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि।

"क्या मतलब ?" महादेवी ने पूछा "विवाह मे संस्कृत-मन्त्रो के मानी कहाँ बतलाये जाते हैं। फल यह होता है कि लोग बिना समझे-बूझे बडी-बडी प्रतिज्ञाओं में बँध जाते है। इसी से कोई शांति नही पाता।"

"इसका अर्थ है : हे ध्रुव ! जैसे आप आकाश में अचल है उसी तरह मै पति-कुल में निश्चल होऊँ। हे अरुन्धती ! आप ही की तरह मै भी अपने प्राणपति के सदा सन्निकट होऊँ। आर्य-विवाह महारानीजी, भगवान मंगल करे ! दो आत्माओ का सम्बन्ध है। जीवन तो जीवन मरण में भी विच्छिन्न न होनेवाला। आर्य-विवेक के अनुसार वर-वधू का सम्बन्ध इन्द्र और इन्द्राणी, विभावसु और स्वाहा, सोम और रोहिणी, नल और दमयन्ती, वैश्रवण और भद्रा, वसिष्ठ और अरुन्धती यानी नारायण और लक्ष्मी के सम्बन्ध की तरह अटल और चिरस्थायी होता है।"

"यह वर्णन सत्य हो या कल्पना पंडित महाराज ! सुनते ही अगली-पिछली अनेक घटनाएँ स्मरण कर मेरे तो रोमांच आया ...।" महादेवी ने आँसू पोछते हुए सुनाया जिससे उत्साहित होकर ब्राह्मण आर्य-विवाह-विधि की धारा-प्रवाह प्रशंसा करने लगा :

"महारानीजी, परम प्रभु ने प्रारम्भ में, भगवान मंगल करे.! अपने को दो भागो में विभाजित किया :

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोभवत्,
अर्धेन नारी तपस्यां स विराजय सृजत् प्रभु.।

"मै समझी नही पडित महाराज !"

"मै समझाता हूँ न—भगवान मगल करे ! प्रभु की देह द्वि-खडित हुई तो आधी से नर बना और आधी से बनी नारी। भगवान मगल करे ! इसका क्या अर्थ ? इसका अर्थ यह है कि न तो अकेले नर सम्पूर्ण होता है और न ही नारी। नर-नारी आपस मे एक-दूसरे के पूरक है। परन्तु **"स्त्री-धारा पुंधारामयी कैवल्याधिकारिणी"** यानी भगवान मगल करे ! पुरुष-स्त्री की भावात्मिका-धाराओ में स्त्री-धारा भगवान मगल करे ! केवल पुरुष धरामयी होकर ही कल्याण-कैवल्य-अधिकारिणी हो सकती है। सो, महारानीजी ! सिद्ध या स्पष्ट यह है कि आर्य-विवाह भोग, विलास और इन्द्रिय-तृप्ति के लिये हर्गिज़ नही है। वह तो स्त्री-धारा को पुरुषधारा-मयी बनाकर द्वन्द्व-जीवन-प्रवाह को निर्द्वन्द्व-कैवल्य-रूपी महासागर की ओर महा-मिलन के लिये मोडना, प्रवाहित करना है।"

"यह सब तपस्वियो का विधान—पडित महाराज ! सतजुगी-बाते है। और आज है घोर कलिकाल। छोटे-मुँह बडी बात क्षमा करे ! क्या सतजुगी-मन्त्र आज के जमाने के अयोग्य नही है ?" रूखी मुस्कराहट से महादेवी ने पूछा।

"कदापि नही महारानीजी, भगवान मगल करे ! सृष्टि की कुछ वस्तुएँ शाश्वत होती है, सनातन। जैसे यह सूर्य, चन्द्र, पवन, अग्नि और जल ही को ले। युग आते है, युग जाते है, पर सूर्य-चन्द्र, पवन-पावक वही रहते है। इसी प्रकार ऋषियों के अनुसार आर्य-विवाह में नर-नारी का एकीकरण चिरन्तन या शाश्वत होता है। आर्य-विवाह मे यह जो 'सप्तपदी' होती है—वर और वधू साथ-साथ सात पग चलते है—कितनी दिव्य-अर्थ-मयी है ! हम न समझे, न माने तो क्या इलाज।"

"कौन समझता है पडित महाराज ! आपके मन्त्रो के सूक्ष्म-भेद, विवाह की पूजा, मगल-विधियो को लोग तमाशा समझते है। सो,

विश्वास जैसा फल । सारे जन्म विवाह तमाशा ही बनकर रह जाता है । खासकर मर्द के लिये ।" महादेवी ने सखेद स्वीकार किया ।

"मतिमन्दो का—भगवान मगल करे ! —कोई इलाज नही, महारानीजी ! अन्यथा सप्तपदी न तो खेल है न तमाशा । एक-एक पग के कुछ मानी है । पहले पग से इच्छापूर्ति, दूसरे से शक्ति-सचय, तीसरे से गृहस्थाश्रम-पालन, चौथे से दम्पति की निर्विकार-मैत्री, पाँचवे से पशु-धन का सग्रह तथा छठे से विविध-सम्पत्ति का सग्रह करने का दृढ सकल्प करता हुआ वर वधू को सखा—परम अन्तरगी—सबोधित कर कहता है सखे ! उक्त सातो सकल्पो की सिद्धि में तुम मेरे सतत सहायक रहो !

सखे सप्ततदा भव सख्य ते गमेयम्
सख्य ते मा योषाः सख्य ते मायोष्ठा. ।

ब्राह्मण, विधि-विह्वल, वेद-मन्त्र स्वर से सुना गया । और महादेवी कई क्षणो तक तत्काल से दूर भूतकाल मे उन घडियो मे विरमी-रमी जिनमे रत्नशकर से उसका पाणिग्रहण हुआ था । तब वह आठ साल की थी, रत्नशकर था बारह का । एकाएक कुछ सोचकर महादेवी चमकी--

"मै भी कैसी भुलक्कड़ आजकल हो गयी हूँ !" उसने सखेद सुनाया "जलपान, पान तक के लिये आग्रह नही किया—अरी बिरजू ! ओ ब्रजेश्वरी !"

"भगवान मगल करे, महारानीजी—नही । मगलवार को मै अनाहार करता हूँ ।"

"फिर भी, कोई सुनेगा, तो मेरी नामुन्सी होगी । आप पधारे और पानी को भी न पूछा जाय । उसके बम्बई चले जाने के बादे से ऐसा लगता है कि मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ।"

"शिव, शिव ! महारानीजी," प्रसन्न पुरोहित ने महादेवी की स्तुति

की "आप आज नही कब से मैं देख रहा हूँ परम विदुषी,—परम विदुषी है। आपके तो दर्शनो में प्रसाद है, पुण्य है।"

"प्रसाद ! पुण्य !!" व्यग्य में महादेवी ने दुहराया।

"सन्देह है ? भगवान मगल करे !"

"सरासर पडित महाराज ! अर्से से मै देख रही हूँ, जैसे कलिजुग जोर-शोर से आ गया है। वही कलिजुग जिसमें पुण्य और प्रसाद केवल नाम के होते है। यह जुग पाप और परिताप का है। और महाराज ! ज़माना बदल गया, हम नही बदले। सो, धक्के खाते—धोखा खाते है।"

"भगवान मंगल करे ! सत्य वचन, सर्वथा सत्य।"

"सो महाराज...!" महादेवी की जुबान पर जैसे बात आती-आती रह गयी।

"हाँ ..।"

"इधर कई दिनो से मन-ही-मन मै बडे शशपज मे पड़ी हुई हूँ।"

"भगवान मगल करे !"

"मेरी बुद्धि यह कहती है कि पाप के वातावरण मे, पाप के राज में, पाप से परे रहना पाप है और परम।"

"क्या ? भगवान मगल करे !" पुरोहित का मुख और नेत्र खुले-के-खुले रह गये। परम कुलीना महारानी कह क्या रही है !

"आजकल, पल-पल, मेरा मन पाप से निकट-परिचय बढाने को ललक-सा रहा है पडित महाराज ! एक बात में मै आपकी सलाह चाहती हूँ।" जैसे मन कडा करके महादेवी ने पुरोहित विनायक मिश्र से कहा।

"भगवान मगल करे ! मैं सेवा में हाजिर हूँ महारानी ! हुक्म करे ?"

"मेरा प्रश्न धडाकेदार हो सकता है, कृपया गभीरता से विचारने के पूर्व ही पृथ्वी से उछल न पडियेगा। जगरूप की बहू को... ।"

"जी.... !"

"जगरूप की बहू को मै नाचना सिखलाऊँ ? क्योकि वह इसीलिये खासकर बहू से विरक्त रहता है कि इसको नाचना नही आता। नाच-नारी ही को बहका-भगाकर वह बम्बई गया है।" महादेवी के स्वर की ध्वनि के अनुसार ऐसा लगता था जैसे उसे स्वय अपना प्रस्ताव आर्य नही मालूम पड रहा था।

"महारानीजी, भगवान मगल करे !" चकित पुरोहित ने सुनाया "आपकी बात सुनकर मुझे गोस्वामीजी की चौपाई याद आ गयी : मोह सकल व्याधिन कर मूला। भगवान मगल करे ! जगरूप के प्रति आपका मोह व्याधि का रूप न ले।"

"मुझे घुमा-फिराकर जवाब नही चाहिये।" महादेवी ने जरा रूखे स्वर से कहा, "साफ बतलाइये। बहू को नाचना सिखाने में क्या पाप है ? क्या बुराई है ?"

"पाप है, बुराई है यह महारानीजी !" आवेश के कारण इस बार पुरोहित तकिया कलाम कहना भूल गया" कि बहू-बेटियो को नचाना अपने वर्तमान समाज मे प्रचलित नही।"

"पर जब लडके नृत्य को यहाँ तक पसन्द करेंगे कि जिस लडकी को नाचना नही आयेगा उसका सम्बन्ध असम्भव हो जायेगा तब ? मै समझती हूँ, आवेश नही, धैर्य से इस प्रश्न पर विचारना होगा। मै तो यह देख रही हूँ कि समाज हमेशा नाच का शौकीन रहा है। अलबत्ता लोग अपनी लडकियाँ नही नचाना चाहते—यह सोचकर कि जो लडकियाँ नाच-नारी के रूप में नाचती है समाज की लडकियाँ वे नही है। और तब वेश्याएँ समाज से अपना परम सम्बन्ध दिखाने के लिये बडे-बड़े पग्गड़धारियो के लाडलो को बरगलाकर अँगुलियो पर नचाती हुई 'उढर' जाती है। मै पूछती हूँ नाचने में बुराई क्या है ? आप इसका उत्तर दे।"

"उसमे चाचल्य है, आवेग है, अतः औरतो के लिये विशेषत वर्जित-विषय माना गया है। मै सभ्य बहू-बेटियो का नाचना नापसन्द—निहायत नापसन्द करता हूँ।"

"नाचती राधिका जी थी...। आप कहते क्या है!"

"ठीक है राधिका नाचती थी, पर भगवान मगल करे! राधिकाजी ने अपने पति को त्यागकर वृन्दावनबिहारी का वरण भी कर लिया था। कृष्णजी से नही, राधिका के नाचने का औचित्य अनौचित्य राधिका के पति से पूछना होगा।"

"आप मजे मे जानते है कीर्तनकारी धर्म-गुरुओ के साथ, भावविभोर होकर स्त्रियो के नाचने मे बहुत से पति कोई बुराई नही देखते।"

"देखते है, भगवान मगल करे। शायद ही कोई हो जो अपनी पत्नी को दीगर के साथ नाचते देखकर प्रसन्न होता हो। अनेक भले लोग 'धर्म' के भय से मुँह नही खोलते। फिर भी, ऐसे भाव-नृत्यो की समाज मे कु-चर्चा ही होती है।"

"जब से होश सँभाला मै तो तभी से देखती आ रही हूँ कि आपका समाज जिसकी कु-चर्चा करता है, उसे अपना भी लेता है। आप देखेगे, कोई ताज्जुब नही है, एक दिन समाज से नाच-नारियाँ उठ जायेगी और घर-घर की लडकियाँ नाचना सीख लेगी।"

"भगवान भला करे! महादेवीजी! ऐसे समाज के विकसित होने के पहले ही विनायक मिश्र मणिकर्णिका घाट चला जाना बेहतरह समझता है।"

"भगवान न करे! आप तो बुरा मान गये। खैर आप नाच को बुरा ही माने; पर, यदि मै अपनी बहू को नृत्य सिखलाऊँ, तो आप नाखुश होकर पुरोहिती से पृथक...?"

"...सरासर हो जाऊँगा।" ब्राह्मण ने महादेवी को वाक्य पूरा करने का मौका देने के पूर्व ही सम्मति दे मारी "साथ ही, मै आप लोगो

के घर का अन्न-जल तक ग्रहण नही करूँगा।"

"बडे नाराज !" महादेवी ने—बिना खुनुस जाहिर किये—कहा "देवता ! नाचते है शकर, नाचती है महाकाली। आश्चर्य ! घोर आश्चर्य कि आप शकर-काली को तो मान्यता देते है, पर नृत्य-कला से नाक सिकोडते है।"

"शकर—भगवान मगल करे ! नाचते ही नही, अवसर आने पर हलाहल का अनासक्त आचमन भी करते है। काली नाचती ही नही, भर्तार शकर को चरण से चॉप, मारे क्रोध के अपना ही गला काट रक्त-पान भी करती है। महारानीजी ! अपार-शक्ति, महानो की तो क्षुद्र-प्राणी मुग्ध-लीला मात्र देख सकते है। अनुकरण मे पार-पाना सभव नही है। मजे मे जानता हूँ, आप यह तथ्य जानती है। मुझे केवल 'टो'—टटोल रही थी। क्यो ? अब मै चलूँगा। आपने ऐसी चर्चा छेडी कि कितना समय कितनी शीघ्र चला गया।" विनायक मिश्र ने टेट से निकालकर जेब-घडी में देखा—"ओह ! दो बज गये ! अभी सकटमोचन जाना है।" वह जाने को आतुर उठकर खडा हो गया।

"टो नही रही थी, महाराज !" महादेवी ने पडित को द्वार तक पहुँचाकर दृढ़, निश्चयात्मक स्वर में सुनाया, "मै अपना लाल खोने को तैयार नही। आप मोह कहे, स्त्री-बुद्धि कहे, कर्म कहे, कुकर्म कहे—अपने जगरूप को पुन पाने के लिये मै कुछ भी करूँगी। आप क्षमा करे, न करे, मेरे लिये उस लौडे के अलावा कोई गति नही।

: २० :

तीस साल का तगडा बनारसी गुण्डा, देखते ही, भरपूर जोरावर—इतना—कि सामने कुर्सी पर वर्दी मे बैठे, सवाल-पर-सवाल करते चेतगज थाने के थानेदार अल्ताफअली को बल से परास्त कर जान से मार डाले; पर, उस वक्त वह भयानक भावावेश से कॉप रहा था। एक लम्बा-सा छुरा गुण्डे के दाहने हाथ मे था, लहू में नहाया हुआ !

"हुजूर मैने उसे जान से मार डाला...।"

"क्या मतलब ?" चमककर अल्ताफअली ने पूछा।

"मै उसका आशिक हूँ।"

"क्या मतलब ?" थानेदार हैरानी ही की दशा में था।

"हुजूर, उसके बिना मेरा धर्म-पुण्य सब अकारथ। जैसे वही मेरा परान, वही मेरी जान। पिछले सवा साल से पागल उस पर मै।"

"तो वह तेरी औरत नही थी ? किसी और की बीवी थी जिसे तूने मार डाला, जैसा कि खुद कह रहा है ?"

"हुजूर, मैं औरत का आशिक नही। औरत नही वह लडका था...।"

"लाहौलवला ! हरामजादे...!"

"हुजूर ! आवेश से प्रहार के लिए उत्सुक बँधी हुई मुट्ठी के रक्ताक्त छुरे को पीछे की तरफ छिपाते हुए गुण्डे ने सुनाया, "गाली सुनने की आदत मंगरू गुण्डा की बिलकुल नहीं है। मै हुजूर के आगे गुनाह इकबाल करने आया हूँ, सजा : सबसे बडी सजा पाने के लिए। समझ लीजिए—दो-चार खून करने पर भी खूनी को जान तो एक ही बार देना पड़ती है। मै अभी खून करके आ रहा हूँ। मेरे माथे पर खून अभी चढा ही हुआ है।"

अल्ताफअली थानेदार वर्दी के अन्दर एक बार काँप उठा ! उसे पसीना छूट गया। उसने सोचा खूनी को तुरन्त निरस्त्र न कर अबतक ग़लती की उसने।

"हवलदार !"

तुरन्त ही हवलदार सम्मुख आया।

"इसका छुरा ले लो।"

हवलदार ने गुण्डे को तुरन्त ही निरस्त्र कर दिया।

"छुरा नही घातक होता हुजूर !" दीवानावार हँसता हुआ गुण्डा बोला, "घातक होता है आदमी का, मर्द का, इरादा। मगर मै इस वक्त इस इरादे से आया हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करे। मैने खून किया है।"

"किसका ?"

"राजू...कबीरचौरा के लीलाधर कत्थक के खूबसूरत लडके राजू का...।"

"राजू कत्थक ? वही जो बहुत अच्छा नाचता था ?"

"उसके नाचने पर नही, मै तो उसकी भोली सूरत पर आशिक था...।"

"फिर उसे मार क्यो डाला ?"

"हुजूर झूठ न कहूँगा, मेरी सारी जमाजथा मुझ से ले लेने के बाद, मुझे ही कंगाल कहता हुआ, वह मालदार खत्री लच्छूराम गोटेवाले के सग रमने और मुझे पिड़काने, तड़पाने लगा। रकम के लिए मै उसे न मारता। मारा मैने सूअर की बेवफाई पर। मारा मैने कि बिना उसे जान से मारे जैसे मेरा दम घुँटने लगा था।"

"खून कबीरचौरा में हुआ है ?"

"खून तो हुजूर बुलानाले के सिनेमाघर में हुआ है। गोटेवाले की बगल में, बक्स में, बैठा राजू सिनेमा देख रहा था। उसी वक्त अन्दर दाखिल हो छुरे के एक ही वार से हरामी को सुला दिया और भाग खडा हुआ। मै चेतगज का रहनेवाला हूँ। भागकर पहले मै अपने घर आया और किसी दूसरे शहर में भाग जाने की जुगत जोड़ने लगा। लेकिन वह

लडका, झूठ नही कहूँगा, हुजूर, मेरी जान था। मुझे लगा उसके बिना जिन्दगी का स्वाद ही समाप्त हो गया। जब वही नही रहा, तो लानत है जीने पर। अब जीना मै चाहता नही।"

"जीना नही जो चाहता उसे अमरत भी नही जिला सकता।" हवलदार की तरफ देखता हुआ थानेदार बोला, "इसे अभी तो हवालात मे बन्द करो, बयान इसका अभी थोडी देर बाद दर्ज किया जाएगा। मुआयिने पर अभी सुप्रेन्टेन्डेन्ट पुलीस आनेवाले है।" अब बनारसी गुण्डे की तरफ देखकर थानेदार ने सुनाया, "जान न हुई दिल्लगी हुई, एक लौडे पर यार लोग खडी जवानी मे जान देते है! कैसा बद जमाना है कि भले आदमी ईमान पर जान नही देगे, नही देगे धरम पर,—ये तो जान देगे लौडेबाजी में...!"

"लौडेबाज के मुँह पर तो मै थूक देता हूँ। इस लत मे बदनाम गोटेवाला था। तभी तो मैने उसका खून किया। अपना सब कुछ उस पर न्योछावर करके भी उसको बुरे भावो से मैने कभी हाथ से छुआ तक नही। उसके रूप पर सरासर मोहित हो मै तो उसको प्राणेश्वर... हुजूर हँसते है!!"

"मर्द का प्राणेश्वर मर्द—जब इन्सान की अक्ल मारी जाती है तब ऐसा ही होता है।"

"हजूर भगवान मर्द ही है, जिन्हे कौन प्राणेश्वर नही कहता? पैगम्बर, पीर, गुरु को कौन भक्त, कौन मुरीद, कौन नालायक चेला प्राणेश्वर नही कहेगा?"

आदि मे राजू की चर्चा आ चुकी है अत. उसका अन्त बतलाना लाजिमी लगा। राजू के इस तरह जीने और यो मारे जाने का उसके भावुक पिता लीलाधर के जीवन पर क्रान्तिकारी प्रभाव पडा। पहले ही रानी सिनेमा-ससार की ओर चली गयी थी। रानी के लिये भी लीलाधर के हृदय में निर्मल-प्रेम था। अब उसका जीवनाधार राजू भी जान

से जाता रहा और सिनेमा हॉल मे। लीलाधर सिनेमा का घोर शायक था, पर, उस दिन से फिर जो कभी उसने सिनेमा देखा हो। इतना ही नही, इस सिनेमा में उसे दुर्गुण-ही-दुर्गुण दीखने लगे।

लेकिन सिनेमा से भी अधिक खिन्न वह अपने आप पर हुआ। नामा या नाम के लोभ में उस अभागे ने आखिर राजू को कुराह जाने ही क्यो दिया ? फाँसी उसे होनी चाहिये थी पहले, हत्यारे को बाद में। गलत रास्ते पर उतारकर पिता होकर भी पहले उसने राजू की आत्मा का हनन किया था। असिल मे राजू तो उसी दिन मार डाला जा चुका था जब लीलाधर की देखरेख मे पहले बद-आशिक से लिपटकर लडके ने टके साधे थे, शैतान को गुदगुदाकर। और शैतान पहले बडा मोहक सरासर अपनाही, महा उदार। राजू की एक-एक कमाई लीलाधर की तडपती स्मृतियो के आगे आयी। जेब-घडी, सोने की सिकडी, रेशमी-पशमी दुपट्टे, मिठाइयाँ, मेवाजात, रुपया, रुपये, अशर्फियाँ—पाप-रुचि शैतान ने क्या-क्या नही दिया। इतना भगवान कहाँ दे पाते ? उन पास उक्त वस्तुएँ होतीं ही कहाँ है ? इतना कुछ शैतान ही दे सकता है फिर, एक ही झपाटे में, मौत के घाट उतारने के लिये भगवान तो जीवन-दाता हैं। हे नाथ ! हे प्रभो ! किस कोठे मे पहुँचकर मेरे प्राण कैसे मन्द-फन्द मे फँसे—हे दया-मय !

लीलाधर ने एक बार तो रूप और नाम और जीवन बदल साधु-वेश हमेशा के लिए धारण करने का निश्चय किया। यहाँ तक कि सत्यतः साधु होने के पहले ही चोला तो बदल ही डाला। अब वह भगवारग की लुगी और लबा चोला पहनने लगा। पैसे के लिये तो अलग आत्म-सुख लिये भी गाना-बजाना या नाचना लीलाधर ने बिलकुल बन्द कर दिया। एक तरह का विश्वास हो गया था लीलाधर के अन्तर्मन को कि नाचने-गाने आदि में लज्जा-विरहित-विकृत-वृत्ति जाग ही उठती है।

इन्ही दिनो एक दिन लीलाधर को भदैनी-भवन से बुलाहट आयी।

"लीलाधर जी !" आते ही सु-आसन देकर महादेवी ने पूछा "यह वेश

आपने .. ! संसार त्याग दिया ? साधु हो गये ? आपने मुझे पहचाना तो होगा... ?"

"भला मै धोका खाऊँगा माताजी। एक बार इस दरबार में आना हुआ है ? कफनी पहन लेने से ही अगर साधुता सुलभ हो सकती तो क्या बात होती। त्यागी या साधु बनूँ—माताजी, ऐसे मेरे सौभाग्य कहाँ ? यह तो कहावत है : मन न रँगाये रँगाये जोगी कपड़ा ! क्या आज्ञा है ?"

"आज्ञा दूँ यदि मानने का वचन आप दे... ।" महादेवी ने सरस-भाव से सुनाया ।

"दास सेवा में हर तरह से हाजिर है, माताजी ! आप मुझे दूसरा जगरूप ही समझिये ।"

"जीते रहो बेटे !" गद्गद महादेवी ने बतलाया "मैं चाहती हूँ कि आप नाचना सिखलाएँ... ।"

"नाचना सिखलाऊँ ! किसे माताजी ?" कुछ न समझकर लीलाधर ने टटोलना चाहा ।

"मुझे आप सिखा सकते है ?"

"कोई भी हुनर हो माताजी, दो तरह से आता है। एक तो कुदरती, दूसरा अभ्यास, परिश्रम, मेहनत से । मगर, माताजी ! धृष्टता क्षमा करे ! मै कुछ समझ पा नही रहा हूँ ।"

"भविष्य में जो औरत नाचना न जानेगी" महादेवी ने सतेज, पर सहज सुनाया "पति उसका आदर कदापि नही करेगा। इसलिये लीलाधर जी ! भविष्य-ज्ञानियो को चाहिये कि लड़कियो को नाचना सिखावे, गाना सिखावे—बुरा क्या है ? मै बुरा कह रही हूँ ?"

लीलाधर को महादेवी का पागलिनी की तरह वह सावेश कथन एक धक्के-सा लगा। उसने सोचा प्रेम-मयी माता का हृदय कुपूत के दुराचार से घायल हो गया है। वह चोट-सी खायी हुई है और अपमान के आवेश

में नाचने पर तक आमादा है।"

"अम्माँ जगरूपजी आवेंगे। कहाँ तक कोई विदेश में रहेगा। अपना देश अपना ही देश होता है। वह ज़रूर एक दिन लौटेंगे।"

"नही, लीलाधरजी! मैं ऐसे नही सोचती। मै ऐसे सोचती हूँ कि अर्ध तजहि...सरबस जाता। ..मैं लड़के को छोडूँगी नही। हम लोग बबई जायँगे, नाचना सीखने के बाद ...।"

"आप... ? बडी मेहनत का काम है माताजी, आपकी यह उम्र. .।"

"मुझे नही, जगरूप की बहू को सिखाना है। मेरी लक्ष्मी-सी बहू नाचना नही जानती इसीलिये तो वह बेवकूफ नाच-नारी के साथ भाग गया। मै अपना लडका गवाँऊँगी नही, लीलाधरजी! भगवान आपका मगल करे—यह काम आपही कर सकते है। कल ही से आना शुरू करे, जो भी कहेगे तकलीफ के लिये खुशी से हाजिर... ।"

"मगर, माताजी! नाचना-गाना वगैरह मैने कतई छोड रखा है। कहे, तो किसी और को कह दूँ।"

"नही बेटे! मेरा विश्वास आपही पर है। आप जगरूप के जाने-सुने है। यह कम बडी बात नही है। मै आपको आशीर्वाद और धन दोनो ही से प्रसन्न करूँगी।"

"मगर, माताजी! मैंने तो स्वतः इस धन्धे को निकम्मा समझकर छोड़-जैसा रखा है।"

"धन्धे की बात जगरूप की माई और लीलाधर जी में हो ही क्यो? नाचना अच्छा है, बुरा है, क्या है, मैने इसपर अच्छी तरह महीनो तक सोच-विचार लिया है। बुरा है, चचलता से, बहको से भरा हुआ है, पातक है, पर उसे पसन्द है: जगरूप को, भैया को, इस पूरे परिवार के एकमात्र आधार को—तो नाचेगी अभागिनी बहू। बड़ी मुश्किलो मैने मनाया है उसको। लडकी क्या है गऊ है बेटा। उस अभागे को इस रत्न की परवाह नही और कँचकडे से परम प्रेम। बहू! अरी बहू

रानी ! इनसे कोई पर्दा नही। यह तो पिता की तरह है। फिर कठोर समय में मज़बूत लडकियाँ आजलाज के सकोच मे नही पडती। बहूरानी, घर मे आग लगी हो तो लाज करने से रक्षा होगी क्या ?"

गम्भीर-पगो से बिना घूँघट बाहर आकर प्रेमा ने जलपान की तश्तरी और पानी का गिलास लीलाधर के सामने रखकर, मस्तक बहुत झुकाकर, हाथ जोडकर सादर प्रणाम किया।

"सौभाग्यवती हो ! पुत्रवती हो ! रानी बहू !" हाथ उठाकर लीलाधर ने जगरूप की परित्यक्ता-पत्नी को आशीर्वाद दिया और उसकी तरफ जरा ध्यान से देखा। और नजर पडते ही अन्दर-ही-अन्दर उसका रूप-यौवन-मोही-हियरा धक से होकर रह गया। उसी वक्त उसकी दिवगत-पत्नी शोभा जैसे उसकी आँखो के आगे आ गयी—याद आ गया उसका अन्तिम-कथन कि मै तुमसे फिर मिलूँगी।

स्वयं पर बे-काबू कुछ क्षणो तक वह जगरूप की पत्नी को सर-से-पाँव तक देखता ही रहा। बाद में उसे याद आया कि ऐसा आचरण उचित नही और वह वेश्या के कोठे पर नही, माननीय गृहस्थ के घर में है। प्रेमा बराबर आँखे झुकाये खडी रही।

"तो कब से इसको सिखलाने आते हैं ?" महादेवी ने पूछा।

"माता जी, लीलाधरने आशा-भरे स्वर मे कहा, इसका उत्तर मै कल दूँगा। उत्तर क्या आना होगा तो कल ८ बजे सवेरे मै आजाऊँगा"

"आठ बजे सवेरे नही बेटा! दोपहर को १ से २ या २॥ बजे तक। सवेरे घर का काम-काज भी तो होता है। तो आप जरूर आयेगे कल १ बजे..."

"निस्सन्देह ! तबले की जोडी तो आपके यहाँ होगी ही।"

"है..."

"और हारमोनियम ?"

"वह भी है।"

कल १ बजे आने का वादा करते समय लीलाधर यह भूल गया कि क्षण-भर पहले उसने कल जवाब देने की बात कही थी।

: २१ :

उसी क्षण से लीलाधर के सीने मे प्रेमा का चित्र चिपक-सा गया। ऐसा कि चेष्टा करके भी उसके ध्यान से वह विरत नही हो पाता था। प्रेमा के बारे में सोचने से उसे सुखद-मोह, आवेश और रोमाच होने लगा। यौवन और रूप के ऐसे सुरभित-प्याले को अभागे जगरूप ने त्याग दिया, साथ ही, वीभत्स और विरसता को कण्ठ से बाँधकर बबई भाग गया। मूर्ख-मानव सहज ही पा जाने पर मणि को भी काँच मान कर तिरस्कृत कर देता है। तो क्या प्रेमा के रूप मे उसकी पत्नी शोभा का पुनर्जन्म हुआ है? और उसका पति उसको इसीलिये नही चाहता है कि वह निधि उसकी है ही नही, लीलाधर की है? नही तो कहाँ कुलीन ब्राह्मण की हवेली, कहाँ नाचने की चर्चा। जरूर इसमें प्रारब्ध का सबल हाथ है। कबीरचौरा वाले मकान में बैठा हुआ लीलाधर यह सब सोच रहा था कि उसका एक मित्र झिल्लर तबलिया आया और आते ही चहक चला—

"वाह गुरू! आज तो बडे खुश नजर आ रहे हो। बात क्या है?"

"कुछ भी नही, झिल्लर...।"

"है तो जरूर कोई बात—कोई चिडिया फँसी?"

"अजी राम भजो...! मै कोई बहेलिया नही।"

"जरूर कुछ-न-कुछ गोलमाल है गुरू! तुम्हारे गाल की झुर्रियाँ खुशी से फूल उठी हैं।"

"आज से एक बडे आदमी के घर नाच सिखाने का काम लगा है।"

" य मारा गुरू ! मै पहले ही कह रहा था कि कोई माशूक है इस पर्द-ए जिगारी मे। मगर, बड़े आदमी के घर पर तो नाचने की चर्चा तक नीच मानी जाती है। अग्रवाले है क्या ?"

ब्राह्मण—सो भी पक्ति...। असिल मे लडकी के पति ने उसे इसलिये छोड रखा है कि वह नाचना नही जानती। लाचार लडका बेगाना न हो इसलिए घरवाले बहू को नाचना सिखा रहे है।" लीलाधर ने कहा।

"वाह गुरू ! मिले हाथ ! पहले ही मै ताड़ गया था कि जरूर कोई चिडिया फँसी है। मुशाहरा क्या होगा ?"

"आपसदारी की बात है, सो, मैने न कुछ तय किया है न रवागीर हूँ।"

"जरूरत तो एक तबलिये की भी होगी ?" झिल्लर ने पूछा।

"क्यो ? मै किस मर्ज की दवा हूँ ? मुझे क्या तबला बजाना नहीं आता ? मै सब कर लूँगा।"

"सब ? ऐसा क्या गुरू ! आप नाच सिखायेगे, परन, बोल सिखायेगे कि तबला बजायेगे ?"

"मै अकेले ही सब कर लूँगा ?"

"बिना तनख़ाह ?"

"वह मेरे मित्र की स्त्री है।"

"समझा, आप लोग जिससे तनखाह नही लेते उससे बड़ी प्यारी चीज लेना चाहते है।"

"क्या मतलब ?"

"पलंग की सेवा। भौहे न तानिये, मै भी आप ही लोगों के बीच में रहता हूँ। शारदा कसम खाकर कह सकते है आप कि आज तक एक भी युवती को बिना बिगाड़े नाचना-गाना सिखाया है ?" जैसे चिढ़कर

झिल्लर तबलिये ने सुनाया।

"वे वेश्याएँ होती थी जिन्हे अब तक हम सिखाया करते थे; अब जिसे सिखाना है वह कुल-ललना है। मेरी बेटी-जैसी।"

"गाने-बजानेवाले उस्ताद बेटी और बाबा कहते-ही-कहते युवतियो की अँगुली पकडते-पकडते पहुँचे तक पहुँचते है। इस चर्चा में बम्बई के दूल्हाखाँ की याद आती है। पट्ठे का नाम ही दूल्हाखाँ था। वह कहता कि गाना-बजाना सीखने के सिलसिले में तो सभी औरते उस्ताद के सामने चित्त से पट्ट हो जाती है, पर, इतना सब्र मै नही रखनेवाला। मैं तो सितार पकडकर बैठने का आसन और मुख-मुद्रा बतलाने ही मे लडकी को समझाकर उससे समझ लेता हूँ।"

"दूल्हाखाँ हरामी था।"

"इस लाइन मे हलाली तो एक लीलाधर नजर आये छप्पन चूहे खाके बिलाड़ी चली हजके। हाँ, तो दूल्हाखाँ कहता कि जिस भी युवती को वह सिखाने जाता उसे एक-ही-दो बैठको मे ले बैठता।"

"खिलवाड है दूसरे की बहू-बेटी को एक-ही-दो बैठको में बरगला लेना। कैसे ले बैठता वह साला? सुनूँ भी।"

"सितार लेकर बैठने का आसन और मुख-मुद्रा बतलाने में। दाहना घुटना मोड़ बाये घुटने को खड़ा रखकर पहले वह नयी-चेली से बैठने को कहता। फिर स्वयं सितार लेकर आसन से बैठकर कहता कि वह गौर से देखे कि उसने कैसे आसन लगाकर, किस तरह सितार पकडा है। वह कहता आसन आ जाना आधा सितार आना है।"

"बात एक हद तक ठीक है।"

"इसके बाद वह चेली के हाथ मे सितार देता कि वह सही ढग से बैठे। पर दूल्हाखाँ की नजर में वह कभी सही न बैठ पाती। सो, युवती के घुटने वह सही करता, सावधानी से उसकी रान सहलाता हुआ। फिर, सितार दोनों जोबनो के बीच में फिट करने की कोशिश में पहले

सितार की लकडी से उसके कुच दबाता। इस पर युवती अगर हँसकर रह जाती तो अपने पजे का प्रयोग करता।"

"निहायत हरामी...।" लीलाधर ने सुनाया। "अकेले मे जवान औरत के साथ बैठने में जो निहायत हरामी न हो जाये मुझे तो ऐसा कोई नजर नही आया। हाँ, तो युवती के सीने पर कब्जा पाते ही दूल्हाखाँ समझ लेता कि 'पास' प्राप्त हो गया। अब वह उसे 'मुस्करा-कर यन्त्र लेने की शिक्षा' पर आता। दो-चार बार युवती जब उसके अनुसार सही ढँग से न मुस्करा पाती, तो वह कहता कि आप हुक्म दें तो सही मुस्कराहट मै आपके चेहरे पर अभी पैदा कर दूँ। और लड़की की इजाजत मिलने मे देर न लगती। तब दूल्हाखाँ कहता कि अब आप सितार अलग रख पहले मुख-विलास समझ ले। आसन और मुद्रा आते ही सितार आया ही समझिये। जरा मुस्कराइये, मेरी तरफ देख कर। स्वभावत. लडकी मुस्कराती, मगर झेपती हुई। वह कहता आप शर्म करती है। शर्म करनेवाला भला क्या कला सीखेगा—पहले शर्म छोडिये। और वह निकट जा, हाथ पकडकर युवती को सीने से लगा कर कस-कसकर चूमने, उसके गालो पर अपने होठो से गुदगुदाने लगता। अब युवती के खिलने मे देर न लगती—वह प्रफुल्लित हो उठती। इसके बाद जब वह सितार लेकर स-आसन बैठ मुस्कराती-मुद्रा बनाती तो दूल्हाखाँ मजूर कर लेता कि सही है। यह सब सुनकर मुझे ऐसा बुरा लगा कि दूल्हे के बच्चे का खून ही कर डालूँ। लेकिन दूल्हाखाँ कहता कि फिर तो लडकियाँ ही आग्रह करती कि वह उसे कायदे से सितार लेना और सही आसन-मुद्रा से बैठना एक बार और बतलाये।"

"हे नाथ!" लीलाधर ने हैरत का नाट्य किया "मारो गोली! जिसका पाप, उसका बाप इसके अलावा इस अंग्रेज़ी राज मे कोई कर ही क्या सकता है? एक बात और है। बम्बई की बात और है, बनारस की और। यहाँ दूल्हाखाँ होता तो जूते ही न खाता सुसरे की नाक तक

काट ली जाती।"

"गुरू की बाते ! गोया झिल्लर बनारस मे पैदा ही नही हुआ है। बम्बई मे जो लीलाएँ खुले-आम होती हैं बनारस मे वही लीलाएँ पर्दो में पटाई जाती है। अन्धकार और दुर्गन्ध मे। मज़े लेना बम्बईवाले जानते है, मगर बनारसवाले केवल पाप करना जानते है।"

"कहाँ बनारसवालो को सुबह-सुबह झिल्लर तबलिये ने ला पटका ! अबे बा—बे तबलजग !"

"तबलची ? दस मिनट तो मेरी सगत मे तुम गा नही सकते। भूल जाओ लीलाधर ! बम्बई में मैने उस्ताद नत्थनखाँ की शागिर्दी मे साडे तीन साल तक तबले की कमर-तोड-साधना की है। दम-खम हो, तो अभी बैठ जाओ और चाहे जो राग, जिस ताल का, गाकर नमूना देखो।"

"अबे नमूने के बच्चे !" लीलाधर बिगड़ा "जाता है अभी कि लगाऊँ चपत...?"

"मामूली आदमी की चपत हिसा भरी, बे-सुरी दुर्गतिवाली। लेकिन तबला-वादक की चपत भी सुरीली, लयदार, सुगतिवाली होती है। लीलाधर, तुम्हारी खोपडी में भेजा—भेजे मे दिमाग भी है ?"

दोस्ताना अदा से—हाँ—झिल्लर लीलाधर के प्रहार से बचने के लिये तीव्रता से भाग गया। साथ ही, अनायास ही, उसको सावधान करता गया कि दूल्हाखाँ बनने से वह बचे।

और लीलाधर बचा—भदैनी-भवन में अपने मित्र जगरूप की रूपवती पत्नी को नृत्य-शिक्षा देने के दर्मियान में। एक-दो-दिन नहीं दो-दो घटे नित्य दो वर्ष तक जब उसने प्रेमा को नृत्य-कला की शिक्षा दी तब कही जाकर वह नाच निकली। प्रेमा लीलाधर को गुरू या पिता जैसा मानती थी और एक क्षण के लिये भी जगरूप के अलावा उसके हृदय मै लीलाधर तो क्या देवी-देवताओ तक का खयाल या ख्वाब नही आया।

नाचने से जगरूप उसका हो जायगा, सदाके लिये; इसी आशा से माती हुई वह नाचना सीख रही थी।

नृत्य-कला सिखाने के सिलसिले में लीलाधर प्रेमा के इतने निकट जाता जितना उधर के मर्यादानुसार पर-पुरुप को कुलीना, आर्या के निकट नही जाना चाहिये। पर, लीलाधर के मन में क्या था लीलाधर जाने। प्रेमा पूर्णतः पाक थी। लीलाधर, अक्सर, प्रेमा की साडी सुधार देता जिससे नाचने में दिक्कत न पडे। वह ऐतराज न करती। लीलाधर जो भी कहता निष्ठा से आज्ञा का पालन करती। तन्मयता और तत्परता से—सदा से—मुश्किल आसान होती आयी है। आशा के प्रतिकूल प्रेमा बहुत उत्तम और बहुत शीघ्र नाचने लगी। यहाँ तक कि महादेवी ने बम्बई जाने की पूरी तैयारी कर ली, ज्योतिषी से दिन और समय तक पूछ लिया।

अब लीलाधर के मन को ऐसा लगने लगा मानो प्रेमा को एकाएक छोड देना सहज नही है—जिस युवती, सुन्दरी, मन-मोहनी के साथ पिछले दो वर्षों से नित्य वह दो दो घटे रहता था—उसको हँसाता था, खेलाता था, नचाता था। गुरु और बाप वह था—बेशक, पर, शायद ऊपर से। अन्दर-ही-अन्दर उसका मन पर-स्त्री और युवती के ससर्ग का मोहक-रस बराबर ग्रहण करता रहा। अब जो प्रिया-प्रेमा के बम्बई जाने की नौबत आई तो लीलाधर का कलेजा कचोटने लगा। काश, वह भी बबई जाता और वहाँ भी प्रेमा का शिक्षक—नृत्य-शिक्षक बना रहता। लेकिन यह सभव नही लगा। तब लीलाधर विकृत कल्पना करने लगा कि प्रेमा को उसकी सास बबई में भी नृत्य-कला सिखलाती ही रहेगी। क्या भरोसा है कि बबई में दूल्हाखाँ के भाई प्रेमा को नही मिलेगे। फिर ? फिर ?? बराबर चाह कर भी उसने चाह से जिसे कभी हाथ तक नही छुलाया था जल्द ही बबई के बद-चलन उस्ताद उस पाकीजा का रस लेगे ? पर लाचारी थी। प्रेमा का बबई जाना वह किसी तरह

रोक नही सकता था ।

अब लीलाधर के मन में वासना-वायु बहकने लगी । वह अन्तर्द्वन्द्व में पड गया । अभी औरत उसके हाथ मे थी; वह सब-कुछ कर सकता था । फिर कुछ किया-कराया जा नही सकेगा । लीलाधर ने दिन-दहाडे सपना देखा कि दूल्हाखाँ—प्रेमा का बबैया-उस्ताद—उसको नृत्य सिखला रहा है। साथ ही और क्या कर रहा है जो लीलाधर को बिलकुल पसन्द नही । पर तुरन्त ही उसे ज्ञान हुआ कि बबई नही अभी तो वह बनारस मे है तथा प्रेमा उसीकी मुट्ठी में है—फिर ? फिर ??

उस दिन लीलाधर ने प्रेमा को एक नृत्य के अभ्यास मे टोककर उसमें एक नया भाव जोडते हुए समझाया कि नाचते-नाचते प्रियतम के ध्यान में एक समय एक मिनिट तक वह ऐसी एकाग्र-चित्त खड़ी रहे, ऐसी भगिमा से विदित हो मानो तन-बदन की सुधि ही नही है । इसके साधने मे प्रेमा बार-बार गिर पडती और लीलाधर उसे अक में बार-बार भर लेता था । पर, वासना-वायु का प्रवेग बराबर यक तरफा रहा । लीलाधर की हर क्रिया को प्रेमा ने शिक्षा ही का अग माना । आखिर वह ऐसी आत्म-सुधिहीन खड़ी रह गयी कि एक बार लीलाधर को ऐसा लगा कि वह मर तो नही गयी । धड़कन जानने के लिये कि उसने प्रेमा के सीने पर हाथ रखा—बिजली का धक्का-जैसा लगा लीलाधर को । फिर उसने यह जाँचने के लिये कि उसकी साँस चल रही है युवती के सुन्दर होठो पर अँगुलियाँ रखी । उसके मन में क्या विचार उठने लगे । यह सब बहुत शीघ्र हुआ और तुरन्त प्रेमा होश मे आ गयी । उसने सलज्ज अनुभव किया कि वह लीलाधर के अक मे—उसकी लपेट मे है । उसका मुख उसके अधर के निहायत निकट है । वह यो चमककर लीलाधर की गोद से फिसल फर्श पर जा रही जैसे धोके से सडास में गिरने के बाद कोई शुद्ध स्थान की तरफ लपके । पर वह लीलाधर के प्रति नीरस अनुदार या अकृतज्ञ नही बनी । उसने अपने मन

के भावो को छिपाते हुए उससे कहा "आप गुरू ही नही, मेरे पिता-तुल्य है। आप कृपा न करते तो नृत्य-कला मे कदापि न पाती। हमारे आपके सीखने-सिखाने का आज अन्तिम दिन है। हम परसो बम्बई जा रहे है।"

"देखो, बन पड़ा तो मै भी कभी बम्बई आऊँगा—गुरूजी (जगरूप) से कहना, मुझे याद करेगे, पता देगे।"

इसी समय महादेवी एक थाल में मिठाइयाँ, एक जोडा दोशाला और एक गिन्नी लेकर आयी और लीलाधर को देती हुई बोली · "बेटा, वैसे तुमसे हम कभी उऋण होने वाले नही... ।"

"बहुत मिला ! माताजी, आपके यहाँ से तो मुझे बराबर ही राज-दक्षिणा मिलती रही है।"

: २२ :

इन पक्तियो का लेखक यो तो अपने आगे किसी को भी लेखक मानने को तैयार नही, लेकिन जन-मत का अनादर इन पक्तियो के लेखक से हर्गिज सभव नही है। बनारस का जन-मत नन्दकुमार को लेखक ही नही अच्छा लेखक मानता था। उसके लेख तत्कालीन सभी पत्र-पत्रिकाओ में . 'प्रताप' में, 'भविष्य' में, 'आज' में, 'अर्जुन' में, 'माधुरी' में, 'मर्यादा' में प्रधानतापूर्वक प्रकाशित होते थे।

अच्छा लेखक किस परिस्थिति में पनपता है—जाने अच्छा लेखक, लेकिन महाशय नन्दकुमारजी 'नन्दन' के भदैनीवाले घर में अच्छाई का नामोनिशान तक नही था। गलियारे मे अध-पक्का, पुराना, अँधेरा घर जिसके दरवाज़े पर ही सदा गन्दा रहनेवाला पाख़ाना। घर में न साज न सामान—आराम-विधि का एक भी विधान नदारद लेकिन

तकलीफे तरह-तरह की। ऐसी ही तकलीफो से आरी आकर अधिक उसने सन् १९२१ ई० वाले सत्याग्रह-आन्दोलन में जेल जाने का निश्चय किया था; आजादी के उग्र-निश्चय से कम। वह जेल ही मे था कि उसके वृद्ध पिता का देहान्त इसी शोक में हो गया था कि उसका पुत्र जेल-खाने गया था, कुल मे कलक लगाकर। खैर...

जेल से छूटने पर लेखक नन्दकुमार को बाप की विरासत में मिली पालने के लिये एक खासी-भली फेमिली : माता, पत्नी, छोटा भाई (विद्यार्थी) और बडी बहन (विधवा)। दो-दो जून खाने को पाँच-पाँच मुख जिनमें बत्तीस-बत्तीस दाँत लेकिन कमाने के लिये नन्दकुमार का हाथ एक जिसमें मात्र एक लेखनी। और बाजार हिन्दी का,—वह भी तीस साल पूर्ववाला। नन्दकुमार ने लाख कोशिशे की कि वह किसी तरह अपने प्रिय-पात्रो का पालन कर पाये, पर असभव। हिन्दी और सशक्त हिन्दी-लेखक मे वह शक्ति कहाँ जो किसी भी साधारण प्राणी मे सभव मानी जा सकती है। सो, लेखनी से प्रगतिवादी होता हुआ भी लेखक नन्दकुमार 'नन्दन' हृदय से भाग्यवादी होइहि-सोइ-जो-राम-रचि-राखा-मतवाला हो गया और ला-पर्वाह और निर्लज्ज। उसका वेद-वाक्य हो गया 'ऋण कृत्वा घृत पिवेत्'। यानी कर्ज करो और घी पीओ। सो उसने झूठी बाते बना-बनाकर—कि यहाँ से पुरस्कार आता ही होगा, वहाँ से रॉयल्टी आती ही होगी मोदी, हलवाई, कुँजडा, धोबी और नाई तक का कर्ज किया। पर, ओस चाटने से कब किसी की प्यास बुझी है? महीने में तीस-के-तीसो दिन उपवास नही तो उपवास के भय मे उस हिन्दी-लेखक और परिवार के गुजरते थे। इस दारुण-दरिद्रता से ऊबकर एक दिन जब नन्दकुमार की बेवा बहन न जाने कहाँ गायब हो गयी तब इस सम्बन्ध मे भदैनी मुहल्ले के बनारसियो ने तरह-तरह के अन्दाज लगाये—कि वह किसी मुसलमान के साथ भाग गयी; कि उसे किसी अबला आश्रमवाले बहका ले गये, कि बनारस के किसी विलासी

ने अपने बगीचे में उसको छिपा रखा है; कि गरीबी से नकियाकर उसने गगा में डूब आत्म-हत्या करली है। इतने पर भी सबल-हिन्दी-लेखक का धन्धा छोड़ किसी दूसरे भले धन्धे से आजीविका कमाने की इच्छा नन्दकुमार के मन मे नही हुई। दिल उसका हिला उस दिन जिस दिन उसकी पत्नी ने नितान्त घृणा से उसे सुनाया कि "भगवान करम फोड़े तो रॉड-बेवा-बाँदी बनावे लेकिन हिन्दी लिखनेवाले की स्त्री बनाने का नारकीय-दण्ड तो दयाकर कदापि न दे।" पत्नी की ये बाते तीर की तरह उसे लगी थीं जिससे घर छोड़कर फकीर की तरह भाग जाने का इरादा उसने किया था। पर मनत फकीर नन्दकुमार था नही। उपवास वह कर लेता, पर फेरी लगाकर फाको से बचना उसके लिये असभव था। फिर ? उस गलाघोटू-वातावरण से वह बचता तो कैसे ? भागता तो कहाँ ?

इसी अन्तर्द्वन्द्व मे उसे याद आयी जगरूप की। उसने सुन रखा था कि वह बबई मे था और फिलम-डाइरेक्टर की हैसियत से आनन्द, विलास, शोहरत तथा टको की टकसाल चला रहा था। उसे पूर्ण विश्वास था कि जगरूप के मन में उसके लिये स्थान है। जरूर वह फिलम की कहानियाँ लिखाकर या टाइटिलो के अनुवाद कराकर उसको पर्याप्त पैसे दिला सकेगा। उसने जगरूप को लिखने का इरादा किया, पर पता उसका मालूम नही था। ऐसे जिगरी-दोस्त को लिखने की ज़रूरत ही क्या ? वह जब चाहे तब उसके पास, बिना नोटिस जा सकता है। पर मोह-वश बनारस और यह विकृत-वातावरण उससे छोडा नही जाता था। उस दुर्दशा में भी सुविधा, सुपास, खिचाव, अपनापन-जैसा नन्दकुमार को मालूम पडता था। छोड़ने मे हियरा हिलता था। अन्ततो-गत्वा उसने वही—भाग्य का भरोसा किया। कागज के दो टुकडो पर दो बातें लिखी (१) बम्बई न जाये ? (२) बम्बई जाये ? उन कागज़ो को गोल लपेटकर एक लडकी से उसने कहा कि हनुमानजी के मन्दिर

मे जाकर वह एक गोली उनके चरणो में छोड़ आये और दूसरी वापस लाये। भाग्य ! वापिस आनेवाली गोली के कागज पर लिखा था कि—बम्बई जाये। सो, उसने बंबई जाकर भाग्य आजमाने का निश्चय किया और एक बार और झूठ-सच बाते बनाकर सबसे कर्ज़ किये। आखिर महीने-दो-महीने खानेभर सामान घर में रख नन्दकुमार बबई जाने के लिये पूरी तरह तैयार हो गया। कसर बस इतनी ही रह गयी थी कि टिकेट के रुपये नही थे और न कही से मिलने के लक्षण ही नजर आते थे। कई मित्रो से उसने उधार माँगे; पर, सफलता कही न मिली। तब उसने सोचा कि 'आज' अखबार के मैनेजर से किरायेभर के रुपये बबई से विशेष-सवाद भेज-भेजकर भर देने के वादे पर क्यो न माँगा जाय। ज्ञान-मण्डल कार्यालय जाकर उसने परीक्षा भी की। मगर हिन्दी के सबल लेखक को 'आज' का मैनेजर खुश न कर सका और 'नन्दन' जी को निराश ही लौटना पडा। ज्ञान-मण्डल से वह चौक की तरफ आ ही रहा था कि सामने से कोई झुकी हुई वृद्धा स्त्री जाती उसे नज़र इसलिये आयी कि उसके वस्त्र से थैली-सी कोई वस्तु सडक पर गिर पडी थी। बुढिया को इसका पता नही, पर लेखक ने देखा। बढकर उसने थैली उठाली। खोलकर देखा तो उसमें पाँच-पाँच के पाँच नोट थे। यह देखते ही पहला विचार नन्दकुमार के मन मे यह आया कि यह सब भाग्य का खेल है, हनुमानजी की कृपा है। बबई जाने के लिये नियति ने यह निधि उसे दी है। लेकिन उस अबला बुढिया का क्या होगा इसका ध्यान उस सबल हिन्दी-लेखक को नही आया। वह देर तक जहाँ-का-तहाँ खड़ा रहा कि बुढिया दूर निकल जाय। कोई बीस मिनट बाद वह पुनः आगे बढा। मैदागिन की चौमुहानी पर उसको एक भीड नज़र आयी। निकट जाने पर उसने देखा वही वृद्धा व्यग्रता से रो-रो-रोकर कह रही थी कि उसके रुपये कही गिर पड़े—उसके बेटे की महीने भर की कमाई, उसके परिवार की तीस दिन की रोटी। अब

वह अपने घर पर जवाब क्या देगी ? "हायरे ! हायरे !"

बुढिया की दुर्दशा से द्रवित नन्दकुमार ने एक बार तो वह थैली उसे लौटा देने का निश्चय किया लेकिन दूसरे ही क्षण यह बिचार आते ही कि बबई जाना असभव हो जायगा, वह कठोर हो गया। आगे बढ गया।

: २३ :

बनारस से बबई पहुँचने पर लेखक नन्दकुमार को भी कुछ नया ही अनुभव हुआ। उसके युवक-मन को बबई बनारस की तुलना मे बीस ही नही, पच्चीस नजर आयी। कैसी-कैसी इमारतें, कैसी-कैसी सडके, कैसी-कैसी मोटरे, कैसे-कैसे लोग, कैसी-कैसी लुगाइयाँ ! हो काशी पुण्य-पुरी, पर विभव-नगरी बबई की तुलना मे, चाँदी के चश्मो से देखिए तो, वाराणसी धूल भी तो नही। नन्दकुमार उर्फ 'नन्दन' को सारी-की-सारी महानगरी पुराणो की अमरावती-जैसी नजर आयी; नर-नारी, देव-देवियो की तरह। उसकी दृष्टि मे बबई की एक-एक तितली अप्सरा-जैसी नजर आयी। हीराबाग की धर्मशाला में दो रातें बिताने के बाद उसे जगरूप का ठिकाना-पता मिला . 'इला विला, सान्ताक्रूज'। सान्ताक्रूज वैसे बबई का उपनगर, पर, बम्बई की शोभा नगर, उप-नगर चारो तरफ एक भाव की। बम्बई की शोभा बढाते हुए उसके उपनगर स्वय ऐसे सुशोभित थे जैसे सुवर्ण-मुखी नव-वधू के अग-वस्त्र---चोली, चूनर, चादर हो। गरीब लेखक नन्दकुमार का मन बम्बई की चम-चम-विभूति पर लोट-पोट हो गया।

जगरूप के निवास-स्थान पर : इला विला, सान्ताक्रूज, नन्दकुमार पहुँचा दिन के कोई डेढ़ बजे। उसे देखते ही उल्लसित हो जगरूप ने

"तुम इसकी स्टोरी लेगा...?" देगा चान्स ?

"हिश ! अपनी स्टोरियाँ मै खुद लिख लेता हूँ ।"

"तो फिल्म की टाइटिले लिखायेगा इससे. ..?"

"जरा तमीज से बोलो !" जगरूप ने रोज को सावधान किया "वह आ रहा है । क्या मन मे सोचेगा कि हीरोइने कैसी होती है ।"

"लेकिन वह तुम्हारा फ्रेण्ड है, मेरा तो नही । मै उसे नापसन्द कर सकती हूँ ।"

"महामाया—क्षमा !" हाथ जोडता हुआ जगरूप बोला "यह मेरे यहाँ टिकने नही आया होगा । यह तो दो ही चार दिनो मे फेडप होकर चला जायगा ।"

उस दिन दस्तरखान जमीन ही पर बिछाया गया था । जगरूप की दाहिनी तरफ नन्दकुमार बैठा, बाईं तरफ़ मरियम रोज । खाने मे कई तरह के मास, सब्जियाँ, सलाद, सूप और चपातियाँ थी । एक खास डिश की तरफ इशारा कर जगरूप ने नन्दकुमार से पूछा—

"जानते हो इस डिश में क्या है ?"

"मटन मालूम पड़ता है।"

"मटन इस डिश मे है । यह तो वाराह भगवान का गोश्त है ।"

मिस रोज़ ने ताड़ा कि सूअर का गोश्त नन्दकुमार छू भी नही रहा है । उसने एक क्षण मन-ही-मन कुछ निश्चय-जैसा किया । दूसरे ही क्षण सूअर के मान्स का एक बडा-सा खण्ड उठा, दाँत से काट, छोटा खण्ड मुँह से हाथ में निकालकर जगरूप को देती हुई उसने कहा—

"यह अपने फ्रेण्ड को दो !"

और जगरूप ने सुन्दरी औरत की आज्ञा का पालन बिना ननुनच किया । शायद इसके सिवाय अन्य गति नही थी । नन्दकुमार ने भी सुन्दरी के दाँतो से कटा हुआ सूअर के मान्स का टुकड़ा यो मुँह में डाल लिया जैसे परम-प्रसाद । साथ ही, ऐसा कृतकृत्य-रूप बनाया मानो

स्वर्ग ही पा गया हो अथवा सुधा ही ! असिल में मिस रोज़ की यह हरकत भी जगरूप को कम बुरी नही लगी लेकिन विरोध उससे किया न जा सका। की जा सकी केवल खुशामद—"नन्दकुमार पामिस्ट भी बहुत अच्छा है—रोज़, डियरी !"

"ऐसी बात !" रोज़ ने नन्दकुमार की तरफ लुभावने-ध्यान से देखा।

"यो ही..." नन्दकुमार ने सुनाया "दिल-बहलाव के लिए पामिस्ट्री का शौक कर रखा है। इस इल्म का जानना ऐरे-गैरे हरेक का काम नही है।"

फिर तो सारे दिन मिस मरियम रोज़ नन्दकुमार से अपना हाथ देखने का आग्रह करती रही और वह मित्र की चहेती का पाणि-ग्रहण करने से सकोच करता रहा। निस्सकोच-कामुको मे रमनेवाली फिल्म-नटी की निगाहो में नन्दकुमार का संकोच बडा ही अनोखा और आकर्षक मालूम पडा। रात्रि का भोजन करने तीनो जने एक-एक डबल-पेग मदिरा छक कर बैठे। इस बार मिस रोज़ बीच में थी और नन्दकुमार के काफी निकट भी। बाते भी वह उसी से विशेषत: कर रही थी सो—भी आँखो-मे-आँखे भिडा-भिडा कर। मिस रोज़ जब भी नन्दकुमार से आँखे लडाती वह मारे सकोच और मित्र के लेहाज़ के नेत्र नीचे कर लेता। यह बात उस नटी को असह्य-सी लगी :

"तुम मेरी तरफ देखता क्यो नही ?" शराब से बहकी हुई वह बोली।

"देख ही तो रहा हूँ।" नन्दकुमार ने भी औरत की तरफ विनोद से देखते हुए कहा—"अब कैसे देखूँ ?"

दोनो देर तक एक-दूसरे की तरफ देखते रहे। पर, शीघ्र ही, नन्दकुमार ने जगरूप के लेहाज से खाने पर ध्यान दिया।

"क्यो ? क्यो ?" उन्मत्त-विहारिणी रोज़ ने नन्दकुमार से पूछा—

"तूने आँखे हटा क्यो ली ?"

"हम खाने के लिए बैठे हैं बाई ! न कि आँखे लडाने के लिए।" नन्दकुमार के मुँह से बेसाख्ता निकल गया। यह सब जगरूप को भी बहुत ही बुरा लगा। आधा गाकर उसने तुलसीदास की मशहूर अर्धाली नन्दकुमार को सुनायी .

"ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
सकल ताडना के अधिकारी।"

उक्त अर्धाली का अर्थ तो मिस रोज की समझ में बिलकुल नही आया, पर, कहनेवाले का कु-भाव छिपा न रह सका—"क्या मतलब ? क्या मतलब ?" उसने नन्दकुमार से अर्धाली का मतलब पूछा, जिस पर विवशता दिखलाता हुआ नन्दकुमार बोला कि वह जगरूप ही से मतलब पूछे।

जगरूप जब हाथ धोने लगा तब नन्दकुमार के कान मे रोज ने बतलाया—

"मै तुझसे हँसती-बोलती हूँ तो यह साला जलता है—यह सोचे वगैर कि जब यह फिल्म-लाइन की दूसरी औरतो से खिलवाड करता है तब मुझ पर क्या गुजरती है। इसीलिये मै भी साले को मौके-बे-मौके पिडकाती रहती हूँ।"

"आप मेरे कन्धे पर रखकर जगरूप पर बन्दूक न दागे तो ठीक। वह मेरा मित्र है।"

"हा हा हा हा ! नन्दकुमार के चौड़े कन्धे को सहलाती हुई रोज बोली—"तेरे कन्धे इस काबिल है तभी तो...!"

बैठनेवाले कमरे मे आते ही शिथिल-सा हो जगरूप सोफे पर लुढक पडा। इससे मिस रोज़ का उत्साह उसी तरह बढा जैसे तीरन्दाज़-भिल्लनी का निशाने पर तीर लगने से बढे।

"इधर आओ मिस्टर !" नन्दकुमार को उसने हाथ पकड़कर

खींचा—"यहाँ बैठो और सीधे से मेरा हाथ देखो। मैं छोड़ूँगी नहीं तबतक जबतक तुम मेरे भाग्य की एक-एक रेखा देख नहीं लोगे; बला से इसमें सारी रात ही क्यों न लग जाय।"

मिस रोज़ का हाथ पकड़ते हुए नन्दकुमार ने जब जगरूप की तरफ़ देखा तो उसे निन्द्रागत पाया। नाक बजती हुई। तेज़ फ़िल्म-नटी ने ताड़ा कि नन्दकुमार मित्र की उपस्थिति से हिचक रहा है। एकाएक उठकर उसने नन्दकुमार से कहा, "चल मेरे कमरे में। यहाँ इसके नक-बाजे के सामने बातें ना-मुमकिन हैं।" नन्दकुमार कुछ कदराया, पर मिस रोज़ ने उसको बरबस खींचा। कमरे में एक बड़े पलंग के अलावा शृंगार-टेबुल और दो कुर्सियाँ भी थीं। दोनों आमने-सामने बैठ गये। औरत ने नन्दकुमार की आँखों-से-आँखें मिलायीं। पुरुष भीतर-ही-भीतर सिहरा। उसे लगा जैसे मिस रोज़ उसको अपने आकर्षण के मकड़-जाले में खींचना चाहती है। वह झिझकता था इसलिये नहीं कि मकड़-जाला मोहक नहीं था बल्कि इसलिये कि वस्तु मित्र की थी और मित्र भी जिगरी जिससे दाँतकाटी रोटी। रोज़ी को लेकर नन्दकुमार के मन में मित्र के प्रति पावन-कर्त्तव्य और सुन्दरी स्त्री के अदम्य-आकर्षण में द्वन्द्व छिड़ गया।

"तू उससे डरता क्यों है ? तू मूड में क्यों नहीं आता ? ऐसे उखड़ा-उखड़ा-सा क्यों बैठा है जैसे लाल तवे पर ही तो हो ? तू कहता है कि जगरूप तेरा फ्रेन्ड है ! हा हा हा हा ! जगरूप अपने बाप का भी फ्रेन्ड नहीं है। तू भी बनारसी है ? है तो ? मैं पूछती हूँ क्या सभी बनारसी ऐसे होते हैं जैसा कि फ़िल्म डाइरेक्टर क...है या ज...यानी यह जगरूप ?"

"आप बनारसियों पर बेहद नाराज़ मालूम पड़ती हैं...।"

"बदमाश ! अब तक फ़िल्म-लाइन में बनारस के जो डाइरेक्टर बंबई आये हैं, एक-से-एक फ़रेबी; खासकर औरत-फ़रेबी के माहिर।"

"गर्ज़ कि बनारस के इन गुणियो में आपको कोई खसूसियत नजर आती ही नही ? ये मिस्टर चौ...मिस्टर क.. या जगरूप आज मशहूर डाइरेक्टरो में माने जाते है...।'

"भानमती का कुनबा। ये साले फिल्म बनाना क्या जाने ? ये तो कही-की-ईट-कही-का-रोडा--भानमती-ने-कुनबा-जोडा है। केवल डर्टी नकल अमरीकी-तस्वीरो की . निर्लज्ज नकल। और हिमाकत यह कि क्या मजाल कि कोई औरत बिना अस्मत दिये पिक्चर मे प्रापर पार्ट पा जाय। और आब देते ही महताब ही नही चुडैल भी हीरोइन बनी बैठी है !"

"आप खुद कई पिक्चरो की हीरोइन ! यह सब आपके मुँह से सुनकर मुझ तो आश्चर्य होता है।"

"मै भुक्त-भोगिनी हूँ—मिस्टर ! तभी तो तुमसे कह रही हूँ। मेरा खून इस लाइन के हरामियो ने चस्के से चखा है।"

नन्दकुमार की आँखो मे ऐसा भाव चमका जिसका अर्थ था कि रोज़ नशे में बहक रही है। मिस मरियम रोज ने तेजी से ताडा। वह तडप उठी—

"तुझे विश्वास नही मेरी बातो का ? तुम सोचता है मिस रोज नशे मे है ? मिस रोज—मिस्टर ! (क्या है तुम्हारा नेक नाम ?) शराब इसलिये पीती है कि भूल जाय कि उसका खून-गर्मागर्म पिया जा चुका है—घटाघट —जो ज़िन्दगी मे फिर हासिल होनेवाला नही है।"

नन्दकुमार ने देखा मिस रोज रो रही थी। "मिस्टर...! अच्छी औरत होने के सबब मै ऐसी चूस ली गयी कि फिलहाल न अच्छी रही न औरत। तुम जरा मेरी हथेली की रेखाएँ तो देखो। मेरे भाग्य में क्या बदा है ? किसी पुरुष से सुख है भी मेरी किस्मत में ?"

"है न।" बिना हाथ देखे ही नन्दकुमार ने सुनाया "मित्रवर जगरूपजी से।"

"पथरा है सुख इस हरामी से। यह तो औरत की कमाई खाने-वाला है। चाहता है कि मै इसे खिलाऊँ भी, सुलाऊँ भी। भले जैसे। यह मेरा आशिक नही, माशूक बनकर रहना चाहता है। इस जगरूप-तुम्हारे यार ने—मत सहल इसे जानो—पिछले तीन-ही-चार वर्षो में फिल्म-लाइन की पचीसियो औरतो को लूटे है—(यही वर्ड है) उनके तन को, धन को।"

"आप बडी साफ-गो है। आपकी बाते सुनकर मुझ-जैसे बबई मे नये आदमी को अपार आश्चर्य होता है। आपका यह बँगला, यह ठाट-बाट, यह प्रदर्शन! और अन्दर झाँकिये तो यह नारकीय असन्तोष! कृपाकर इतनी चर्चा आपने न चलायी होती तो मुझे तो यही विश्वास रहता है कि जो कुछ सम्मुख है वह स्वर्ग-ही-स्वर्ग है और आनन्द-ही-आनन्द। आपकी बातो ने फिल्म-लाइन के प्रति मेरे मन में भय उत्पन्न...।"

"भय? भय-ही-भय है। धरम का, करम का, शरम का। लेकिन रुपये है। पुष्कल। सो, आदमी है कि शैतान से भी बाजी लेने को तैयार है।"

"आप जब इतना ज्ञान रखती है," नन्दकुमार ने जैसे साहस बटोर कर पूछा "तब इस सर्वनाशी-धन्धे से अलग क्यो नही हो जाती.. ?"

"यही हो सकता मिस्टर..." रोज़ ने स-खेद सुनाया, "तो क्या कहने थे। यह हमारी बद-तकदीरी है कि हम जिसे बुरा मानते है उसीके हाथो रोटी खाते है। आराम की आमदनी की भी लत लग जाती है ऐसी कि लत नही जाती भले इज्ज़त, हुर्मत, आफियत चली जाय। अक्सर मै बडे सोच मे पड जाती हूँ कि कल जब यह देह ज़रा भी चमकीली नही रह जायगी तब क्या होगा मेरा? आज ही नयी, नकद, छोकरियो के सामने मेरा चेहरा उधार नजर आता है।"

"समय रहते ही अच्छी फिल्म-नटियो को किसी भले आदमी का

पल्ला पकड लेना ही होगा ।"

"आदमी और भला ? मुझे तो तुम्ही एक भले आदमी नजर आ रहे हो । इसलिये कि मै तुम्हारें बारे मे कुछ नही जानती । ज्योही जानूँगी—जियादा जानने से जी हिचकेगा ।"

"मै यह जानना चाहता हूँ" नन्दकुमार ने गभीरता से पूछा, "आप मेरे मित्र से नाराज क्यो रहती है ?"

"वह आदमी ही नही है..."

"उसके हाथ-पाँव-मुँह-नाक-कान देखकर आदमी छोडकर और उसको कहा क्या जा सकता है ?'

"ठीक है, लेकिन उसकी हरकते देखकर तो जानवर भी कहने में कम मालूम पडता है ।"

"आप जगरूप पर बहुत नाराज मालूम पडती है ।"

"मै एक वाकया बतलाकर तुम्हे बतलाऊँ कि मै उसको जानवर क्यो कहती हूँ । मुझसे पहले बम्बई की बीसियो बद-बीवियो से इसके लगाव रह चुके है । मै मालाबार हिल का किस्सा सुनाती हूँ । तब जगरूप उसी लोकैलिटी में रहता था—मशहूर तवायफ मलिका के नज़दीक । इसका लगाव मलिका से भी था । वह उसको रुपये देती थी, यह उसके पाँव दबाता था । एक दिन उसका इन्तजार करते-करते थक कर वजह समझने के लिए जब मलिका इसकी फ्लैट में पहुँची तब हजरत किसी और ही औरत के साथ धन्धा चला रहे थे । इस पर मलिका ने वो हगामा उठाया कि आधीरात के वक्त सारा मालाबार हिल हिल उठा । जगरूप और उसकी सेज-सगिनी को पचासो जूतियाँ मलिका ने लगायी । जगरूप के बेड-रूम का सामान उसने सडक पर फेक दिया था । दूसरे ही दिन यह आदमी मालाबार हिल वाले फ्लैट से निकाला, उस लोकैलिटी से भगा दिया गया था । तब मैने इसे अपने घर मे पनाह दी थी । न देती, तो उस वक़्त इसको बबई में शायद ही

जगह मिलती।"

"सब कुछ जानकर आपने फिर जगरूप को पनाह दी ही क्यो ?"

"मैने सोचा इसने बीसियो औरते बर्बाद की है तो मेरा भी सामना करे...।"

"आप इस फेर में न पडती तो...शायद...।"

"ना ! मुझे इस आदमी की ज़रूरत है। नकेल हाथ में रहे तो यह आदमी मुझे हर पिक्चर मे हीरोइन बना सकता है, मोटी पगार दिला सकता है, मेरी पब्लिसिटी करा सकता है। मैं इसे मार सकती हूँ, यह मुझे छू तक नही सकता, क्योकि इसकी खास कमजोरी मैं जान गयी हूँ .."

"कमाल...! वह क्या ?"

"यह भली औरत का कसाई है यानी बुरी औरत का बकरा है। औरत जरा भी भली हुई नही कि जगरूप ने उसकी जान ली...।"

"सो...आप .।"

"मिस्टर, मै बुरी औरत हूँ और इसने भी धोके दे-देकर मुझे चैलेज दे रखा है। हमारी बाज़ी लडी-जैसी है। यह मुझे हडप जाना चाहता है। लेकिन मै वैसी नही, जैसियो को हडपने का जगरूप आदी है। पर, तुमने मेरा हाथ तो देखा ही नही—मै खास तरह से यह जानना चाहती हूँ कि मेरी उम्र कितनी है ?"

अब मिस मरियम रोज की हथेली की रेखाएँ देखता हुआ नन्द-कुमार बोला—"उम्र की तरफ से तो आप फिक्र करे ही नही। साठ साल से पहले आपके सर मे दर्द तक नही होना चाहिए।"

"यह जानकर खुशी हुई कि मै सहज मरनेवाली नही हूँ। काश, जगरूप भी इस जानकारी से वाकिफ होता। लेकिन सर में दर्द तो ज़रा भी कडी दारू पीने से अक्सर मुझे होता रहता है—ज्योतिष तुम्हारा यो हीं मालूम पडता है।"

"जब ज्योतिष तो कहे कि सर में दर्द तक न होगा, पर, आदमी दीवार से टकराकर सर मे दर्द मोल ले, तो इसमें ज्योतिष की झुठाई बिलकुल नही और आदमी की हिमाकत ही सरासर है।"

"मै एक बात और पूछना चाहती हूँ।"

"जरूर..."

"मगर, कान में कहूँगी।"

नन्दकुमार ने अपना बाँया कान मिस-रोज की तरफ किया। कान की तरफ मुँह करने में रोज के अधर जरूर नन्दकुमार के गाल से रगड गए होगे, क्योकि वह सिहर-सा उठा। मिस रोज ने फुसफुसाकर कहा—

"कल ज़रा जगरूप का हाथ देखकर मुझे यह बतलाना कि उसकी उम्र कितनी है? मुझे ही बतलाना—उसे नही। बतलाओगे?"

रोज़ ने अपने होठ फिर नन्दकुमार के गाल से सटाये। नन्दकुमार ने मत्र-मुग्ध मंजूर किया—

"हाँ...।"

इसी समय जगरूप कमरे में—नीद से लडखडाता हुआ उनकी तरफ आता नज़र आया। उसने नन्दकुमार से अपनापन भरे उपालभ के स्वर मे कहा—

"अरे तुम भी किसके फेर में फँसे! अभी तक इनकी हस्त-रेखाएँ ही देखी जा रही है! सोने का वक्त हुआ। मुझे तो तभी नीद आ गयी थी।"

"तो आप बाखुशी सोएँ।" मिस रोज़ ने जगरूप से नीरस कहा, "मै हाथ की रेखाएँ दिखलाती हूँ या क्या करती हूँ इस फेर मे कोई पड़े ही क्यो?"

"मैने तुम से तो कुछ कहा नही? मै तो अपने मित्र से बाते कर रहा हूँ। इस बीच मे तुम अपनी टाँग न अड़ाओ, रहम करो..।"

"किस पर ?"

"अपने आप पर। और किस पर...?"

"तेरे मरे बाप पर नही ? हरामी !"

"नन्दकुमार !" उत्तेजित जगरूप ने रूक्ष सुनाया "तुम इसी कमरे में सोओ। दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लो। मै इस बदजुबान औरत की ज़ुबान न खीच लूँ तो मेरा नाम नही...।"

वह मिस रोज को ड्राइग-रूम की तरफ धकेल ले चला.

"सूअर ! सबके सामने बदजुबानी ! साली ! कमीनी !"

भयभीत नन्दकुमार ने दरवाज़ा बन्द करते-करते मिस रोज की तेज आवाज़ सुनी · "कमीने का बच्चा ! सूअर का बच्चा !"

इसके बाद ड्राइग-रूम में शायद दोनो दोनो को मारपीट रहे थे। नन्दकुमार को ऐसा ही लगा। भय से सिकुडकर वह जगरूप के नरम बेड पर सो गया।"

सुबह पहले नन्दकुमार ही की नीद खुली। धीरे से द्वार खोलकर उसने ड्राइग-रूम में जो झाँककर देखा तो सहसा अपनी आँखो पर उसे विश्वास नही हुआ। मिस रोज़ और जगरूप परम-प्रेमियो की तरह लिपटे हुए एक ही सोफे पर बेखबर सो रहे थे।

रोज़ या मिस मरियम रोज लेखक नन्दकुमार की प्रेयसी नही थी। अपनी पत्नी तो वह भदैनी, काशी मे, दु खो मे छोड़ आया था। फिर भी, जगरूप की गोद में उस औरत को देख जिसने अभी पिछली रात उसके गाल से अधर लगाये थे, मन-ही-मन नन्दकुमार जल-सुलग-सा गया। औरत की सूरत दरमियान आते ही मित्र की मुरव्वत उसके मन से उड़ने लगी। "ऐक्ट्रेस किसकी बीवी ?" उसने तर्क किया। जगरूप जिस तरह मिस रोज़ को फँसा सकता है, उसी तरह क्या वह भी डोरे डालने, भाग्य आजमाने के लिये आज़ाद नही है ? मिस रोज़ राज़ी हो जायँ—नन्दकुमार ललचाया—तो क़िस्मत ही खुल जाय।

दारिद्रय ही दूर हो जाय। फिल्म-लाइन की उन्नति का राज-मार्ग ही प्रशस्त हो जाय।

१० बजे जगरूप जब मिस रोज़ के साथ शूटिंग के लिये स्टूडियो जाने लिये गैराज से मोटर निकालने चला तो उसने नन्दकुमार को भी चलने के लिये तैयार पाया।

"मगर, आज तुम न चलते...तो .।" जगरूप ने लेखक से कहा।

"मगर कल ही मेरे चलने की बात तुम्ही ने तय की थी। आज क्या हो गया कि राय बदली जा रही है ? सो भी बिना नोटिस...।"

"वह नही चाहती कि तुम आज हमारे साथ चलो।"

"कौन नही चाहती ?"

"मिस रोज...।"

"मिस रोज़ से मेरा वास्ता ?" जरा चमककर नन्दकुमार ने सुनाया—"मैं जगरूप के घर पर मेहमान हूँ।"

"नो मिस्टर।" बीच ही में मिस रोज टपकी "यह झूठ कहता है कि मै नही चाहती। तुम चलो साथ। तुम मेरे सर-आँखो पर चलो। यही अफीम खाता है। बेशक, तुम चलो।"

इसके बाद स्टूडियो मे, सारी शूटिंग में मिस रोज ने नन्दकुमार पर ऐसा खास ध्यान रखा जिससे जगरूप चिढता रहा। शूटिंग के बाद भी, सिनेमा देखने जाती हुई, ड्राइव करते जगरूप के पास न बैठकर उसने पसन्द किया पीछे की सीट पर नन्दकुमार के साथ बैठना। यह बात भी जगरूप के मन में सारी राह खटकती रही।

बाबे सेटर स्टेशन के पास उन दिनो एक मदिरालय, होटल था : इम्प्रेस-बार। स्टूडियो या बम्बई से सान्ताक्रूज लौटते हुए जगरूप—प्रायः हमेशा—इम्प्रेस-बार में मोटर रोक कर जाकर, एकाध-पेग शराब खड़े-ही-खड़े पीता और भोजन के समय के लिये बीयर की दो बोतलो की फर्मायश कर मोटर मे आ बैठता। थोडी देर बाद होटल का नौकर या

ब्वाय बोतले मोटर मे रख जाता था। ऐसा प्राय: रोज ही होता था। मगर, कल ही आये नन्दकुमार को इस नित्य-नेम का पता नही था। जगरूप जब होटल के सामने गाड़ी खडी कर बार मे घुसा, उसी वक्त मिस रोज ने आधे-मज़ाक की मुद्रा से नन्दकुमार से कहा—"तुम्हे भी कुछ पीना हो, बीयर वगैरह, तो मँगा ली जाय। क्यो ?" "बीयर ?" मज़ाक ही के मूड में नाक सिकोड़कर नन्दकुमार ने सुनाया "बीयर मे भी कही नशा होता है ? बीयर ही पीना हो, तो बिना नौ बोतलो के मेरा मन प्रसन्न होनेवाला नही। सो, माफी चाहता हूँ।"

इसी समय होटल का ब्वाय रोज़मर्रा की दो बोतले लेकर आया।

"ब्वाय !" मिस रोज़ ने तपाक से सुनाया। (तब तक जगरूप गाडी की स्टियरिंग पर आ चुका था) "नौ बोतल और। समझा ? नाइन मोर बाटल्स—ब्रिग शार्प !"

"नौ बोतल ? बीयर ? कौन पीएगा ?" साश्चर्य जागरूप ने पूछा।

"तेरा फ्रेन्ड—मिस्टर नन्दकुमार।"

जगरूप के हाथ मे मोटर जैसे हिली, लेकिन तुरन्त ही वह सावधान हुआ।

"मिस्टर !" मिस रोज ने चलती मोटर में नन्दकुमार से कहा, "तुम चाहो तो गाडी ही मे पीना शुरू कर सकते हो। डर नही है किसी साले की !"

"तुम एक्सिडेंट कराओगी डियरी।" जगरूप ने मोटर सँभालते हुए सुनाया और फिर नन्दकुमार से जरा रूखा पडा "तुमने भी यार ! कहाँ अपनी प्यास टकराई। दस-बारह रुपयो की चपत बे-सबब।"

"रुपये इनके मै दूँगी।" जगरूप को पिड़काने के लिये रोज़ नें सुनाया।

"पीऊँगा सारी-की-सारी मै...।" नन्दकुमार ने मित्रता का सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हक हथियाया "और याद रहे ! नौ बोतलो मे से बीयर की

एक बूँद तो बडी वस्तु एक लेबिल भी उखाड कर आप लोगो को बन्दा देनेवाला नही है।"

"रही।" रोज ने सुनाया "मुझे तो बीयर चाहिये नही। तुम बीयर ही क्यो बाटली तक गडप जाओ। मै बोलूँगी तब, जब कोई अपने आपे के बाहर होगा। या नौ बोतलो में से एक घूँट भी छोड देगा। तब मै अट्ठारह बोतलो के दाम—ये मिस्टर।" रोज नन्दकुमार का कान पकडती हुई बोली, "मै कान पकडकर वसूल कर लूँगी।"

"मै कहता हूँ नन्दकुमार का सारा बोरिया-बँधना बेचने पर भी १८ बोतल बीयर के पैसे हर्गिज नही खडे हो सकते। ऐसी बाज़ी लगाकर तुमने गधी की अक्ल की नुमायिश की है।"

"गधा मै भी तुझे कह सकती हूँ" ताबडतोड मिस रोज ने सुनाया "पर, तुझे गधा कहकर मै शरीफ गधे का अपमान नही करना चाहती।"

जगरूप की इच्छा हुई कि झोटा पकडकर उस कँटीली रोज की खोपडी अपनी ब्यूक गाडी के स्टियरिंग चक्र से टकरा दे। पर, वह ऐसा करने मे असमर्थ था। मोटर की चाल मे पुन 'जर्क'-सा, असावधान धक्के सा लगा।

"तू एक्सिडेन्ट करेगा।"

"एक्सिडेन्ट हुआ भी तो तू इस तरह मरनेवाली नही है। भले मै ही मारा जाऊँ। तू घबराती क्यो है, हस्त-रेखा-विशारद की सेवा में बैठकर ..?"

"कौन हरामी मरा, कौन जीता, इस बात के लिये घबराय मेरी बला। मुझे तो फिक्र इस मोटर गाड़ी की है जिसमें मेरी कमाई के भी कम रुपये नही लगे हुए है।"

"मोटर की फिक्र है, देखते हो नन्दकुमार! मगर, मेरी जान की कोई कीमत नही।"

"जो इन्सान होकर भी हैवान हो, उसकी कीमत जूती की नोक

बराबर भी मेरी निगाहो में नही है। कोई मुझे भॉवर घुमाकर, ब्याह रचा कर नही लाया है कि मै वफादार सतियो की याद करूँ। चाह है, तो ठीक है। नही है, तो काफी है ..।"

"बे-वफा...।"

"आहा! वफादार के इस फरजन्द का मुँह तो देखो! आधी बबई की बदकिस्मत औरते पूरी तरह जानती है कि श्री जगरूपजी कैसे बनारसी-वफादार है।"

"आप बार-बार सारे बनारसियो को एक ही झाडू से जब फट-कारती है तब मुझे बडा ताज्जुब होता है।" इस बार नन्दकुमार ने भी स्वर लगाया।

"मगर जनाब" मिस रोज ने नन्दकुमार से कहा। "तुम उसका हैट अपने सर पर ओढो ही क्यो?"

खैर, सान्ताक्रूज पहुँचकर बहुत ही विकृत-मूड या भाव में तीनो इला-विला मे मोटर से उतरे। कपडे बदलते-बदलते जगरूप ने देखा कि नन्दकुमार एक बोतल के बाद दूसरी घटाघट पीकर गुसलखाने की तरफ बढा। जगरूप जानता था कि धीरे-धीरे वह नवो बोतले पी जायगा। वह ऐसा होने देना नही चाहता था। वह चाहता था कि पीने के मामले मे नन्दकुमार के पीछे न रहे।

"ऐसा तो क्या!" गुसलखाने से निकलते ही जगरूप ने नन्दकुमार से आजिजी की आवाज मे कहा "यार साकी हो और यार प्यासा रहे?"

तब तक नन्दकुमार भी बीयर चढ जाने से उदार हो गया था। उसने मित्र का मतलब ताडते हुए स्वीकृति के स्वर मे सुनाया—"मै तो मज़ाक कर रहा था। भला नौ बोतल पीकर मैं क्या पाऊँगा?' एक बोतल उसने जगरूप के हवाले किया जिसे वह एक ही घूँट मे पी गया और एक का और आग्रह करने लगा। नन्दकुमार ने एक बोतल और उसके आगे बढ़ाया। इसी समय रोज़ भी हाथ-मुँह धोकर गुसलखाने

के बाहर निकली—"मैं सब देख रही थी कि कैसे नौ बोतले तू खत्म कर रहा था—अट्ठारह के पैसे मै वसूल कर लूँगी।—जी, जनाब !"

नन्दकुमार ने एक बोतल बीयर खोल, गिलास भर कर, मिस रोज को भी दिया। बडे ड्राइग-रूम मे बैठकर तीनो पीने लगे। रोज़ सोफे पर थी, छोटे टेबुल पर गिलास निकट। वह अदा से अध-लेटी हुई थी। जगरूप चार कदम पर एक मझोले टेबुल के पास गिलास, सिगरेट-टिन माचिस और ऐश-ट्रे के साथ बैठा था। नन्दकुमार निकट ही खडा सिगरेट-टिन की तरफ ललचायी नजरो से देख रहा था। आखिर एक निकाल, ओठो में दबा, दियासलाई की डिब्बी से उसने माचिस निकाली। लेकिन वह सलाई जली हुई थी क्योकि जगरूप की आदत सिगरेट जलाने के बाद सलाई बुझाकर डिब्बी मे पुन: रख देने की। जगरूप की इस हैबिट का विरोध करने के लिए नन्दकुमार ने वह सलाई फर्श के गालीचे पर फेक दी।

"अरे यार ऐश-ट्रे मे डालते !" कह कर फर्श से तीली उठाकर जगरूप ने ऐश-ट्रे मे डाल दी। तबतक नन्दकुमार ने दूसरी तीली डिब्बी से बाहर खीचली थी। लेकिन भवितव्य ! वह भी पूर्व-प्रयोगित—जली तीली निकली ! इस बार और भी तेज झटके से जली सलाई नन्दकुमार ने गालीचे पर फेकी।

"अरे यार !" जगरूप ने पुन नन्दकुमार द्वारा झूठी सलाई गैर-जिम्मेदारी से गालीचे पर फेके जाने का स्निग्ध-विरोध किया और पुन. तीली नीचे से उठकर ऐश-ट्रे मे उसने डाली। यह सब शायद मिस रोज को सुहाया नही।

"ओहो !" ताने से औरत ने सुनाया "ऐसा मैने किया होता—तेरी तबियत के खिलाफ काम दो-दो बार, तो तू नाक-भौ चढाकर मुझे गालियाँ दे चलता। लेकिन इसने जब किया—लिट्टी वाले के भाई गण्डेरीवाले ने—तब तू कुछ नही बोला। हरामी ! मै ही तेरे लिए

अनाथ पडी हुई हूँ ?'

"बेशक मै इनसे कुछ नही बोल सकता—यह कुछ भी गलती क्यो न करे। यह मेरे मित्र है, मेहमान है . ।"

"तो यह मेरे भी दुश्मन नही है, दोस्त और मेहमान ही है। मै इन्हे बोसे तक दे सकती हूँ।"

"क्या ?"

"हाँ नही तो क्या ?"

"नीच कही की...।"

"नीच की औलाद...।"

"कमीनी, कुत्ती, मज़दूरन की लडकी...।"

"मजदूरन की लडकी तेरी बहन से तो बहतर है जो बनारस मे खसम करके निकल गयी थी !"

अब जैसे बात जगरूप के बर्दाश्त बाहर पहुँच गयी। वैसे मनचली औरतो की गालियो का वह शौकीन था लेकिन परिचित, मित्र, देसवासी नन्दकुमार के सामने वही चीजे विषाक्त, अपमानमयी हो उठी। वह तडपकर मिस रोज के गले पर झपटा। उधर वह भी असावधान नही थी। बीयर का गिलास जगरूप के मुंह पर खीचकर उसने मारा। जगरूप ने भी रोज का गला धर दबाया। बीच-बचाव मे नन्दकुमार भी धक्को और खरोचो से बच न सका। वह डर-जैसा गया। तुरन्त, भागकर, उसने जगरूप के बेड-रूम में शरण ली और तेजी से दरवाजे अन्दर से बन्द कर लिये। उन्हे लडते ही झगडते छोड, लेहाफ ओढकर नन्दकुमार खुर्राटे भरने लगा। सुबह उसकी नीद जरा देर से खुली। रात की घटनाएँ स्मरण कर दरवाज़े खोलने मे वह अभी भी हिचक ही रहा था। लेकिन दरवाज़े खोल सावधानी से ड्राइंग-रूम में झाँकते ही उसने पहले ही दिन की तरह मिस रोज और जगरूप को पूर्ण तल्लीनता से लिपटे सम्पूर्ण निद्रा-मग्न पाया। और सहसा उसे अपनी

आँखो पर विश्वास हुआ नही। फिर भी, वाकया सच ही नही चौडे में, आँखो के आगे था। कैसा विचित्र स्वभाव मिस रोज का ! नन्दकुमार ने सोचा, कैसा विचित्र स्वभाव जगरूप का ! इन्सान नही, दोनो ही बिल्ली और बिल्ले-जैसे उसे लगे—मारे कोलाहल के सात मुहल्ला मुखरित करने के बाद सभोग-स्वाद लेने के शौकीन। छिः ! क्या ऐसी औरत किसी सहृदय नागरिक को पसन्द आ सकती है ? हर्गिज नही। इसे तो कोई विकृत-विलासी ही—मगर, कैसी श्यामा, अभिरामा, नमकीन, चटपटी परी है मिस मरियम रोज कि न तो इसे चाहा जा सकता है, न बिना चाहे छोड़ा ही।

: २४ :

एक ही घर मे दो नौजवान एक नव-युवती हो, और तीनो ही मुक्त-मिजाजी-पियक्कड हो, तो (सौ-मे-सौ बार) उस औरत को दोनो ही तरुण ललचायी नज़रो से देखेगे। यह पाप भले ही हो, पर अस्वाभाविक कदापि नही है। मतलब कि मदिरा के मद मे मदिरेक्षणी किसी को भी महामोहक ही मालूम पड सकती है। फिर यदि गरीब लेखक नन्दकुमार मित्र जगरूप की छत के नीचे रहकर, उसीकी शराब पीकर, उसीकी चहेती को चाहने लगा हो तो इसमे अस्वाभाविक ही क्या ? और ये मनचली औरते एक के गले में बाँहे डालकर अनेक की तरफ इस निमन्त्रण-अदा से देखती है कि "यह उसके बाम का जीना है आये जिसका जी चाहे।" मिस रोज़ की नज़र मे नन्दकुमार तो बबई के विलासियों के मुकाबिले में भिखारी से भी गया-बीता था लेकिन जवान था वह—बेशक—ऐसा, जैसा क्या कोई करोड़पति विलासी या

फिलम-डाइरेक्टर शराबी होगा। बस—इतना चारा मिस रोज़ के लिये बहुत था। वह चाहने नही, तो नन्दकुमार के दिल से दिल्लगी तो जरूर करने लगी। औरत-पसन्द-मर्द की नज़र मे जिस तरह किसी भी औरत मे पसन्दकाबिल कुछ-न-कुछ निकल ही आता है, वैसेही, मर्द-पसन्द-औरत भी किसी माकूल मर्द मे अपने योग्य कुछ-न-कुछ रस पा ही जाती है। जगरूप की उपस्थिति में ही मिस रोज़ नन्दकुमार पर आकर्षण बरसाती और वह पी जाता। पी जाता मुस्कराता हुआ। सारी कसर जगरूप लेखक नन्दकुमार से यो निकालता कि उसे फिल्म में कहानी लिखने से बराबर दूर रखता इतना ही नही, जगरूप—ऊपर से मित्रता का सारा नाटक करते हुए भी—यह नही चाहता था कि नन्दकुमार भी आजाद आदमी की तरह चार पैसे कमाता हुआ अपने कदमो पर खडा हो जाय। जैसा कि उसने शुरू मे सोचा और मिस रोज़ से कहा भी था, वह चाहता था कि नन्दकुमार 'फेडप' होकर, ऊबकर, नकियाकर बबई से भाग ही जाय। जगरूप के इस प्रत्यक्ष-रूप ने अप्रत्यक्ष-रूप से नन्दकुमार को मित्र से अमित्र स्थान पर बरबस फेक दिया था। कम-से-कम मिस रोज का विश्वास उसने जगरूप के विरोध ही पर पाया था। रोज ने नन्दकुमार से दसियो बार इशारे किये कि वह जगरूप की फिक्र छोडकर उससे प्रेम करे, पर नन्दकुमार सरासर अनैतिक-रग पकडने में कदराता था। इसी बीच दो दिनो के लिये जगरूप को बबई से बाहर जाने का मौका आया—अपनी फिलम की आउट डोर शूटिग की जगह देखने के लिये। जिस दिन तीसरे पहर उसे जाना था उसी दिन दोपहर को मिस रोज़ ने नन्दकुमार के सामने जगरूप से कहा—

"तू तो बाहर जा रहा है, मुझे अकेली सोने मे डर लगेगा।"

"डर किस बात का ?" जगरूप ने कहा—"नौकर है, नन्दकुमार है, फिर भी डर।"

"नहीं। अकेले कमरे मे मुझे डर लगेगा। या तो तेरा दोस्त मेरे

कमरे मे सोये या खुद मै वही सोऊँगी जहाँ वह सोता है।"

"ठीक है।" जगरूप ने मजूर कर लिया। फिर नन्दकुमार की तरफ मुडकर उसकी सूरत का उतार-चढाव भाँपने लगा।

"मै तो इनके कमरे में सोने से रहा!" नन्दकुमार ने सुनाया, "हाँ डरती है, तो यही मेरे कमरे मे सो सकती है। मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

मिस रोज और नन्दकुमार जगरूप को छोड़ने के लिये ग्रैण्टरोड स्टेशन तो गये, पर ट्रेन आने के पहले ही मिस रोज नन्दकुमार को लेकर सिनेमा के लिये चली गयी थी।

"एक बार यह हरामी मुझे छोडने आया था, इसी ग्रैन्टरोड स्टेशन पर" मिस रोज़ ने अपनाव से नन्दकुमार को सुनाया "और फौरन ही चला गया था—एक एक्ट्रेस को साथ लेकर--स्टूडियो मे शूटिग का बहाना बनाकर। मै भी कब छोडनेवाली। आज साले को वही छोड तेरे साथ चली ही आयी।"

सिनेमा की गुदगुदी-सीट पर अँधेरे मे नन्दकुमार के गाल से ओठ छुआ कर मिस रोज ने कहा—"लोग यही समझते होगे कि हम लोग हजबैण्ड और वाइफ है।"

शो के बाद बबई से सान्ताक्रूज की राह में बाम्बे सेन्टर स्टेशन के पास मोटर रोककर मिस रोज ने ब्याय से बीयर की तीन बोतले मँगायी। वर्ली से आगे जब ब्यूक आयी तब मिस रोज ने मोटर के अन्दर से गिलास और बोतल खोलने की चाबी निकालकर नन्दकुमार को दिया—"बोतल खोलो मिस्टर और पीओ!"

बोतल खोल गिलास में गाजवाली बीयर उडेल कर नन्दकुमार ने मिस रोज की तरफ बढाया। वह मोटर चला रही थी—"पहले तुम्हीं शुरू करो, फिर मुझे देना।"

दो बोतल बीयर चलती गाड़ी में ही दोनो पी गये। तब मिस रोज

ने नन्दकुमार से पुन इशारे की बात की—"ये बोतले सडक पर तोड दो ताकि आनेवाली मोटरे पचर हो और उन पर गुज़रने वाले कहे कि इधर से मस्त लवर लोग गये है।"

फिर भी, सारी राह दोनो सयम मे रहे। बँगले पर आकर सयम ही से साथ-साथ दोनो ने मासादिकलितम्-भोजन भी किया। फिर एक ही कमरे मे अलग बिस्तरो पर दोनो सो रहे। कोई और पुरुष होता उसी स्थिति मे तो औरत के इशारे पर्याप्त थे उसे पथ-भ्रष्ट करने को, पर, नन्दकुमार मन-मसोसकर रह गया। उधर मिस रोज के लिये यह नया अनुभव था कि इतनी खुशामदो पर भी, नशे पर भी, अलस रात मे भी, एकान्त मे भी, बिलकुल निकट होकर भी कोई मर्द बिलकुल दूर रह जाय। कोई और मौका होता तो सभवत वह खुद मर्द पर हावी होने को हुमकती, पर, नन्दकुमार के गभीर सयम के सामने स्वय को भोगवती प्रकट करने का साहस उसे हुआ नही। और मन से बिगडकर भी दोनो तन से सुथरे—नीद मे निमग्न हो गये। इस घटना ने जैसे वासना को प्रेम का मधुर स्वाद चखा दिया। रोज़ी के मन मे नन्दकुमार के व्यक्तित्व के लिये आदर-भाव प्रभावपूर्ण ढग से जागरित हो उठा। लेकिन दो दिनो बाद जब जगरूप आया तो उसे यही शक हुआ कि नन्दकुमार का व्यवहार उसकी चहेती से जरूर बद रहा होगा। रोज़ को नन्दकुमार की तरफ अधिक आकर्षित देखकर भी वह इसी निर्णय पर पहुँचा। और घृणा और द्वेष और जलन से भर गया। दोपहर के खाने पर मिस रोज जगरूप की तरफ बिलकुल ध्यान न रख नन्दकुमार ही की मनुहार में लगी रही। इससे जगरूप की नाक-भौ बिगडने लगी—नन्दकुमार ने मार्क किया। फलत जल्द-जल्द खाकर वह उठ गया और भोजन-घर बाहर चला गया।

"अजी सेठ साब!" मिस रोज़ ने नन्दकुमार को सुनाया, "आप चले कहाँ गये? अभी खीर तो खाने ही को है...।"

"बाई, अब तो मैने हाथ धो लिये—नो, थैंक्स !"

जगरूप ने ध्यान से मार्क किया कि मिस रोज की रुझान नन्दकुमार की तरफ तेज है। उसका मुँह सहसा सूज-जैसा गया। पर, वह बोल कुछ सका नही। लेकिन रात्रि-भोजन के बीच में जब मिस रोज ने बावर्ची को बुलाकर तुरन्त खीर पकाने का आर्डर दिया तब जगरूप के सहन की सीमा हो गयी। वह मुँह बिगाडकर मेहमान मित्र की तरफ यो देखने लगा मानो खून करना चाहता हो। उसने देखा नन्दकुमार तेजी से खाना खा रहा था।

"अजी नन्दकुमार !" जगरूप ने रूक्ष-कठ से सुनाया—"मैने कहा आहिस्ता-आहिस्ता खाओ, नही तो खीर खाने से हाथ धोना पडेगा।"

खाना रोक हाथ धोने के लिये पानी भरा गिलास उठाता हुआ नन्दकुमार सतेज बोला—

"मुझे खाने से हाथ धोना अधिक पसद है।"

ताबडतोड भोजन करना बन्द कर पानी का गिलास उठाकर मिस रोज ने भी नन्दकुमार ही के लहजे मे दोहराया—"मुझे भी खाने से हाथ धोना ज्यादा पसन्द है।"

"मै जानता था कि तू धोका देगी।" चिढकर जगरूप ने मिस रोज को सुनाया।

"धोकेबाज़ को हमेशा धोके ही के सपने आते है। मेरी-तेरी वफादारी की सगाई है कबसे ? मै तेरी लुगाई नही, मिसिज नही, वाइफ नही। तू बम्भन बनारसी, मै क्रिश्चियन। क्या समझता है तू खुद को ? नन्दकुमार को तू क्या समझता है ? वह जेन्टिलमैन है, तू मैन ही नही है। उसके सीने मे गरम दिल है, जब कि तेरे सीने में पथरा है—पथरा, कड़ा, कोल्ड।"

इस दुर्घटना के बाद नन्दकुमार का जी जगरूप के वातावरण से बिलकुल 'उकंठ' गया। उस दिन वह नित्य-नियमानुसार मित्र के साथ

स्टूडियो नही गया। उलटे, दोनो के जाते ही, अपना सामान समेटकर एक-दूसरे दोस्त के यहाँ दादर मे चला गया।

: २५ :

असिल मे किसी फिल्म-कम्पनी मे जाकर यह कहने की हिम्मत नन्दकुमार की नही होती थी कि वह भी स्टोरी लिख सकता है, टाइटिले तैयार कर सकता है। वह अपने को इतना अनोखा-कलाकार समझता था कि चाहता था कि दुनिया खुद होकर जाने कि वह कसा कलाकार है। षर, दुनिया ऐसी लापरवाह कि नन्दकुमार जैसे बावनगण्डे गुणी इस मे नगण्य बने ठोकरें खाते है। तलवे रगडते है पेट के लिये दर-दर। जगरूप ने नन्दकुमार का परिचय अपनी ओर से भले ही किसी फिल्म-बॉस से न कराया हो, पर उसके साथ स्टूडियो मे नन्दकुमार को देखा बीसियो विशेष लोगो ने था। जगरूप के बँगले पर कइयो की तो उसने खातिरदारियाँ की थी। 'उन्ही परिचयो के बल पर उसने भाग्य आजमाने की कोशिश की और पहले 'दलजीत फिल्म क०' में पहुँचा जिसके डाइरेक्टर-मालिक और एक्ट्रेस-मालकिन को वह बखूबी जानता था। दलजीत कम्पनी उन दिनो की प्रसिद्ध फिल्म कम्पनियो में थी। एक्ट्रेस नाज़ बानू का बडा नाम था जिसके पीछे डाइरेक्टर भोगीलाल भी सरनाम था।

दलजीत कम्पनी के प्रतीक्षा-कक्ष मे जब नन्दकुमार पहुँचा उस वक्त तीन लेखक अपनी-अपनी कहानियाँ लिये हुए पहले ही उपस्थित थे। वक्त काटने के लिये—क्योकि डाइरेक्टर के आने मे घटे भर की देर थी—लेखक-गण बाते करने लगे।

"मै तो एक मोगल फिल्म-स्टोरी लेकर आया हूँ। जनाब का सबजेक्ट . ?"

"मेरी स्टोरी तो जनाब स्टट-पिक्चर की है।"

"मैने राजपूत पीरियड की, कास्ट्रम पिक्चर की फिल्म-कहानी निहायत दिलचस्प तैयार की है। लेकिन जनाब की कहानी क्या है ?" उसने नन्दकुमार से पूछा।

"मेरी कहानी का नाम है 'तवाबफ की जात'।"

"तवायफ की जात ?"

"तवायफ की जात ?"

"मगर, कहानी में तवायफ की जात को आपने क्या दरसाया है . ?"

"कमीनी, कमजात।" नन्दकुमार ने सुनाया।

"हा हा हा हा !" दूसरे तीनो लेखक हँस पडे। एक ने व्यग्य से पूछा—

"जनाब जानते है कि दलजीत फिल्म कपनी कैसे क़ायम हुई है ?"

"नही तो।" नन्दकुमार ने सुनाया, "दलजीत फिल्म कपनी के कायम-नाकायम होने से मेरी स्टोरी का कोई भी सम्बन्ध नही है।"

"इस कपनी को स्टोरी देना है तब तो सम्बन्ध होना ही होगा।"

"इस कपनी की आधा भागीदार तवायफ है।"

"क्या ?" चकराकर नन्दकुमार ने पूछा।

"यह तो मशहूर बात है। आपको इतना भी पता नही ! डाइरेक्टर भोगीलाल एक फिल्म कपनी की तरफ से किसी राजपूत राज मे आउट-डोर शूटिग करने गया था। वहाँ के राजा दलजीतसिह की नजर हीरोइन नाज बानू पर पड गयी थी। बीच में सौदा पटाया डाइरेक्टर भोगीलाल ने; नाज बानू की रज़ा से। साठ हजार कलदार पर नाज-बानू सत्तर साल के बूढे राजा के साथ उसके इच्छानुसार रहने को

राज़ी हो गयी। उन्ही रुपयो से, नाज बानू की साझीदारी मे भोगीलाल न दलजीत फिल्म कपनी चलायी। तवायफ बुरी हो; पर, दलजीत-फिल्म कपनी तो एक तवायफ का ही प्रसाद है।"

"मै सलाह देता हूँ" एक लेखक ने नन्दकुमार से कहा "कि जनाब ऐसी स्टोरी डाइरेक्टर भोगीलाल को हर्गिज़ न सुनायें। क्योकि नाज़ बानू बराबर भागीदार के साथ-ही-साथ रहती है।"

सयोग की बात। इसी वक्त डाइरेक्टर और नाज बानू बाहर से आये। अपने दफ्तर के आगे तीन-चार आदमियो को देखकर, सब के सलाम करने पर, वे ज़रा रुक गये।

"आप लोग स्टोरी लेकर आये है। है न ?" पूछा डाइरेक्टर ने।

"जी जनाब।" एक लेखक ने कहा।

"किस विषय पर आपकी स्टोरी है ?" उस व्यक्ति से भोगीलाल ने पूछा।

"मेरी तो जनाब स्टट पिक्चर की स्टोरी है।"

"और आपकी ?"

"मेरी सोशल फिल्म काबिल कहानी है।"

"आपकी ?"

"मैंने राजपूत इतिहास से स्टोरी बनायी है · कास्ट्यूम-पिक्चर।"

"और आपकी स्टोरी ?' अब भोगीलाल ने नन्दकुमार से पूछा—"आपको तो मैने जगरूप भाई के यहाँ कई बार देखा है। जी ?"

"नन्दकुमार हिचका।"

"लगता है नाम आपके ख़याल से उतर गया" लीला से नाज़ बानू ने लेखक की ओर ताका—"आप ने सब्जेक्ट क्या लिया है ?"

"औरत का दिल मेरी कहानी का सब्जेक्ट है। टाइटिल है तवायफ की जात।"

"ट्रेजडी है या कामेडी...?" नाज बानू ने पुन· पूछा।

"रोतड़ा पिक्चर" भोगीलाल ने सुनाया "पब्लिक कम पसन्द करती है।"

"मेरी कहानी कहानी है, न ख़ासकर ट्रेजडी, न खासकर कामेडी। साथ ही, कमी किसी वस्तु की नही है।"

"अच्छा, आप हमारे साथ आइये।" नाज़ बानू ने नन्दकुमार से भद्रतापूर्वक कहा—"थोडा वक्त तो होगा आपके पास?"

"बहुत..."

अब अन्य लेखकों की तरफ देख खेद-जैसा मुँह बनाकर भोगीलाल ने कहा—"अभी हमारे हाथ मे कई कहानियाँ है, आप लोग अपना पता छोडते जायँ—आवश्यक होते ही कपनी आपको जरूर याद करेगी।"

नन्दकुमार और नाज़ बानू पहले ही अन्दर चले गए थे। जब डाइरेक्टर भोगीलाल भी चला गया तब शेष लेखको का चेहरा ऐसा हो गया जैसे हाथ से तोते उड गये हो।"

"लक!" एक ने निराश सुनाया, बैड लक के अर्थ में।

"वह तगडा है—वही रायटर—देखने मे भी माशा अल्ला खासा बाँका जवान है। कहानी पसन्द करनेवाली है औरत। नतीजा जो होना चाहिए था हुआ...।"

"क्या हुआ नतीजा?"

"हिन्द में मज़मूँ न फैला और जूते चल गए!"

"खूब!"

"यह कैशियर क्यो अन्दर जा रहा है?"

"यही कैशियर है दलजीत फिल्म कपनी का?"

"शायद 'तवायफ की ज़ात' का जादू चल गया।"

"तवायफ़ की फिल्म कम्पनी में और चलेगा क्या?" इसी समय कैशियर के साथ नन्दकुमार बाहर निकला और तुरन्त ही

आफिस में घुस गया। थोडी देर बाद नोटो का मोटा-सा पुलिन्दा गिनता हुआ वह कैशियर के दफ्तर से बाहर आया। इसी समय दलजीत कंपनी के कार्य-कर्त्ता ने नन्दकुमार से कहा कि वह डाइरेक्टर साहब की मोटर से अपने स्थान पर लौटे, जो बाहर खडी थी।

: २६ :

जगरूप में दुर्गुण चाहे जितने भी रहे हो, पर, तब के, बबई के फिल्म-डाइरेक्टरो मे उसका खास स्थान था। वह स्वय उत्तम-श्रेणी का कैरेक्टर-एक्टर था। सो, श्रेष्ठ-लेखक होने में नन्दकुमार के बारे मे जगरूप के परिचित फिल्म-कम्पनियो के मालिको के मन में कोई सदेह नहीं हुआ। उसने जो सवाक-पिक्चर की कहानी लिखकर दी थी उसमें उस समय के वातावरण के कहानी-पारखियो को प्रसन्न करने काबिल काफी शक्ति थी, मनोरंजकता थी, कथा-बल था, चुभती, चुस्त-भाषा थी। भोगीलाल और नाज बानू के प्रसन्न होते ही दलजीत फिल्म कम्पनी का सारा स्टाफ एक बार लेखक नन्दकुमार की तरफ आकर्षित हुआ। 'तवायफ की ज़ात' दलजीत क० वालो ने—कहानी-सवाद-गानों के साथ पच्चिस-सौ रुपये मे ले ली, साथ ही, चार सौ रुपये मासिक पर रिहर्सलो में और सेट पर भाषा-शुद्धि-निरीक्षक पद पर नन्दकुमार को नियुक्त भी किया। कहाँ काशी में खाने का ठिकाना नही, कहाँ फिल्म क० में घुसते ही ढाई हजार नक्द और ऊपर से चार सौ रुपये मासिक की नौकरी! नन्दकुमार, रातोरात, मगू तेली से राजा भोज बन गया। रुपये हाथ में आते ही उसने पहले रहने की जगह की तलाश मालाबार पहाड़ पर की; फर्नीचर और भड़कीले

कपड़े बनवाये फिर अपने घरवालो को भी पुष्कल रुपये भेजे। माला-बार हिल पर, तीन बत्ती के आगे, जगह मिलते ही उसे जगरूप और मिस रोज का ध्यान आया। भुक्तभोगी होने पर भी नन्दकुमार के हृदय मे दोनो के लिये आदर था। एक दिन मित्रता से ललककर वह उसके स्थान पर गया भी। जाने पर जगरूप तो मिला नही, अलबत्ता मिस रोज अपनी टू-सीटर स्टूडीबेकर पर कही जाने को तैयार मिली—

"वेलकम मिस्टर!" प्रफुल्लित होकर उसने कहा, "साहब तो घर पर नही है।"

"पर आप तो मिल गयी यही कम खुश-नसीबी...।"

"मै जब मिसेज़ जगरूप की बात सोचती हूँ मिस्टर! जैसा मैने सुना है वह औरत देवी है। उसको धोखा देकर यह हरामी गली-गली कुत्ते की तरह सूँघता फिरता है।"

"आपको जगरूप की पत्नी पर दया आयी—यह बहुत बडी बात है।"

"दया-मया मै नही जानती मिस्टर! मेरा लालन-पालन दया-मया मे नही हुआ है। पर, सीने मे इन्सान का दिल तो है? यह अपनी औरत का नही हुआ—मेरा होता। किसी औरत का हुआ होता तो खुदा माफ करता।"

"आपने—लगता है—बीयर ली है। बीयर आपका दिलबर है।"

"मैने बीयर ली है या नही ली है, पर, बनारसी ने भंग तो ज़रूर पी होगी। डाइरेक्टर क डाइरेक्टर च... और यह जगरूप पहले तो भग पीते हैं और फिर शराब और फिर बीयर। अपने दोस्त से मिलना हो, तो मोटर में आ जा—मै स्टूडियो जा रही हूँ।"

नन्दकुमार परम प्रसन्नता से मिस रोज़ की छोटी मोटर गाडी में दाखिल हो गया। गाडी चली—बगल में सुन्दरी चक्रपाणिनी मिस रोज। नन्दकुमार के मन मे नमकीन-भावो की भरमार होने

लगी। लेकिन स्टूडियो मे पहुँचते ही जगरूप ने उसके सारे उत्साह पर—मारे राग-द्वेष के—पानी फेर दिया।

जगरूप को नन्दकुमार ने खुशी से सुनाया—मुझे दलजीत फिलम क० में रिहर्सल में काम मिल गया है। साथ ही—तुम्हे पता है कि नही ?—मेरा वह फिल्म नाटक ले लिया गया जिसके बारे में तुम्हारी बडी 'पूग्रर' राय थी।"

"नाटक ही नही फिल्म-लाइन मे तुम-जैसे लेखक के भविष्य के बारे में भी मुझे तो सदेह ही है। मुझे डर है कही फिल्म-कम्पनी में तुम मार न खा जाओ। क्योकि बोलने तक की तमीज़ तो तुमको है नही।"

जगरूप ने जब नन्दकुमार की फिल्म-लाइन मे कोई मदद नही की तब वह उससे निराश नही हुआ था। बाज़ारू से भी बदतर नारी को लेकर जब सदेह किया तब भी उसने उसे आदमीयत की लिमिट मे ही माना था, लेकिन अपने प्रयत्न से काम पाने पर भी जब बनारसी-मित्र मित्र के प्रति सहज न हो सका तब नन्दकुमार के मन में घोर निराशा हुई जगरूप के भविष्य के लिये—"जगरूप सुरा-सुन्दरी के चक्कर मे पागल तो नही हो गया ? प्राण तो नही देगा ? औरो का रस लूटने के मोह में स्वय नीरस, अनुदार, सकुचित हुआ जा रहा है।" नन्दकुमार ने भविष्य में ऐसे दोस्त से दूर ही रहने का निश्चय 'अस कुमित्र परिहरे भलाई'-मन्त्र के अनुसार किया। जगरूप का विचार अलग रख, बुद्धिमानी से, वह अपने धन्धो में लगा। उसे फिल्म-कम्पनी का वातावरण बहुत ही नूतन लगा और रमणीय। यद्यपि बनारस के दैनिक अखबार 'आज' में बबई की फिल्म-कम्पनियो के बारे में उस समय उसका जो वर्णन प्रकाशित हुआ था उसमें कोई दूसरा ही रग दर्शित था। "ये फिल्म-कम्पनियाँ" शीर्षक लेख में उसने लिखा था—

"जैसे सारी हाँडी के भात का अन्दाज एक चावल से लगाया जाता है; वैसे ही, महज एक फिल्म-कम्पनी का वर्णन पढकर 'आज' के पाठक अन्दाज लगा ले कि जियादातर फिल्म-कम्पनियाँ कैसे वातावरण में फूलने-फलने जा रही है। यहाँ एक 'देवा' फिल्म-कम्पनी है जिसके मालिक हैं सेठ भूलाभाई। भूलाभाई होगे ३५-४० वर्ष के, सूट-बूट-धारी, छरहरे, लम्बे, चेन सिगरेट-स्मोकर, बहु-वनिता विलासी। उनके गार्जियनो ने जब यह महसूस किया कि यह आदमी बुजुर्गों की गाढी कमायी की सारी दौलत चुटकियो मे उडा देगा तब उनके लिये लाख-दो-लाख रुपये अलग कर, मैशीने मँगा, स्टूडियो खडी कर, 'देवा' फिल्म-कम्पनी कायम कर दी। साथ ही, दो-चार खेलाडी-धूर्त्त ऐसे साथ लगा दिये जो भूलाभाई को उसी धन्धे मे भुलाये रखे। 'देवा' फिल्म-कम्पनी जियादातर देवताओ के नाटक-चित्रित करने लगी। और वह लोक-प्रिय हो गयी। उसकी फिल्मो को माँग चारो तरफ। रुपये बरसने-से लगे। सेठ भूलाभाई ने सोचा यह सब उनकी उस प्रतिभा का फल है जो शराब और सुन्दरियो के ससर्ग से सिद्ध होती है। फलत 'देवा' फिल्म-कम्पनी दिन-दहाडे व्यभिचारो का अड्डा-जैसी बन गयी। मालिक दफ्तर में बैठकर दारू पीता है, डाइरेक्टर सेट पर, एक्टर निकट की होटलो या स्टूडियो के किसी एकान्त प्रान्त में। डाइरेक्टर सेठ का मुँहलगा है इसलिये कि उन्ही की जात का है और समाज की लडकियो को भुलावा देकर भूलाभाई की अक-शायिनी बेसकोच बनाने का आदी है। कम्पनी में तस्वीरे बनती है देवताओ की लेकिन दानवीय दुष्कर्म होते है दिन-दहाडे। औरते—दो-ढाई दर्जन तो बिलकुल वेश्या बाजार की कुटनियो या दल्लालाओ द्वारा सप्लाई की हुई है, जिनका काम है सारे दिन स्टूडियो के कामकाजियो मे काम-कामना कुलबुलाना। कम्पनी मे अधिकारवाले जो कमानेवाले हैं उन्हे दारू पीते ही इच्छित बोसे स्टूडियो के कोने-कोने में मिलते

हैं। कुर्सी पर बैठते ही—मौके-बे-मौके सुन्दरियाँ घेरा डाल देती है—दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे। चहकती आवाज़ें, महकती जुल्फें, (लाल रंग से कोयले की तरह) दहकते अधर, बर्छी की नोक की तरह किसी कंचुकी के बाहर निकल दर्शक के मनों में खुभने को उत्सुक उरोज—यानी उन बाजरूओं के सीने। 'देवा' फिल्म-कम्पनी मे ऐसा एक भी पाखाना न होगा जिसको एकाधिक बार मदहोशों का भोग-भवन बनने का भाग्य भरपूर न मिला हो। एक्टरो-डाइरेक्टरो की आपसी बातचीत के विषय चन्द, चुने—दूसरे एक्टर-डाइरेक्टर की निन्दा और स्वयं की स्तुति। औरतों की चर्चा घूम-फिरकर हर एक की जुबान पर। एक्ट्रेस बनने के इरादे से कोई नयी नवेली आयी नहीं कि यारों ने आँखों-ही-आँखों उसे भक्षना शुरू कर दिया। इन एक्टरों की नज़रों से वेश्याएँ शर्मा जाती है, जिनकी आज तो बहुतायत है लेकिन कल जब पढ़ी-लिखी तरुणियाँ आयेगी तब क्या होगा इस लाइन मे यह आज ही से विचारणीय विषय होना चाहिये। सौ-मे-निन्नानवे एक्टर-एक्ट्रेस—'इज़ी मनी' या पानी की तरह रुपये कमाने के बाद या तो जुआ खेलते है या इश्कबाज़ी की सोचते है अथवा चौबीस घण्टे शराबी अगडधत्त बने रहते है।

"इस सबसे कोई यह न समझे कि फिल्म-कंपनियों के वातावरण में मधु-ही-मधु, जन्नत-ही-जन्नत है। 'देवा' फिल्म-कंपनी के मालिक दो ही बरस की तरक्की के बाद इस वक्त तनज्जुली मे है। दल-जीत कंपनी के सामाजिक-चित्रों के आगे जनता ने 'देवा' फिल्म-कंपनी के ढपोरशखी पिक्चरों को बिलकुल कंडम कर दिया है। पिछले कई महीने से कंपनी वाले कर्ज़ पर धन्धा चला रहे है। सेठ भूलाभाई अभी भी, वैसे ही, दिन-रात नशे में रहते है। पर, गज-भुक्त-कपित्थ की तरह सूरत-शक्ल सही-सलामत होने पर भी उनके भीतर कोई सार या स्नेह या रस या रक्त नज़र नही आता। भूलाभाई के चिन्तित-हित-

चिन्तको ने उन्हे धन्धे से अलग कर 'देवा' फिल्म-कपनी की व्यवस्था बिलकुल बदल दी है। भूलाभाई के निकट अब राग नही, रग नही। न भडवे, न रडियाँ। हतभाग्य बीमार पडा हुआ है।

"धन मुझे भी यहाँ बा-आराम ही और पुष्कल मिल रहा है। पाँव भोग-विलास की दिशा मे मेरे भी उठने को आतुर है। स्पष्ट मे भोगता नही, पर भडकीले-भोगो का प्रत्यक्ष-दर्शी उनसे अलग कहाँ तक रह सकता है यह मै बखूबी जानता हूँ। जिन वस्तुओ के ध्यान-मात्र से ज्ञानियो का भी तप-भग हो जाता है उनके बीच में रहता हुआ सोचूँ कि मै योगी हूँ—ऐसा पाखडी कोई और हो नन्दकुमार कदापि नही। हिन्दी-साहित्य लिखता था तो धन नही मिलता था लेकिन अपना भी कुछ महत्व था। इस फिल्म-लाइन मे तो धन का अथवा सुबरन—तन का—यौवन का महत्व है। चल-चित्र-ससार! क्षणभगुरता का महत्व सर्वत्र। युगान्त-व्यापी लेखक को कौन पूछे? सो फिल्म-लाइन मे आत्मावान लेखक का मान नही जवान छोकरी भले ही जानदार हो। मतलब यह कि धन मे भोग-विलास-सुपास हो, पर, हृदय नहीं होता। पर, गरीबी में धन न हो, हृदय तो लबालब होता है। लेखक का खून बढता है हृदय के स्वच्छ (न्द) विस्तार से। सो, मेरे लेखक को फिल्म-लाइन का धन चैलेज-सा देता मिला करता है और सरासर अन्देशा है किसी दिन ठन जाने का। लेकिन फिलहाल तो आराम से गुजर रही है और खूब।"

'आज' से गुजराती दैनिक बबई समाचार में उद्धृत होकर नन्दकुमार का लेख जब तत्कालीन फिल्म-सेठो की नजर में आया तो अपने धन्धे का यह भीषण भडाफोड उन्हे सुहाया नही। दूसरी कपनियो के मालिको ने मालिको की मीटिग में दलजीत कपनी के मालिको से पूछा कि क्या उक्त लेख उनकी कपनी में काम करनेवाले मुन्शी ने उनकी जानकारी में छपवाया है? नन्दकुमार का वह लेख भोगीलाल और नाज बानू को

भी अच्छा नही लगा, पर, दूसरे फिल्म-मालिको से उन्होने यही कहा कि स्टूडियो का काम ठीक-ठीक करने के बाद नन्दकुमार और क्या करता है उससे उनकी कोई खास दिलचस्पी नही।

इसी बीच मे एक दिन नौ बजे रात तक शूटिंग चलने के बाद कार्य समाप्ति पर वह मालाबार हिल लौटने ही वाला था कि नाज़ बानू ने उससे कहा—

"आपको रायल मूवीटोन वालो ने इसी वक्त याद किया है। उनका कोई बहुत जरूरी काम है। आपको कोई दिक्कत तो नही होगी? मेरी मोटर से चले जायँ।"

रायल मूवीटोन का मालिक सेठ भड़ूचा नन्दकुमार को गेट ही पर मिल गया।

"मुझे आपसे एक कहानी डिसकस करनी है।" भड़ूचा सेठ ने नन्दकुमार से कहा—"लेकिन डेढ घटे बाद मैं खाली हो पाऊँगा। भोगपुर के महाराज की पार्टी चल रही है। आपका भी स्वागत है! आइये अन्दर।"

अन्दर ले जाकर भड़ूचा सेठ ने नन्दकुमार को एक स्थान पर बैठाया। सचमुच पार्टी चल रही थी। कोई दो दर्जन पुरुष साफ सजी टेबुलो पर शराब पी रहे थे। रेडियो मन्द-मन्द बज रहा था। लोग नशे में हो चुके थे यानी बातो मे तेजी आ गयी थी। नन्दकुमार के निकट आकर भड़ूचा सेठ ने पूछा—

"शराब तो पडित लोग शायद न लेते हो? आपके लिये काफी, ओवलटीन...?"

"नही—मैं भी शराब लूँगा।" नन्दकुमार ने सहज भाव से सुनाया तो भड़ूचा को प्रसन्न-आश्चर्य जैसा हुआ—"शराब सामने हो तो मैं पण्डित नही केवल आदमी रह जाता हूँ।"

"क्या बात कही है!" भड़ूचा सेठ ने खुद ही गिलास मे बर्फ और

विस्की का बोतल नन्दकुमार के सामने सत्कार से ला रखा—"विस्की, ब्रैण्डी, पोर्ट, जिन, रम—सभी शराबे यहाँ है—आप क्या फरमाते है ?"

"जो जनाब के हाथ मे है विस्की । जरा ठहरे । मै बर्फ गिलास से निकाल दूँ—य · ।"

एक डबल पेग डालकर भड़ूचा रुकने लगा तो नन्दकुमार ने ललकारा—"बर्फ मैने इसलिये निकाल फेकी है कि गिलास और शराब के बीच में कोई दूसरी चीज़ रहे नही ।"

भड़ूचा समझ गया इशारा । विस्की का बाटल उसके गिलास मे उडेलता हुआ उसने सुनाया—"पडित इतनी पी सकता है—मै सोच भी नही सकता था ।"

"जो सोचा भी न जा सके वही काम जो कर जाय वही पडित । पडित लोग जब पीते है तब यो ही पीते है—'नीट' । सोडा नही, बर्फ नही ।" इसके बाद भड़ूचा सेठ राजा भोगपुर की खुशामद मे लगा और जब तक पार्टी चलती रही फिर पडित (लेखक नन्दकुमार) को पूछा तक नही । सभी नशे के आलम मे हो गये थे लेकिन, फिर भी, दौर चल ही रहे थे । इसी समय हाथ में आधा गिलास शराब लिये, आधी झूमती एक युवती साडी पहने आती हुई नजर आयी । युवती सुन्दरी थी, मदिरा ने उसे और भी मोहक बना रक्खा था । मदिरा ने ही उस समय पियक्कडो के मनो में युवती-स्त्री के लिये महामोह भर रखा था । सुन्दरी को देखते ही भोगपुर का राजा और सब-के-सब उसकी तरफ आकर्षित हुए, साथ ही, भड़ूचा सेठ ने भी उसकी तरफ साश्चर्य देखा—

"अरे यह साली यहाँ कैसे चली आयी ?" भड़ूचा बढा युवती की ओर—"अरी चम्पा !"

"हा, हा, हा, हा" गिलास उठा घटाघट पीकर चपा ने एक तरफ फेंक दिया । इसके बाद सर से साडी उतार वह सबके सामने ब्लाउज़

उतारने लगी, उतारकर रख दी उसने! और फिर साडी उतारने लगी। नन्दकुमार भी नशे में था, उसने समझा युवती नशे मे अपने-आपके बाहर हुई जा रही है। झट उठकर वह चम्पा की तरफ़ बढा—"आप होश मे नही है। चलिये अन्दर।" उसने कहा। तब तक भड़ूचा सेठ नन्दकुमार के निकट लपका आया और उसके कान मे बोला—"होश मे आप तो है. ? मिहरबानी कर अपनी जगह बैठिये—उसके फेर में न पडिये।" भड़ूचा ने नन्दकुमार को उसकी कुर्सी पर बैठा कर ऐसा दबोचा कि वह वही गडा रहे, बेजुम्बिश बैठा रहे। तबतक चम्पा ने साडी उतार फेकी थी और गातें-गाते उसने नग-नाचना शुरू कर दिया था।

मोरे राजा किवरियाँ खोल !
रस की बूँदे पड़ें।
बाला जोबनवाँ भिजै मोरे प्यारे !
अब न मोसे मुँह मोड़ !
रस की बूँदें पड़ें।

नन्दकुमार ने देखा वैसा कभी सपने में भी उसने नही देखा था। एक तूफान-सा मजलिस मे वर्पा हो गया। हरेक शराबी की इच्छा उस युवनी के लिये साफ बद। राजा भोगपुर तक की। राजा ने उठकर भड़ूचा को एक ओर बुलाकर कहा—"अब पार्टी बस। और इस औरत को मेरी मोटर में पहुँचाओ।"

"मगर, हुजूर ! भड़ूचा ने हाथ जोडकर राजा से कहा—"चम्पा बाजारू नही, एक्ट्रेस भी नही, वह मेरे एक कजिन की लड़की है। पीने के बाद यो ही पागल हो जाया करती है।"

"मै कहता हूँ इस वक्त बिना बहस इसे मेरी मोटर में पहुँचाओ...।"

"मुझे फाँसी लग जायगी...?" भड़ूचा गिडगिडाया।

"सारी रियासत का जोर लगाकर तुम्हारी रक्षा की जायगी—।"

तुरन्त ही भोगपुर का राजा स्टूडियो के बाहर खडी अपनी मोटर मे पहुँचा। तुरन्त ही चम्पा, उसी हालत मे, मोटर में पहुँचायी गयी। इस घटना के एक ही सप्ताह बाद बबई के पत्रो में समाचार छपा कि भोगपुर के राजा ने चम्पा नाम की किसी बबैया युवती को विवाह-पाश में बाँध लिया है।

राजा और चम्पा के जाने के बाद भड़ूचा नन्दकुमार की तरफ मुखातिब हुआ—"माफ करना पडत ! तुम्हे स्मार्ट होना चाहिये था। फिल्मवाले राजा-रईसो को कैसे आकर्षित करते है, सोचना चाहिये था। पता है आपको उस लडकी की वजह से रॉयल फिल्म-कपनी को क्या मिलेगा ? दो लाख रुपये कर्ज। और कर्ज़ भी ऐसा कि लेता मरे कि देता मरे, पर अदा हर्गिज न हो। आइये अब कहानी डिसकस करे।"

"मगर, भड़ूचा सेठ !" नन्दकुमार ने सीरियसली सुनाया—'मैने यह तय किया है मै ऐसी सस्था से सबन्ध नही करूँगा, जो ऐसी कुनीति—क्या पब्लिक प्रास्टिट्यूशन से पैसे बटोरती हो।"

"क्या ?" जरा तनकर भड़ूचा ने पूछा।

"जी...!" नन्दकुमार अपनी जगह जैसे दृढ जमा ही रहा।

"आप मुझसे स्टोरी डिसकस नही करेगे ?"

"खेद है...।"

"पडित—पाँच हज़ार रुपये का काम है। सोच लीजिये।"

"लाख रुपये का काम हो; पर, सही धन्धे से नही, जो पार्टी इस तरह पाप से रुपये कमाती हो, उससे मेरी शिरकत हो ही नही सकती।"

"यह बिज़नेस मैन लाइक नही है।"

"मै बिज़नेसमैन नही हूँ।"

"देन गो टू हेल ! पठान ! इस आदमी को फाटक बाहर करो।"

"धन्यवाद ! जो आदमी इस नगपन से रुपये कमाना पसन्द कर सकता है—वह ज़लालत की किसी भी सीमा को टच कर मकता है।"

"पठान ! पठान !"

पठान ने आकर देखा पडित उससे बीस ही नही पच्चीस था। और वह देखता ही रहा। नन्दकुमार नशे में होने पर भी अकपित, गभीर पगो से स्टूडियो बाहर निकल गया। वहाँ से मालाबार हिल बहुत दूर नही था। टहलता-ही-टहलता वह फ्लैट तक पहुँच गया।

कपडे उतारकर वह बिस्तर पर लेट रहा, और नशे में भी चिन्तामग्न हो गया। असल मे चम्पा-काण्ड के बाद नन्दकुमार का नशा ही उखड गया था। उसे लगा कि फिल्म-कपनी वह जगह नही जहाँ उसकी प्रतिभा पुष्टि पा सके। यह लाइन तो पकडते ही छोडनी पडेगी। पकडते ही छोडनी पडेगी फिल्म-लाइन ? नन्दकुमार के दुनियादार मन ने प्रश्न-जैसा किया। फिर मन ही ने मन को उत्तर भी दिया, "हिन्दी-जगत् छोड़ा—, फिल्मी-दुनिया में आये। अब फिल्मी-दुनिया छोडकर पुन हिन्दी लिखने जाना—भद्दी कहावत है वह—खसम किया ' बुरा किया; करके छोड दिया : और भी बुरा किया। फिर, हिन्दी-ससार मे ४००) कलदार हर महीने मुयस्सर किसको है ? सौ रुपये मासिक भी स्वतन्त्र-हिन्दी-लेखक को घर-बैठे असभव है और असभव ही रहेगा अभी पचीस वर्षों तक।

"लेकिन लिखना हृदय से होता है" नन्दकुमार के सुमन ने पुन. तर्क किया अपने आप "और फिल्म-लाइन में है हृदय पर हज़ार बोझ। रुपये का बोझ, रूप का बोझ और रुपया-रूप से पैदा होनेवाली अनन्त हृदय-हीन परिस्थितियो का बोझ। इन बोझो से कलाकार का दम घुटता है, व्यक्तित्व दम तोडने लगता है। ऐसा सोना किस काम का जिसके लिये कान छिदे। कलाकार ही मर जायगा तो रुपया—चार सौ नही लाख भी—मिल कर होगा क्या ? फिल्म-लाइन से पैसे-

रुपये-रूप के लिये समझौता करना सुलझे लेखक का देश-द्रोह, समाज-द्रोह नही तो क्या है ?

: २७ :

महादेवी, प्रेमा तथा एक बनारसी-नौकर को साथ लिये बोरीबन्दर स्टेशन से टैक्सी लेकर सीधे इलाविला, सान्ताक्रूज़ पहुँची। अपने आने की सूचना उसने जगरूप को नही दी थी। सयोग की बात उस समय मिस रोज बँगले पर नही थी। वह आउटडोर शूटिग के सिलसिले में बबई बाहर गयी हुई थी। इससे जगरूप को अपने घरवालो के लिये मालाबार हिल पर ताबडतोड एक फ़्लैट खोज लेने का चित-चाहा-चान्स मिल गया। मिस रोज पर जी-जान से फिदा होने पर भी वह नही चाहता था कि उसकी श्रद्धेया माई और पाणि-ग्रहीता-पत्नी मिस रोज-जैसी अज्ञात-कुलशीला औरत के साथ एक ही स्थान पर रहे। उसके इस प्रस्ताव मे परिवार के प्रति प्रेम था; आशा की झलक थी; अत महादेवी ने अलग रहना मजूर कर लिया। यह सोचकर कि धीरे-धीरे अपने लाल को वेश्या के जाल से निकाल अपने हृदय के निकट आकर्षित करने मे वह ज़रूर सफल हो जायगी। बस एक दिन महादेवी वगैरह सान्ताक्रूज रहे; जगरूप एक ही दिन मालाबार वाले फ्लैट में परिवार के निकट रहा। दोनो दिन प्रेमा पति की सेवाएँ करने के बावजूद सोई महादेवी ही के पास। जगरूप उससे खिचा-ही-खिचा रहा। पर दो ही दिनो मे जगरूप को अपनो के शुद्ध-प्रेम और आशीर्वाद का विचित्र स्वाद मिला—पोषक और तोषक। प्रिय-परिवारी उसे अच्छे-जैसे लगे बाज़ारी-झखमारी की तुलना मे। ऐसी मीठी नीद बरसो

वैसेही, बिना नोटिस दिये और आज ही मै उसे कर लूँगी···।"

"क्या बकती है ..? किसे कर लेगी ?" व्यग्र-भाव से जगरूप ने बिगडकर पूछा।

"जिसे मेरा जी करेगा...।"

"क्या?जी की बच्ची—!" उसकी आँखो में हैरानी थी कि रोजी हाथ से निकल तो न जायगी। रोज ने ताडा जगरूप की आँखो के अन्दर का दिल। उसे विश्वास हो गया कि शिकार उसीका है और उसीका रहेगा। झपाक से मोटर मे बैठ, मैशीन चैतन्य कर गाडी अगाडी सरकाती हुई नखरे से उसने अर्ध-स्वर में गाते हुए जगरूप को सुनाया—

"दिल एकी से लागा, हजारों खडे।"

उसने गाडी जरा तेज की। करीब था कि दूसरे धक्के मे वह जगरूप की आँखो से ओझल हो जाती कि वह फिल्म-एक्टर की स्टटवाली स्फूर्ति से उछलकर, पैडिल पर पग जमा, चलती गाडी के द्वार खोल कर अन्दर घुस गया। तिमजले की अगासी से महादेवी और प्रेमा ने जगरूप का वह दुस्साहस व्यग्र-भाव से देखा। इस एक ही घटना को दोनो दुखी देवियो ने दो दृष्टियो से देखा। महादेवी को खुशी हुई यह भाँपकर कि जिस स्त्री के पीछे उसका भैया भागा गया है प्रेमा उससे अधिक सुन्दरी है—अतुलनीय। कहाँ रानी, कहाँ कौआ-हँकनी। महादेवी ने सोचा "जो पुरुष उस औरत पर आसक्त हो सकता है जरूर एक-न-एक दिन वह प्रेमा-जैसी सुशीला को सही-सही पहचानेगा। कोई छोटी जात नहीं; मेरा भैया कुलीन और कुलीनता की कद्र करने वाला है।" लेकिन प्रेमा नीचे का नजारा देखकर इस बात पर विशेष खिन्न हुई कि वह औरत मोटर चला रही थी—"तो ?" उसने सोचा "नाचनेवाली नही, मोटर चलानेवाली को वे पसन्द करते है ? नाचना तो जैसे-तैसे मैने सीख भी लिया; पर, मोटर भला मैं इस जन्म मे चला पाऊँगी ? हे राम ! कैसा कठोर...विवश यह नारी-जीवन !

वह प्रबल पुरुष है कि चलती मोटर मे, जान पर खेल कर चढ गये। क्या मै इस तिमजिले के नीचे इसलिये नही कूद सकती कि मै अबला हूँ ?—स्त्री हूँ ?" उसने नीचे की तरफ झाँका—ओह ! निश्चित-मृत्यु ! निश्चित-मृत्यु के गाल मे छलाग कही कोई मारता है ? उसने नीचे से हटा पीछे के कमरे की तरफ आँखे की—इस आशा में कि शायद इस दिशा में जीवन नजर आये। किस दिशा में ? प्रिय-परिवार मे ? परिवार परन्तु रहा ही कहाँ जब प्रिय न रहे ? वह जगरूप को अपनी ओर मोड सकेगी इसकी आशा अब उसे ज़रा भी न रही। उसका चेहरा ऐसा रक्त-रहित हो गया जैसे जज द्वारा प्राण-दण्ड का निर्णय सुनने पर फाँसी के दण्ड-पात्र का हो। महादेवी का पार्श्व पकड न लेती तो प्रेमा लड-खडाकर धरती पर गिर पडती। उस वृद्धा के बल पर वह बेचारी बेहोश हो गयी !

: २८ :

पिछली सीट की तरफ वह दाखिल हुआ था, अगली सीट पर वह मोटर ड्राइव कर रही थी—असावधान सावधानी से, ब्लफ से जगरूप को डराती हुई एसक्सिडेन्ट की सभावना से।

"बैठा रहता है तो पीछे ही बैठा रह ! आगे की तरफ बढा नही कि मैंने मोटर उलटी नही।"

"मोटर उलटेगी तो आप मरेंगी।"

"मार कर मरूँगी—ए मिस्टर"

"ए मिस्टरी !"

"तेरी माँ मिस्टरी...।"

"खोपडी मे भेजा तो है नही कि बात समझे ! फकत गाल, फकत गाल ! मिस्टरी गाली है कि तू नाचने लगी ?"

"मिस्टर गाली है ?"

"मै कहता हूँ मर्द की नजर में हर औरत मिस्टरी है। मेरी माँ भी भी, तू भी ! माँ मिस्टरी होगी मेरे बाप की नजरो मे; तू मिस्टरी है मेरी नजरो में। ज़रा गाडी रोक, पर्से निकाल। आगे इम्प्रेस बार है ! मै दारू पीऊँगा।"

"इतने सवेरे वहाँ दारू लिये तेरा बाप बैठा है ?"

"तू अपना बटुवा तो मुझे दे। मेरा बाप नही तो तेरी माँ वहाँ बैठी होगी—तू गाडी रोक देना—शराब पा जाना मेरा काम है।"

जगरूप आगे झुककर मिस रोज के आसपास उसका बैग देखने लगा। बायी तरफ से बैग उठाते हुए उसने मोटर-चक्र-धारिणी महा-माया का बायाँ गाल धीरे से चूम लिया। क्या इससे मिस रोज सिहरी या प्रेम-पुलकित हुई ? कौन जाने ऐसी औरत के दिल की बात, पर, चुंबन के बाद ही उसने जगरूप की तरफ उसी तरह देखा जैसे कोई मालकिन मुँह-लगे, बे-कहे कुत्ते की तरफ देखे। उस दृष्टि में स्वीकृति नही, अस्वीकृति नही—हैरान—उपेक्षा थी।

"लो ! तुमने देखा नही ट्रैफिक पुलीसवाला कुछ नोट कर रहा था—हमारी गाडी की तरफ देखकर। तुम खुद तो फँसोगी ही, साथ ही मुझे भी फँसाओगी—गाडी रोको !"

एक तरफ उसने गाडी खडी की। जगरूप जल्दी से उतरा और सामने की तरफ लपका। "लेकिन पुलीसवाला तो पीछे छूट गया होगा यह सामने कहाँ जा रहा है ?" मिस रोज़ ने हैरानी से बाहर झाँक कर देखा तो गाडी इम्प्रेस-बार के सामने खड़ी थी। जगरूप के सबब दमा खराब रहने से राह समझे बिना ही वह मोटर चला रही थी।

उसे स्वय पर बडी खुनस हुई। तबतक होटल का ब्वाय ट्रे में एक डबल पेग लाया—

"यह क्या है ?" मिस रोज ने पूछा, "अभी नौ भी नही बजे और तुमने शैतान-खाना चालू कर दिया ? तुम्हे पुलीस का, कानून का, किसी का डर नही ? खुदा तुम्हरा बेड़ा गर्क करे !"

मुँह से होटलवाले की भर्त्सना करती हुई भी रोज ने हाथ से जाम उठा लबो से जगा ही लिया। अब जो मोटर सान्ताक्रूज की तरफ बढी, तो जगरूप पीछे नही आगे की सीट पर था। रोज की बगल मे।

"तूने समझा ?" जगरूप ने शुरू किया "शराब मैने अभी पी क्यो है ?"

"तू ही बता। तूने समझा कि मैने अभी दारू क्यो पी है ?" प्राय जगरूप ही के शब्दो में मिस रोज ने भी पूछा।

"मैने इसलिये शराब पी है कि आज बँगले पर पहुँच ते ही मैं तेरी जान ले लूँगा।"

"ये मिस्टर !" नागिनी-सी गर्दन मोड कर फूत्कार-स्वर मे उसने सुनाया, "किसी धोके मे न रहना। मैंने भी इसीलिये दारू पी है कि आज़ मै उस मर्दुए को मरा ही देखूँगी जो मेरा खून भरपेट पीने के बाद अब सरदर्द बन रहा है।"

"चिडिया-सी तो तेरी जान है...।"

"ऐसी चिडिया जिसकी जान तो दूर कदमो की धूल तक तुझे आँख लगाने को भी नसीब न हो। ले, आ गया बँगला। चल अन्दर और उठा हाथ चिडिये की तरफ और फिर देख अपना काल।"

"मै कहे देता हूँ—फिर रोयेगी, गर्दन धरकर मरोड दूँगा। भले फाँसी हो जाय।"

"फाँसी पानेवाले शहीद-जैसी नही, तेरी सूरत-सीरत तो ४२० की तरह है। तू बँगले के अन्दर तो चल; फिर तुझे पता चलेगा कि

मिस रोज की पखरियो मे कैसे काँटे हो सकते है—चल अन्दर !"

बँगले मे पहले जगरूप ही पहुँचा। घर पहले ही से खुला हुआ देखकर उसे आश्चर्य हुआ। लेकिन ड्राइग रूम मे उसने जो कुछ देखा उससे तो जगरूप के होश फाख्ता हो गये। कमरे के बीच में सोफे पर एक लबा, तगडा, अलकतरा-काला, हब्शी-जैसा आदमी बैठा पाइप से तबाकू पी रहा था। उस आदमी को जगरूप ने कभी देखा नही था। देखते ही वह आदमी खूखार मालूम पडता था। जगरूप ने सोचा आगे बढकर वह उससे पूछे कि वह है तो कौन ? इतने मे स्वय वह राक्षस जगरूप की तरफ लपका— 'अन्दर क्यो आया ? अन्दर क्यो आया ?" ललकारता हुआ। उस काले आदमी ने जगरूप का गला पकडना चाहा तो जगरूप उससे भरपूर उलझा। दोनो मे खासी हाथापाई हो पडी। जल्द ही जगरूप ने समझा कि हब्शी उससे मजबूत था—पेश वह नही पायेगा। बारे इसी समय रोजी तेज-कदम अन्दर आयी—आज्ञा के स्वर मे उस हब्शी को धमाकती हुई—

"यू फूल ! जॉन ! ओ जॉन ! उसे छोड !" जॉन ने तुरन्त जगरूप को छोड दिया। दूसरे ही क्षण वह मिस रोज की तरफ लपका। उसको बच्चियो की तरह गोद मे उठा कर ताबडतोड तीन-चार चुम्में जगरूप के आगे जॉन ने लिये।

"अभी मुझे छोडो—इससे निपटना है। तुम माहिम से सूअर का एक बच्चा लाओ। आज सूअर खाने का इरादा है। फौरन जाओ।"

रोजी को छोड जॉन उसी तरह चुपचाप बाहर चला गया जैसे अलशेसियन कुत्ता मालिक का हुक्म माने। "क्यों मिस्टर ?" जॉन के जाते ही ताना-भरे-स्वर में रोज ने जगरूप से पूछा, "गर्दन नही मरोडनी है ? हरामजादे ! तूने मुझे भी रानी या मलिका या गुलाब या जेबू समझ रखा है ? मै तेरी सारी समझ-बूझ ठीक-ठिकाने लगाकर रहूँगी ? मुझे ऐसी-वैसी न समझ लेना।"

"यह जॉन साला कौन है ?" जरा खिसियाये-स्वर मे जगरूप ने जानना चाहा।

"मेरा पुराना लवर !"

"इसे यहाँ मेरे बँगले पर क्यो बुलाया गया ?"

"तेरा बँगला कैसा ? तेरी फ्लैट तो मालाबार हिल पर है जहाँ तेरी वो है, वो है .।"

' डियरी !" जगरूप नरम पड मधुर बोला।

"गुण्डा ! हरामी !" रोजी गरम पड़ कटु बोली।

"इतना गुस्सा ? तुम्हे बहकाया किसने कि मै उस स्त्री को चाहता हूँ जिससे मेरी शादी हुई है। मेरी माई साथ न होती तो मैने उसे बम्बई मे ठहरने तक न दिया होता।"

"वह कानूनन ठहरने की हकदार है। तेरी वाइफ...।"

"मैने उसे एक दिन भी वाइफ करके माना ही नही।"

"तू शैतान सिवा हविस के और किसे माननेवाला है ?"

"देखो डियरी !" जगरूप ने मोह का नाटक करना चाहा "ऐसा झूठ न बोलो जो जमीनो-आसमान मे अँटे नही। तुम जानती हो मै तुम्हे जी-जान से चाहता हूँ। तुम्हे खुश करने के लिये मै क्या नही कर सकता हूँ ?"

"हरामी ! हा हा हा हा ! जॉन से डर गया ! अभी थोड़ी ही देर पहले जो यह बोल रहा था कि रोज की गर्दन मरोडकर रख दूँगा बला से फाँसी हो जाय—वह कौन था ? वह शैतान भी तो तेरे ही अन्दर बैठा होगा कही ? मौका पाकर तू फिर मेरी गर्दन न मरोडे इसलिये मैने यह तय कर लिया है कि...।"

"कि ..?"

"कि मै जॉन से सम्बन्ध करूँगी। वह भद्दा हो, पर मर्द है। काला हो, पर दिल उसका मेरे हक मे चाँदनी है .।"

"और मेरा...?"

"तेरे सीने मे दिल भी है ? मै तो नही मानती।—आल डेजर्ट।"

"डियरी !" आवेदन के स्वर मे जगरूप ने कहा।

"डैम !" धिक्कार के स्वर मे रोज ने सुनाया—"ये मेरी जूतियाँ हैं। इनसे तू अपना सर फोडले तो भी जॉन को छोडकर अब तुझे मन्जूर करनेवाली मै नही।"

रोज की जूतियाँ उठा जगरूप उनसे अपना सर पीट चला—"तुम खुश रहो !"

"तू थूक कर चाटे तो भी मै अब तेरी नही।" और जगरूप ने रोज के सामने, पशु की तरह झुककर थूक कर चाटा !

"तू मेरी एँडियाँ चाटे तो भी जूती की नोक बराबर भी तेरी इज्जत करने को मैं तैयार नही।"

जगरूप ने झपटकर रोज के दोनो चरण पकड लिये और उसकी एँडियाँ चाटने लगा। अब दोनो उलझ-जैसे गये। मिस रोज ने कहा :

"जा उसीके पास—सती की बेटी के पास। मै जॉन पर जान देती हूँ।"

"तुम्ही मेरे लिये सती हो रोजी—डियरी ! तुम जानती हो जगरूप बिना तुम्हारे जिन्दा नही रह सकता।"

"इसका सबूत ?"

"जो कहो दूँ ...।"

"मै चाहती हूँ कि मै भी तेरे परिवार वालो के साथ मालाबार हिल पर रहूँ।"

"अभी चलो !"

"और घृणा नही—वे मेरी सेवा करे।"

"कौन ? मेरी माई ?"

"वह न सही—तेरी सती की बच्ची—लुगाई।"

"करेगी।"

"वह मेरे कपडे साफ करेगी, बिस्तर करेगी और हम सोएँगे। एक दिन, दो दिन, तीन दिन...।"

"जितने दिन तुम चाहो उतने दिन...।"

"बस तीन दिन। इसके बाद तेरी सती की बच्ची, को पता पड जायगा कि तू है किसका। वैसे हरामी—है तो तू किसीका भी नही।"

"मै तुम्हारा हूँ—माई लव! विश्वास करो।"

: २६ :

वह महाराष्ट्रियन-इजीनियर अपनी स्वस्थ, सुन्दरी-पत्नी की हेठकर बनारस-रिजेक्टेड-वेश्या रानी पर आसक्त हो गया, इसे क्या कहा जाय सिवाय इसके कि विशाल नगरो के धनवान-नागरिक पुराने चावलो ही पर रीझते है। अथवा (रानी की तरफ से देखे तो) औरत जब स्वाभाविक-आकर्षण—जवानी—अल्हडपन मे लुटा देती है, यौवन का मूल्य उसकी समझ मे तब आता है। तब वह मसनूवी, बनावटी हाव-भाव-बनावो से जो यौवन दरसाती है उसके आकर्षण से अनेक नागरिको की रक्षा असभव हो जाती है। नही तो इजीनियर पचास के करीब का था; बाल-बच्चो-वाला; प्रतिष्ठितो-मे-प्रतिष्ठित; वह पुरानी रानी के फेर में पडता ही क्यों? पर, रानी पर इजीनियर के—कुछ नही तो—एक हज़ार रुपये हर मास सर्फ होते। वह अपने बाल-बच्चो मे कभी न सोता और बराबर रानी ही के फ्लैट में रात काटता था। इजीनियर के अलावा, उसकी स्वीकृति से, रानी टॉकी-फिलमो में छोटा-मोटा काम भी कर लिया करती थी। बनारस से उसने अपना सारा परिवार बबई बुला लिया था।

और वह सुखी थी। जगरूप से उसका सबन्ध फिर नही हुआ। पर, रानी दिलफेक औरत थी। जगरूप उसके दिल से पूरी तरह उतरा नही था। इजीनियर के साथ रहकर भी जगरूप की खबर वह बराबर रखती थी। जगरूप की अनेक बातो के स्मरण से दूर रहने पर भी रानी के मन में गुदगुदी होती थी। लेकिन दूसरी विपरीत बातो के स्मरण से घृणा भी उसके मन मे घोर होती थी। कुछ मौके ऐसे थे जिनके आने पर जगरूप मीननेस मे आदमी नही रह जाता था। रानी ऐसे अधम मौको का शिकार हो चुकी थी और ऐसे आदमी के लिये दिल मे घृणा ही पालती थी। वह घृणा से जगरूप के बारे जानकारी रखती थी या अतृप्तवासना मे स्वय इसका निर्णय नही कर पाती थी। रानी का हृदय यू पी. की पुरानी महिलाओ की तरह सनातन-धर्मी था। बबई पहुँचते ही इजीनियर का मिलना उसने ब्राह्मण जगरूप के सहवास का प्रसाद ही माना। जगरूप उसे न मिला हो, पर उसी के पुण्य से इजीनियर उसको मिला था इसमें सशय उसके मन मे नही था। एक बात और। इसका समाधान वह इजीनियर की आत्मकथा मे भी पाती थी।

महाराष्ट्रियन इजीनियर बहुत गरीबी में पला हुआ था। इजीनियरी उसने जिस दुर्दशा में पास की थी वही जानता था। यद्यपि इजीनियर का पिता वकील था फिर भी, मरने के बाद उसने लेमिंगटन रोड से सटी हुई 'अमृत गली' मे बडे अहाते वाले छोटे मकान के अलावा भूजी भाँग भी नही छोड़ी थी। अलबत्ता वैदिक, आर्य देवताओ की कई मूर्तियाँ (कुल-देवो के विग्रह) उस छोटे घर का एक पूरा कमरा छेके हुए थी। लेमिंगटन रोड के एक प्लाट से मिलाकर सिनेमा हॉल बनाने के लिये 'अमृत गली' के उस मकान की कीमत तिरसठ हजार रुपये लगी थी, पर, क्योकि मकान मे कुल-देवता थे, उनके कोप का बडा भय था, अतः गरीबी दूर करने के लिये उन देवो से प्रार्थना करने के सिवाय इजीनियर और उसके घरवाले और कुछ न कर पाते। लेकिन दूर होना

तो दूर गरीबी गहनतर गले पडती गयी। इंजीनियर हो जाने पर भी नियुक्ति नही। बीवी-बच्चो की तकलीफे देख-देख उसका कलेजा मुँह को आने लगा। गरीब और जवान इजीनियर ने सोचा कि आप मरे तो जग मरा। जव मेरे बच्चो की शिक्षा-दीक्षा की बुनियाद ही बिगड जायगी तब भविष्य कुछ भी होकर क्या बना देगा ? जीवन मे फलद न हो तो क्या देव और क्या धर्म। असिल देवता तो दिल मे, नीयत-तबीयत मे होते है। सो, इजीनियर ने अपना मकान सिनेमा हाउस बनने के लिये दे देने का इरादा किया—बेच देने का नही। इस शर्त पर जगह उसने दी कि सिनेमा हॉल की आमदनी की साढे बारह सैकडे रकम उसे मिले बराबर। और वह फ्लैट किराये पर लेकर रहने लगा। लेमिगटन रोड पर 'विष्णु सिनेमा' आज भी कोई देख सकता है। सिनेमा का उक्त नाम इसीलिये पडा कि इजीनियर के घर के प्रधान देव विष्णु-भगवान थे। घर की (देवताओ की) मूर्तियाँ पत्नी द्वारा त्राहि-त्राहि किये जाने पर भी इजीनियर ने समुद्र मे समाधिस्थ करा दी। समुद्र से लक्ष्मीजी पैदा हुई थी। सो, समुद्र विष्णुजी की ससुराल। देव-विग्रहो के समुद्रस्थ होते ही लेमिगटन रोड के सिनेमा-हाउस में लक्ष्मी बरसने लगी ! उन्ही स्थानो पर जहाँ इजीनियर और परिवार दारिद्र्यो, भूखो मरा था। विष्णु सिनेमा की अपने हिस्से की रायल्टी से इजीनियर को नौ से साढे ग्यारह सौ रुपये तक मासिक आमदनी अनायास ही होने लगी। बुद्धिमान, कुलीन इजीनियर की बुद्धि मोह-विमुग्ध-जैसी हो गयी। जब पूजा थी, उपासना थी—तब सोलहो दड एकादशी हुआ करती थी। और उसी स्थान पर जब चित्र-विचित्र, काम-क्रीडाएँ हो रही हैं—पाप-पकिल—तब आनन्द है, मगल है, खेम है, कुशल है। तो ? क्या ?? जप, तप, पाठ, पूजा, देव, पितर सब आउट-आव-डेट नही ? तो क्या इस जमाने मे ईश्वर के फेर मे पड़ना बालू से तेल निकालना नही ? सो, अविश्वासी बन महाराष्ट्रियन

इजीनियर राम को छोड आराम की तरफ चला आया। शायद अचानक मिलने वाले अधिक रुपयो की हवा का रग ही रगीनियो-भरा होता है। इजीनियर को सिनेमा हाउस से सिनेमा स्टूडियो का चिर-आकाक्षित पता लगा और स्टूडियो में वे परम आकाक्षित वस्तुएँ सुलभ हुईं जिनकी कल्पना-मात्र से इस देश की युवक-युवतियाँ बबई की तरफ लहरा उठती है जैसे नद-नदियाँ महा-समुद्र की तरफ लहराएँ। इ जीनियर मासादि खाने, सुरादि पीने तथा अपनी नेक औरत से दगा कर अनेक औरतो से मिलने लगा। "यह सब पाप है!" सीधी महाराष्ट्रियन पत्नी ने वर्जन के स्वर मे पति से, सभीत, कहा। "पुण्य तुम अपना अपने पास रखो। खाओ, पहनो, बच्चो को सँभालो। मुझे पापी ही बना रहने दो। तुम्हारा नामधारी पुण्य सँवार चुका मेरा इहलोक।" इस उत्तर से भी भीत हो उसकी धर्मभीरु धर्म-पत्नी ने पत्थर के देवताओ के चरणो मे नाक रगडी कि उसके पति का सौभाग्य देव-कोप का रगडा न खाये। सो, इ जीनियर-परिवार में पत्नी समझती कि देवताओ की ख़ुशामद करके वह विषय-गामी पति की रक्षा कर रही है लेकिन इजीनियर यह समझता कि देवताओ को दूर करके ही वह परिवार का पोषण कर रहा है। इजीनियर की पत्नी निस्सन्देह उन भारतीय-गृहणियो-जैसी थी जो अपने ही कर्त्तव्य पर सम्पूर्ण ध्यान रखती है—पति से बिना किसी आशा के। उसे रानी का और मालाबार हिल मे उडनेवाली पति की मोटी रकम का भी पता था, पर, इससे खिन्न होने की जगह भिन्न ही आचरण उस महिला ने किया। स्वय ही वह रानी से मिली—उससे बहनापा कायम किया और सगीत सीखने तक लगी। बरसो मिलती रहने पर भी उस महाराष्ट्रीय देवी ने एक दिन भी रानी पर यह विदित नही होने दिया कि वह उसकी उपस्थिति से असन्तुष्ट है। और सचमुच वह अपने पति की प्रसन्नता में ही सुप्रसन्न रहनेवाली देवी थी। अपने बाल-बच्चो को ही सँभालने से उसे फुर्सत नही मिलती

थी—गृहस्थी के अनन्त-कामो से—कि किसी दूसरी चिन्ता को वह पास भी फटकने न देती। इजीनियर-पत्नी को देखते ही लगता था कि ज़रूर वह कोई सुखी-सम्पन्न-महिला है।

घटी बजने पर एक दिन सवेरे-ही-सवेरे दरवाजा खोलने जाकर आश्चर्य-पूर्ण-प्रसन्नता से रानी ने क्या देखा कि उसके उदार, सहृदय, नृत्य-सगीत-गुरु लीलाधर कत्थक प्रत्यक्ष खडे मुस्करा रहे है। लपककर उसने गुरु के चरण छूकर प्रणाम किया। लीलाधर ने उसका सर छूकर आशीर्वाद दिया। रानी ने अन्दर लाकर, सुआसन पर बैठाकर लीलाधर से कहा—

"धन्य भाग! आज सपने मे मैने विश्वनाथ बाबा के दर्शन किये थे और जागते ही सोच रही थी कि कोई परम सुफल फलित होनेवाला है। बनारस में सब कुशल-मगल है न? सामान आपके साथ नही है। कही और ठहर गये है तो आपने मेरे साथ महा अन्याय किया है। कहाँ ठहरे है?"

"तुम्हारे ही घर पर महारानी!"

"पहेली न बुझाइये। जल्दी बतलाइये। मै अभी आदमी भेजकर—क्या—खुद जाकर आपका सामान ले आऊँगी। इस फ्लैट मे कुल पाँच कमरे है। हमारे लिये तो तीन भी बहुत है। दो बराबर खाली ही पडे रहते है। वह पश्चिमवाला कमरा देखिये—है कि नही?—उसकी अगासी से समुद्र नजर आता है। कहाँ ठहरे है आप?"

"अभी गत् सन्ध्या ही को तो आया हूँ," लीलाधर ने सरस-सुनाया—"तुम्हारी तो परिस्थिति ही मुझे मालूम नही थी कि जगरूपजी से तुम अलग हो चुकी हो। मैने समझा था जहाँ गुरू होगे वही महामाया भी होगी। यह तो आने पर, जगरूप गुरू से 'बतियाने' पर, रहस्य खुला। क्या हुआ कि यह जोड़ी टूटी? अभी तक मै अ धेरे ही में हूँ।"

"पूछा नही अपने गुरूजी से?"

"गुरू तो फिर गुरू ही होते है महामाया ! वह तो जब देखेंगे चेले ही का दोष... ।"

"क्या कहते थे वह मुझे—यह बतलाइये पहले ?"

"जगरूप गुरू ने बतलाया कि तुम्ही किसी गॉठदार के गठ-बन्धन में... ।"

"झूठ ! मेरे सामने कोई कहे, तो मै..." रानी जरा उत्तेजित हो उठी—"सत्तर चूहे खाकर बिलाडी चली हज को ?"

"चलो.., बबई आकर तुम घाटे मे तो नही रही ?" लीलाधर ने सुनाया—बनारस में दालमडी की बुरी हालत है। गाना-बजाना सुननेवाले रईस अब रहे नही। रह गये है रईसो के और रोज़गारियो के इगिड़बिगिड़-पढे नये-नये लौडे—कला-कलाविदो से इतने परे, जितने गधे सगीत से। जिन्हे चाहिये जवानी मात्र। सो, महामाया, मेरी मानो ! तुम बहुत अच्छी रही। जगरूप गुरू से किसी दीगर देवी का बुरा हुआ हो; तुम्हारा तो भला ही हुआ है।"

"मेरा बुरा उनसे नही हुआ," रानी ने सुनाया, "झूठ कह पाप की भागिनी मै नही बनूँगी। लेकिन गुरु महाराज ! मै आपके चरण छूकर कह सकती हूँ—मै भी आदमियो में रहती हूँ, और आदमी को कम नही पहचानती—जगरूप-जैसे आदमी जब करेंगे अपना ही नुकसान करेंगे। आजकल एक अदना-सी औरत पर—जिसे न शक्ल, न अक्ल—इस तरह लट्टू है कि वह ऐयारा हज़रत को अँगुलियो पर नचाती है।"

"यह सब दण्ड है महामाया !" गंभीर भाव से लीलाधर ने सुनाया—"जगरूप ने अन्याय से अपनी साध्वी-स्त्री का जो तिरस्कार किया है यह सब उसीका दण्ड है।"

"वह टकैल औरत जैसा इशारा करती है जगरूप वैसा ही करता है।" रानी अभी अपनी ही तरँग में प्रवाहित थी, "जो भी फिल्म जगरूप डाइरेक्ट करेगा उसकी हीरोइन सिवा मिस रोज़ के क्या मज़ाल कि

रंभा या उर्वशी या मेनका भी हो जाये। पिक्चर फेल हो कि पास। नतीजा यह हो रहा है कि जगरूप मालिको की नजरो से उतरता, कला-पारखियो की सहानुभूति खोता, सच्ची सफलता से दूर होता जा रहा है। भगवान न करें !— मैं किसी का बुरा क्यो चेतूँ ?—लेकिन ऐसा ही रहा तो भविष्य भगवान ही के करते। भला हो तो हो।"

"दो की दोनो दिन-रात रोती हैं।"

"कौन दोनो ?"

"गुरुजी की पत्नी और माईजी !"

"आपने तो जगरूप की बहू को देखा है ? वह तो उसे बराबर भद्दी, चुडैल ही कहा करते है।"

"होनहार होगा महामाया ! कुछ होनहार होगा। तभी तो जगरूपजी को उस बेचारी औरत-जैसी सती पसन्द नही। रहा रूप, सो मैने तो उसको नाचना सिखाया है...।"

"नाचना ? जगरूप की बहू को ?" जैसे आसमान से नीचे गिरकर रानी से पूछा—"आप कह क्या रहे है ?"

"उस बेचारी गाय ने इस कसाई को खुश करने के लिए लाज छोड़कर मुझ से नाचना तक सीखा है . ।"

"नाचती है ?"

"ऐसा कि क्या कहूँ।"

"बेवकूफ !" रानी ने जगरूप की पत्नी को मूर्खा माना "उसने समझा होगा कि रानी के नाचने पर नाचकर जगरूप घर छोड कर चला आया था। जगरूप औरत इसलिए चाहा करता है कि औरत औरत है, न कि इसलिए कि उसमें औरत के अलावा कोई आला सिफ़्त, गुण या विशेषता है। यह आजकल वाली माशूका उसकी—मरियम रोज—जिसको यहाँ तक पता नही कि नाचना या गाना किस बला का नाम है—वो नचा रही है पडित बनारसी गुरू को कि याद

रखेगे जिन्दगी भर—अगर जिन्दगी सलामत रही...।"

"क्या कहती हो महामाया !"

"बम्बई की ये बदजात-जात, कुजात औरते रानी-जैसी नही होती। ये तो अमरबेल-जैसी होती है गुरू महाराज ! जिस वृक्ष पर बढी उसे ले ही बैठी। और यह औरत—मिस रोज—शहर के सभी शातिर गुडे, लुच्चे-लफगे उसके पुराने चाहनेवाले है। जगरूप अगर रोज से जल्द ही अलग न हो जायगा तो मुझे तो अनिष्ट-ही-अनिष्ट दिखलाई देता है।"

"यही चिन्ता जगरूप गुरू की माईजी को भी चबाये जा रही है।"

"हाँ, तो जगरूप पर बहू के नाचने का प्रभाव पडा कुछ ?"

"माईजी कह रही थी कि उससे मारे लाज के कभी नाचा ही न गया—पति के सामने।"

"तो जगरूप मालाबार हिल वाले फ्लैट ही मे सोता है, सान्ता-क्रूज नही ? यह बडी बात है।"

"कहाँ की बडी बात !" खेद से लीलाधर ने रानी की आशा का खण्डन किया, "वे दोनो ही उस राँड़ की सेवा करती है—कि जगरूप गुरू दुखी न हो।"

"क्या ? बनारस की ब्राह्मणियो से मिस रोज़ सेवा लेती है ?"

"नीच-से-नीच ! जगरूप की पत्नी उसके लिए सेज सजाती है, उसके जूठे बरतन तक माजती है।"

"मै एक बात पूछूँ गुरु महाराज; सतियो की यह दुर्दशा देखकर क्या भविष्य मे स्त्रियाँ सती रहना पसन्द करेगी ?"

"वह भविष्य भयानक होगा महामाया,—परिवार की नज़र से...।"

"मैं तो यह जानती हूँ कि ताली दोनो हाथो से बजती है। पुरुष

शान्ति चाहता है तो उसका फर्ज होना चाहिए स्त्री का शान्ति-भग न करना। हर्गिज—हर्गिज ! बिना सत्यवान बने मियाँमिट्ठू लोग जो औरत को सावित्री, सुच्ची बनाना चाहते है निस्सन्देह वे परिवार-व्यवस्था को बिलकुल बिगाडकर छोडेगे।"

"आश्चर्य !" लीलाधर ने कहा "महामाया ! तुम तो जगरूप गुरू की घरवाली के पक्ष में बोल रही हो !"

"आपको मेरा कहना" रानी गभीर थी "शायद यह सब सोचकर तिरिया-चरित्तर मालूम पडे, कि जगरूप को पतन का पहला धक्का देने-वाली मै, कि उसकी नव-वधू के उजाले मे अन्धकार भरनेवाली मै—अब कैसी बाते कर रही हूँ।"

"आदमी के बारे में आदमी की राय समय, अक्सर, सुधार या बिगाड़ देता है महामाया !"

ठीक है गुरू महाराज, लेकिन मेरे मन मे तो जगरूप के लिए पहले ही जैसा भाव है। वह जहाँ भी रहे, नीके रहे। मेरे न रहे न सही। लेकिन मिस रोज़ की सगत मे उनकी जान की ख़ैर नही। इसलिए मै चाहती हूँ कि किसी-न-किसी तरह जगरूप का मन अपनी घरवाली की तरफ खिच जाय तो सब ठीक हो जाय। मै समझती हूँ बडा अच्छा हो अगर जल्द ही किसी दिन जगरूप अपनी औरत का नाचना देखे। उस पर इन गुणो का प्रभाव बेहद पडता है, यह भी सही है। तो, परीक्षा कर क्यो न देखा जाय? कौन जाने भगवती की इच्छा इसी रीति से उस बेचारी का कल्याण करने की हो।"

"अभी तो मै आया ही हूँ महामाया, देखो—प्रभु की क्या इच्छा है...।"

"आप मिस रोज से जगरूप को छुडा सके तो—जगरूप भले मेरे नाम पर थूके—मै सत्यनारायण की कथा सुनूँ—कथा। मिस रोज ? मै औरत हूँ और औरत को मज़े मे पहचानने की तमीजवाली

हूँ—यह औरत नही डकिनी है। मेडुकी-से कूल्हे, बिल्ली-सी आँखे, सूअर-सी चाल....।"

"ऐसी हरामी है मिस रोज ! सुना है वह जगरूप गुरू का कभी साथ ही नही छोडती। फिर ? किसी तरह जगरूप की बहू को नाचने पर तैयार भी करूँ तो किस भरोसे पर ?"

तबतक लीलाधर का सामान जगरूप के फ्लैट से रानी का नौकर ले ही आया—

"शाबाश !" रानी ने नौकर को शाबाशी दी—" उसी पश्चिमवाले कमरे मे गुरूजी का सामान जँचा दो। इनकी सेवा प्रेम से करना बेटा ! ये बड़े गुणी लोग है और मेरे गुरू महाराज है।" रानी ने अब लीलाधर से कहा—"पहला काम गुरू महाराज बबई में यह करे कि जगरूप की रक्षा करे जिसमें उसकी औरत की भी सुरक्षा है। इसके बाद—आप तो बबई में, फिल्म-लाइन मे नृत्य-गुरु बनकर बेबहा रुपये कमायेंगे।"

"जगरूप गुरू और उनके परिवार के प्रति मेरे मन में भी बडी करुणा है। कुछ उठा न रखूँगा महामाया ! लेकिन फिल्म-लाइन के बारे मे मेरी राय और ही है।"

"सो, क्या ?"

"फिल्मो से किसी का भला होते मुझे तो नज़र नही आता है। साथ ही, इसका प्रभाव जन-समुदाय पर कल्याणकारी नही पड़ रहा है...।"

"किस तरह ?"

"विलायती-फिल्मों, विलायती आचरणो, विलायती रस्म-रिवाज़ो का प्रदर्शन और दर्शन अपने देश के आचरणो और रस्म-रिवाजो से बिल्कुल भिन्न पड़ता है। हमारे यहाँ रास, नौटकी, लीला, तमाशा आदि मे धर्म की कथाएँ गायी जाती है या महा-पुरुषो के चरित्र प्रदर्शित

किये जाते है। पर इन अमरीकी-फिल्मो मे ? जाल, फरेब, ज़िना, डाकेजनी, सबके सामने बोसे-बाज़ी, 'लपटौवल'—देख-देखकर लोग जरूर एक दिन यही सब पब्लिक में करेंगे। तुम्हे मालूम नही ? सारे-के-सारे बदमाश इसलिये भी अमरीकी-फिल्मे देखने जाते है कि उनसे बदमाशियो की शिक्षा मिलती है।"

"मगर, गुरू महराज ! मैं तो देसी-फिल्मो की बात कह रही थी। विलायती चूल्हे भाड में जाये।"

"ये देशी फिल्मे तो और भी गयी-गुज़री गति की बनती है—दुर्गति-भरी। उन्ही अमरीकी-फिल्मो की भद्दी नकल। मुझे झखमार कर फिल्म देखना ही पडे तो मै इन देसियो की जगह अमरीकी-फिल्म ही देखूँ। क्योकि देसियो में देखिये तो देखने काबिल कुछ होता ही नही।"

"जो हो" रानी ने कहा, "मै तो यह जानती हूँ कि फिल्म-लाइन में पैसा है। होना चाहिये भाग्य !"

"क्या बात कहती हो, महामाया ! भाग्य ही हो, तो लात मारने से पृथ्वी फटती है और दफीने हासिल होते हैं। भाग्य ही हो, तो फिल्म-लाइन की ज़िल्लत-भरी ज़िन्दगी की जरूरत ?"

"ज़िल्लत ?"

"बेशक जिल्लत ! यह एक्टरी भी कोई पेशा है। किसी कवि ने उक्ति सोचकर कहा—'उदर निमित्त बहुकृत वेशम्' लेकिन एक्टर तो उक्त उक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण है। टके मिले—कोढी बनने को, छिनाल का पार्ट अदा करने को, मर्द ही नही, औरते तक तैयार है।"

"कहते हैं—एक्टिग भी एक कमनीय-कला है।"

"कमनीय नही, महामाया, कमीनी-कला कहो। मुझे नगवा (काशी) के पडित ने बतलाया था कि मनुस्मृति मे मनु महाराज ने व्यवस्था दे रखी है कि किसके-किसके-साथ एक्टरो के भी घर का दाना-पानी ग्रहण करने से भले आदमियो को बचना चाहिये।"

चलिये अच्छा हुआ, मनु महाराज का राज नही हुआ गुरू महराज ! नही तो न नाटक होता, न ऑपेरा, न फिल्म, न सिनेमा...।"

"और ये वस्तुएँ है, तो इन्सान की कौनसी भलाई हो रही है ? सिनेमा से ही सुनाना शुरू करो।"

"सस्ते मे लोग सुख पाते है, सिनेमा से।"

"सुख पहले तो शायद है ही नही ससार मे महामाया ! यहाँ पर आदमी दु ख ही भोगने को आता है। 'जीव सकल सताप के भाजन जग-माही'—गोसाईजी ने कहा है। इस 'सकल' के परे न एक्टर है, न डाइरेक्टर, न तुम, न लीलाधर कत्थक। सो, जब सन्ताप ही ध्रुव है तब सुख-रूपी माया-मृग के पीछे कोई पडे ही क्यो ? रही-सही शान्ति-सीता को सकट मे डाले ही क्यो ? फिल्म-कपनी ? महामाया। फिल्मो से मुझे ऐसी नफरत हो रही है कि हजार टके मासिक वेतन मिले तो भी—मै भूखे मरूँ लेकिन फिल्म के धन्धे मे न पडूँ।"

इसी समय घटी बजी, नौकर ने द्वार खोला तो कोई फैशनेबुल षोडशी खटाखट अन्दर दाखिल हुई।

"ओहो, कुसुमबेन ! आओ, आओ!" रानी ने आगतुक का आगे बढकर स्वागत किया "कैसे भूल पडी आज ? स्टूडियो में शूटिग आज नही थी—क्यो ?"

"मै स्टूडियो से ही चली आ रही हूँ।" कुसुम ने सुनाया—"ये फिल्म-डाइरेक्टर बडे ही मूडी आदमी होते है। और इनकी मूड क्या विधाता की इच्छा है—पूरी होना ही चाहिये। आज मुझ से कहा जाता है कि तुम्हे तो फिल्म में नाचना भी पड़ेगा। बस आधा मिनट, पर, इसी सेट में। पूछो—नाचना मैने कभी सीखा ही नही। अब एक ही हफ्ते में यह नामुमकिन मुमकिन हो तो क्योकर ? सो, मुझे रानी बेन की याद आयी और मै तुम्हारे पास दौडी-भागी चली आ रही हूँ कि मेरी बेन तो जानती ही है नाचना। मै मेहनत करने को तैयार हूँ।

सिखाना तुम्हे पडेगा रानी बेन।"

"लेकिन इसके लिए मुझे दोगी क्या ?"

'तुम्हारी शिक्षा से फिल्म मे मै नाच सकूँ तो जो कहो वही रकम नजर होगी ।"

"फिर भी ..?"

"पाँच सौ रुपये ?"

"बस! ख़ैर, पाँच सौ तो तुम तब दोगी कुसुमबेन जब मै सिखलाऊँ। लेकिन अगर मेरे भी उस्ताद आपको नाचना सिखलाना स्वीकार करे तो आप क्या दिला सकेगी ?"

अब कुसुम का ध्यान लीलाधर की तरफ गया जो चुपचाप दोनो की बाते सुन रहा था; साथ ही कुसुम के सौन्दर्य और यौवन की आँखो-ही-आँखो में समीक्षा भी कर रहा था। सचमुच वह परमशोभना थी। कुसुम के यौवन से मृत-सजीवनी वासन्ती-वायु-जैसी लहराती लीलाधर के पुराने भावुक-मन को लगी।

"आपके उस्ताद ?" कुसुम ने आश्चर्य मिश्रित अविश्वास से पूछा "मेरी ऐसी तकदीर कहाँ जो उनसे तालीम पा सकूँ। मै तो तुम्हारी ही कृपा से कृतार्थ हो जाऊँगी।"

"फिर भी, अगर मेरे गुरू महाराज सिखावें तो तुम क्या दोगी ?"

"जो तुम कहोगी—वही।"

"दो हजार रुपये मै तो कहती हूँ।"

"पर, गुरूजी कही हो भी...।" कुसुम ने पुन लीलाधर की तरफ स-सन्देह देखा।

"कहो गुरू महाराज!" अब रानी ने लीलाधर से पूछा "इन्हे आप नाच सिखला देगे ? एक मिनट का नाच...।"

"इस एक मिनट में महामाया !" लीलाधर ने कहा "मिनिट नही नाच ही प्रधान है। मिनिट क्या एक क्षण भी रियाजी गुणी ही

गुण दिखा सकता है। जैसे सरस गायक ही क्षण भर भी सरस स्वरालाप कर सकता है।"

"इसीलिए तो गुरू की जरूरत है।"—कुसुम।

"इसी बात की दो हजार गुरु-दक्षिणा है। बोलिए—यह मेरी सहेली और फिल्म-कम्पनी के मालिक की भी मलेका है। दो हजार ही नही कुसुमबेन आपको हजार रुपये मासिक की नौकरी भी कम्पनी मे कल ही से दिला सकती है। जल्दी बोलिए गुरू महाराज। यह बम्बई है, बनारस नही। यहाँ चट मँगनी, पट व्याह ही चलता है। अच्छे का मुहँ देखकर सवेरे उठे थे आप। निस्सदेह बनारस से चलते वक्त रास्ते मे आपको बछडे को दूध पिलाती कोई गऊ मिली होगी या भरा घडा लिए कोई सौभाग्यवती! अभी आप सोच ही रहे है? बोलिये!"

"तुम जानती हो महामाया," लीलाधर ने कहा "मै तुम्हारी बात टालता कभी नही।"

"चलो! बडे भाग्य!" रानी ने कुसुम को सुनाया "गुरू महाराज को फिल्म-कम्पनियो से चिढ है बहन! सो, इनसे अपने बँगले ही पर सीखने मे कोई हर्ज है क्या?

"जब मैने मंजूर कर लिया महामाया! तब क्या बँगला क्या कम्पनी जहाँ भी कुसुमजी चाहेगी मै तालीम दूँगा। कब से?"

"आज ही से।" कुसुम ने उत्सुकता से कहा—"सेट रुका रहेगा जब-तक आधा मिनट का नाच मै सीख न लूँगी।"

इसके थोडी ही देर बाद कुसुम प्रसन्न-मन चली गयी; लीलाधर से थोडी ही देर बाद मोटर भेजकर बँगले पर बुलाने का वायदा करके। लेकिन लीलाधर ने ताडा कि रानी उसी क्षण से कुछ मुर्झा-सी गयी। "क्यो?" लीलाधर ने सोचा "क्या इस पुरानी पतुरिया ने कुसुम के प्रति मेरे अन्तस का भाव—मोह-मुग्ध-भाव—ताड लिया? कैसी साँचे

में ढली तरुणी थी वह कुसुम ! जितनी देर यहाँ पर थी हवा में बहार-सी छा गयी थी। मगर, मुझे फिल्म का धन्धा ईमानन करना नही चाहिये था। थोडी देर पहले जब रानी ने कहा कि मै फिल्म-स्टूडियो मे डान्स सिखाने का काम स्वीकार कर लूं तब तो मैंने त्याग दिखलाया, दिखलाया आदर्श-चरित्र, उपदेश बघारे, लेक्चर झाडे, लेकिन ज़रा ही सी परीक्षा में पाखड का पर्दा फाश, कलई खुली धरी ! युवती हो और बाँकी--बस, लीलाधर के आदर्श तेज हवा के बादल बने। आदमी की कथनी और करनी में—अरे इस उम्र मे तो—सफेद और काले जितना अन्तर नही होना चाहिये।"

झेंपता हुआ लीलाधर रानी से बोला—

"महामाया ! तुम एकाएक गभीर और उदास क्यो हो उठी ?"

"गुरू महाराज !" रानी ने नीरस सुनाया "मै उदास हो गयी यह सोचकर कि आज मै इस काबिल न रह गयी कि आपने मेरे कहने से फिल्म का काम मजूर कर लिया होता ।"

"क्या कहती हो महामाया...!"

"महामाया क्या आज से अपने गुरू महाराज को जानती है ?"

रानी गाने लगी—"अरे—लगी नही छूटै—चाहे जिया जाये ! आशिक-मिजाज बिना ताक-झाँक रह ही नही सकता।"

"यह तुम्हे कैसे मालूम हुआ—महामाया ?" लीलाधर ने चिढकर पूछा।

"गुरुओं की सगत से !" रानी ने भी चिढे ही स्वर मे सुनाया।

"तुम्हे बुरा लगता हो, तो मै कुसुम का ट्यूशन छोड देने को तैयार हूँ—महामाया !"

"गुरू महाराज की बातें ! कहावत है—नयी आयी, पुरानी को दूर करो—हाँ।"

"कहावत है" लीलाधर भी महाविरे के अग से आया "नयी नौ दिन, पुरानी सौ दिन।"

"यह कुसुमबेन पूरी जादूगरनी है।" रानी ने सुनाया "फिल्म-कम्पनी का मालिक इसके पीछे यो लगा फिरता है जैसे नशे के पीछे पागलपन। जरूर गुरू महाराज वह तुम्हे अपने ही यहाँ अटका रखेगी।"

"ऐसा हर्गिज़ नही होगा महामाया!" लीलाधर ने गभीर-भाव से कहा—"कुसुम का डान्स ठीक करते ही मुझे जगरूप की धर्म-पत्नी के लिये शक्तिभर कुछ करना ही है। सौ-मे-सौ बार—मुझे विश्वास है—मैं जगरूप गुरू को उनकी अभागिनी सौभाग्यवती की तरफ आकर्षित करके रहूँगा।"

: ३० :

महादेवी किसी असाध्य-स्थिति को अर्से तक बर्दाश्त नही कर सकती थी। महीनो प्रेमा और महादेवी जगरूप के प्रसन्नतार्थ मिस रोज की नीच-से-नीच सेवाएँ करती रही, पर, परिस्थिति मे कोई आशा-प्रद अन्तर नही पडा। रोज बराबर सर-चढी-डोमिनी-नाचे—ताल-बेताल ही बनी रही। घर मे आते ही जगरूप की पत्नी पर वह यो रोब झाडने लगती गोया वह बेचारी नौकरानी से भी बदतर थी। पर प्रेमा साँस तक न लेती। छः महीने हो चले बबई आये—मिस रोज तो दूर, अपने पति के आगे भी बिना घूँघट काढे वह कभी न आयी। जो आदमी रोज़-जैसी नारी का दास बन सकता था—पति होने पर भी-उसे अपना मुँह दिखलाने मे प्रेमा ग्लानि से भर जाती थी। महादेवी प्रेमा के दुःख और मनोभाव मज़े मे पहचानती थी, पर, घटना-क्रम के आगे उसका वश कुछ चल नही पा रहा था। और वह बराबर ऐसे

अवसर की ताक मे रही जब कि मिस रोज पर ऐसा आक्रमण किया जा सके जिससे वह जगरूप की नजरो में सँभल ही न पाये। वह जानती थी कि जगरूप ने अपनी पत्नी को जितने दिनो से नही देखा है उतने दिनो मे प्रेमा मे बडा परिवर्तन हो चुका है। मिस रोज़ ? देखने वाली आँखे हो तो मिस रोज तो उसके पाँव की धूल तक नही। ऐसी राय महादेवी की अपनी 'नतोहू' के बारे मे दृढ थी।

प्रेमा के नृत्य-गुरु लीलाधर के आजाने से महादेवी और भी आश्वस्त हो चुकी थी। उसने लीलाधर से एक दिन कहा भी था कि जिस दिन रॉड रोज आउटडोर शूटिग के लिये बबई बाहर जायेगी उसी दिन वह जगरूप पर अन्तिम महामन्त्र मार सकेगी। और यह अवसर आते अधिक समय न लगा। मिस रोज कई दिनो के लिये किसी निजी काम से कलकत्ते चली गयी। उसके जाते ही लीलाधर ने जगरूप से कहा—

"गुरूजी, आज आप स्टूडियो से जल्द घर लौटते तो ठीक होता।"

"क्यो ?"

"आज बनारस से मेरी एक चेली आनेवाली है। ऐसा नाचती है कि देखकर आप प्रसन्न हो जायँगे।"

'वह चेली तुम्हारी 'माल' है कि पैसेन्जर पहले यह बतलाओ।"

"नग।"

"तुम लीलाधर अक्सर गलत बाते कह बैठते हो। मुझे मज़े में याद है एक बार तुमने कहा था कि अकबर या शाहजहाँ के ज़माने मे श्रीनाथद्वारा में एक कत्थक नाचनेवाला था। पर श्रीनाथद्वारा की बुनियाद तो औरगज़ेब के ज़माने में पडी थी। उसी तरह अब कह रहे हो कि वह चेली तुम्हारी नग है...।"

"नग।" लीलाधर ने पुन. कहा।

"अरे भाई, नग माने पहाड़, नग माने हाथी, नग माने नगीना।

अब तुम्हारी चेली अगर पहाड या हाथी हो तो ? जरा ऐसी बात करो जिसमे एक ही अर्थ हो।"

"नग माने अँगूठी का नगीना। आप आठ बजे तक आ जाये—फिर चाहे थोडी देर बाद चले जायँगे। आपके स्थान पर मै- सारा साज-सामान रेडी रखूँगा। आते ही नृत्य शुरू हो जायगा।"

"किस रग का नाच सीखा है उसने ?"

"माने...?"

"मेरा मतलब यह कि वह मणिपुरी नाच नाचेगी, या कर्नाटकी, भरत-नाट्य या कत्थकी ?"

"मैने उसको नये रग का एक नाच सिखाया है। उसका नाम है नव-घूँघट-नृत्य। आप देखेगे तभी समझ सकेगे कि मैने कितनी मेहनत इस चेली पर की है।"

"फिलम में काम करेगी ?"

"घर-गृहस्त लोग है..।"

"आज भले ही फिलम-लाइन में घर-गृहस्थ औरते नही के बराबर हो," जगरूप ने हलकी गभीरता से सुनाया "लेकिन कल उन्ही औरतो से ये सब स्टूडियो भरी रहेगी।"

"आपकी बाते ! आप समझते है जिस धन्धे मे आज तवायफे भरी हुई है उसीमे कल गृहस्थ औरते भर जायँगी ?"

"बिलकुल...?"

"क्यो ?"

"क्योकि इस लाइन मे रुपये पुष्कल है। और औरते चाहती है गहने और आराम—जो रुपयो से मिलते है। औरत अच्छी हो या बुरी—हजार-में-हज़ार—दर-दागीनो पर पसीज जाती है।"

"हमारी राय है, गुरूजी" लीलाधर ने तीखे-स्वर में कहा—"अभी असिल औरत आपने देखी नहीं है।"

"औरतो को चराता रहता हूँ; रोज़ ही चर्के देता, चग पर चढाता; रग पर चढाता और तुम कहते हो देखा ही नही। खैर, मैं आठ बजे आऊँगा और देखूँगा कहाँ की रम्भा-उर्वशी तुम्हारी शिष्या है।"

जगरूप पर यह जाहिर होता कि नाचनेवाली उसीकी धर्मपत्नी होगी तो यो न बनकर बात किसी और ही गौ बनती। क्योंकि उसकी आदत दूसरी स्त्री चाहने की थी। दूसरी हो भले साँचे में ढली न भी हो। अपनी औरत हुई नही कि जगरूप को छीके आने लगती। मिस रोज़ बाहर है। ऐसे मौके पर अगर लीलाधर की शिष्या क्षण-भर मनोरंजन का मस्त-विषय बन जाय तो क्या ही कहने। सो, अच्छी तरह से शराब पीकर वह लडखड़ाता हुआ फ्लैट पर आया। दूसरी मज़िल के ज़ीने ही पर उसे तबले की आवाज़ और किसी के नाचने का छूमछनन सुनायी पड़ा। मुख्य कमरे मे पहुँचकर जगरूप ने देखा लीलाधर तबला बजा रहा था और कोई औरत राजपूती ड्रेस में, घूँघट काढे नाच रही थी। बिना डिस्टर्ब किये जगरूप चुपचाप लीलाधर के निकट बैठ गया।

"इसी नाच का नाम है—'नव-घूँघट नृत्य'। इसके बोल है—

घूँघट को पट खोल री, तोहे पीउ मिलेंगे।"

कबीरदास के प्रसिद्ध पद के आरभ की इस पंक्ति को लीलाधर ने नाच के बोल की तरह मुँह से, कई तरह से—परन के बोलो के साथ अदा किया। लीलाधर के बोलो के साथ ही वह नाचनेवाली विभिन्न हाव-भावो से, प्रभाव-पूर्ण ढंग से, कबीर के पद का वातावरण घूँघट के पट और पगो से प्रसन्न प्रकट करने लगी। जगरूप ने देखा नाचनेवाली सुडौल थी। कटि, नितब, उरोज उस राजपूती ड्रेस में घूँघट पट के बावजूद अपनी छटा अलग-अलग दिखला रहे थे। जगरूप को नाचनेवाली इतनी पसन्द आ गयी कि उसका मुख किसी-न-किसी

तरह देखने को उस मस्ती मे वह उतावला हो उठा । उठकर आवेश से उसने नाचनेवाली का हाथ पकड लिया । नाचनेवाली फिर भी पावो से थिरकती ही रही । बिगडा लीलाधर भी नही, अलबत्ता उसने जगरूप को यह जरूर सुनाया कि- -"गुरू ! हाथ पकडा है तो शोभा और बडाई निभाने मे है ।"

"अबे हरामी !" न जाने कहाँ से मिस रोज कमरे मे फट पडी, शराब के नशे में धुत्त, फटी-फटी आँखें "मैं बाहर नही गयी थी बेटे ! दो स्टेशन आगे से लौट आयी थी यह जानने के लिये कि मेरी गैर-हाजिरी में तू क्या-क्या गुल खिलाता है । यह रण्डी कौन है ?"

"खबरदार जो कच्ची जबान बोली—जबान खीचकर रख दूँगा ।" लीलाधर ने तमककर सुनाया । इसी समय जगरूप की माई महादेवी क्रोध ने तमतमायी, हाथ मे नारियल का झाड़ू लिये अन्दर से बाहर आ गयी और मिस रोज पर टूट ही पडी—

"डायन कही की !, निकल मेरे घर से !"

महादेवी का उग्ररूप देखते ही रोज अगर तेजी से फ्लैट के बाहर भाग न गयी होती, तो नि सन्देह अनगिनत झाडू उस पर बरसते । लेकिन इन सबसे जगरूप बहुत ही हतप्रभ हुआ । इस तरह मिस रोज़ के मुखिल होने का अन्देशा तक उसे नही था । मिस रोज को देखते ही जगरूप के हाथ से नाचनेवाली का हाथ ऐसे छूट गया जैसे पुलीस वाले को सामने देख चोर के हाथ से पराया माल छूट पडे । महादेवी रोज पर झाडू लेकर झपटी तो पर महादेवी थी (उसकी माई) कि वह नशे में भी सावधान रहा—धृष्टता से बचा । पर वहाँ रुका वह भी नही । शरीर के पीछे छाया की तरह वह रोज के पीछे ही नीचे उतर गया—यह भुनभुनाता हुआ कि—

"तुमने अच्छा नही किया । अब मै तुम लोगो का मुँह भी जो कभी देखूँ ।"

"बचवा ! भैया !" करुण महादेवी पुकारती ही रही पर जगरूप अबाध चला गया।

और अभागिनी वह नाचनेवाली कटे रूख की तरह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

: ३१ :

उक्त घटना के तीसरे दिन की बात है। दिन दो बजे लीलाधर के कमरे मे जाकर रानी ने देखा अभी वह सो ही रहा था। कम-से-कम चार बार और वह आ कर देख गयी थी, एकाधिक बार को उसने उसको झकझोरे भी दिये, पर, पिछली रात स्टूडियो से क्या जाने क्या खा-पी कर लडखडाता हुआ वह लौटा था और आते ही जो पडा सो पडा-ही-पडा था। रानी के चेहरे से करुणा और व्यग्रता फूटी-सी पड़ती थी—

"गुरूजी ! ओ गुरूजी !"

"क्या है ? कौन है ?" बारे इस बार लीलाधर का मुँह फूटा; उसने अँगडाई लेने की कोशिश तो की, पर देह उसकी, मानो अँकड़ गयी थी—

"उठिये ! —गुरूजी ! मै आपके हाथ जोडती हूँ। हे मेरे राम ! दुनिया मे क्या-क्या हो गया, और इनकी नीद ही नही टूटी ! गुरू जी !"

"सुन रहा हूँ महामाया !" लीलाधर अब अधिक चेतन्य था। "रात को स्टूडियो मे सालो ने शरबत में शराब मिला दी थी—सारी देह टूट रही है मेरी। बात क्या है ?"

"इतनी बडी बात हो गयी और आप पूछते है बात क्या है ! जगरूप की जोरू जाती रही ...।"

"जाती रही माने ?" लीलाधर ने इस लहजे से पूछा जैसे सत्य समझ में आने पर भी वह स्वय को झुठलाया चाहता हो।

"जाती रही माने—अभागिनी जान से जाती रही।" कहकर रानी फफक-फफक कर रोने लगी। साथ ही लीलाधर इस तरह उछल कर पलग के नीचे आ रहा जैसे पता चल गया हो कि बिस्तर में साँप है।

"कब मरी ?"

"सवेरे ११ बजे !"

"और तुमने मुझे अब जगाया ? क्या—महामाया.. !!"

"मै आपको चार घटे से जगा रही थी, और—आप ज़रा देर और न उठते तो मैने तो डाक्टर बुलाने का निश्चय कर लिया था।"

"ओह ! अभागिनी !" होश में आते ही लीलाधर भावुक हो उठा "मै जानता था कि यही एक दिन होकर रहेगा। इसी होनी की दिशा मे उसका भविष्य अर्से से अबाध बढा चला जा रहा था।" मै अभी जाता हूँ महामाया ! उस साध्वी के शव को कधा लगाना मेरा परम पुनीत कर्त्तव्य है।"

"ग्यारह बजे से एक बजे तक मुर्दा पडा रहा। ढुँढ़ाई होने पर भी जगरूप का पता नही लगा। आखिर दयालु होकर मालाबार पहाड के भैया लोग जगरूप की बहू की लाश सोनापुर ले गए।"

"और जगरूप गुरू नही आए ?"

"उनका पता ही न चला। मिलते भी तो मुर्दा फूकने, प्रेत-कर्म करने दौड़े हुए आते—मुझे तो विश्वास नही।"

"तो ?" हैरान लीलाधर ने पूछा, "तुम समझतो हो कि जगरूप गुरू दाग़ नहीं देंगे ? देगा कौन तब ? उनके यहाँ और है ही कौन ?

किस श्मशान में गए होगे भैया लोग ? महामाया ! मुझको जाना ही चाहिए।"

"वे लोग चौपाटी की तरफ गए है, उधर तो एक ही सोनापुर है चर्नी रोड स्टेशन से जरा आगे।"

तुम्हारे पास घूँघरू है ? जरूर होंगे—महामाया ! अपने घूँघरू मै स्टूडियो भूल आया हूँ...।"

'घूँघरू क्या होगा गुरूजी ?"

"सोनापुर जाकर प्रेमा की चिता के सामने मै नाचूँगा कि उसकी स्वर्ग जाती हुई आत्मा सन्तुष्ट हो। कि इस दूर देश मे उसका और कोई भले ही न हो, अभागा गुरू तो है।"

रानी ! घुँघरुओ की जोडी लेकर जबतक आयी तबतक लीलाधर कत्थकी पहनावे मे—जोधपुरी पगडी, जरी की अचकन, चूडीदार पाजामा और कमर में जरी का दुपट्टा—सज कर तैयार था। चटपट घुँघरुओ को पावो में अच्छी तरह बाँध, नगे ही पावँ लीलाधर श्मशान की तरफ तेज़—मगर ताल से चला। उधर रोते-रोते रानी की हिचकियाँ बँध गयी।

वालकेश्वर रोड, चौपाटी रोड, सैण्डहर्स्ट ब्रिज तथा क्वीन्स रोड पर चलनेवाले लोगो ने आश्चर्य से चकित लीलाधर को देखा। वह वीर-रस की कविता के लहज़े में फिलमो के विरुद्ध अव्यवस्थित बाते व्यवस्थित-भावों से बकता चला जा रहा था—

"भैयो सालो ..!" एक गुजराती ने व्यग्य से सुनाया। उसका मतलब यह था—यू०पी० वाले ऊलजलूल ही होते है।

"कैसा बहुरूपिया !" एक मारवाडी ने अन्दाज लगाया।

"बहुरूपिया नही, सेठजी !" एक मराठे ने सशोधन सुनाया, "यह तो महाराज शिकारपुर कलाँ है।"

एक पजाबिन ने लीलाधर को पागल जान अपने पावँ चलते बच्चे को गोद मे खीच सीने से चिपका उस तरफ से मुँह ही फेर लिया।

लीलाधर अजीब अदा से नाचता हुआ ललकार रहा था—

ज़हर है ! ज़हर है !!
सुनो यार ! फिल्म का रोज़गार
कहर है ! कहर है !
धृकिट धा ! धृकिट धा !
धृकिट, त्रिकिट धा !
अनाचार का है यह ब्लैक-बाज़ार।
इल्म भी ब्लैक है, फिल्म भी ब्लैक है
सारा डेवलपमेन्ट डार्क—यार !
दुराचार का है यह ब्लैक-बाज़ार।
कहर है ! क़हर है !
फ़िल्म का रोज़गार
ज़हर है ! ज़हर है !
भारतीय-सस्कृति के प्राण सत,
फिल्मो की जड़-बुनियाद असत,
कुतियाँ इसमें पाली जाती है।
सतियाँ इसमें घाली जाती है।
धृकिट, धा ! त्रिकिट धा !
धृकिट, त्रिकिट, धा !
धर्म जाय भाड़ में ! कर्म जाय भाड़ में !
जनता की, तरुणो की शर्म जाय भाड़ मे !
आये कलदार !
सौ जहाँ लगे वहाँ हज़ार !
ऋषियो का देश यह—धिग्-धिग् धा !
मुनियों का देश यह—धिग्-धिग् धा !
इल्म भी ब्लैक है
फ़िल्म भी ब्लैक है—सारा डेवलपमेन्ट डार्क—यार !

फिल्म का रोजगार
जहर है ! जहर है !
सातो सुरों के बीच इसमें असुर
(प्रोड्यूसर, डाइरेक्टर, डिस्ट्रीब्यूटर)
सेते है सुन्दरी-सुरा !
भाई रे, भलो ही से होता है बुरा !!
रहता चिराग़ ही के नीचे अँधेरा है !
प्रोड्यूसर, डाइरेक्टर, डिस्ट्रीब्यूटर
सब-के-सब अपराधी-ठन्डे है।
जाने राम...!
ये हराम-लीला के पडे है।
खाना, पीना, जूआ—आदर्श मौज है,
सर फिरे फिलम-कलाकारो की फौज है।
धर्म जाय भाड़ में ! कर्म जाय भाड़ में !
नीति का विधान, ज्ञान,
देश का भविष्य, वर्तमान जाय भाड़ में !
ख़ानदान, सभ्यता, जहान जाय भाड में !
आये कलदार !
सौ जहाँ लगे वहाँ हजार !
ऋषियो का देश यह—धिग्-धिग् धा !
मुनियों का देश यह—धिग्-धिग् धा !

लीलाधर जब श्मशान पहुँचा तो उसे वहाँ आठ-दस भैये, जगरूप की माई, मिस रोज और जगरूप नजर आये और नजर आयी आग पाने के लिए तैयार चिता पर प्रेमा की लाश। लेकिन उपस्थित लोग चिता के नही, जगरूप और मिस रोज के निकट थे। लीलाधर ने

देखा जगरूप की वृद्धा माई क्रोध और घृणा से भरी हुई उसको फटकार रही थी—

"तू तीन-तीन बार आदमी भेजने पर भी नही आया। बराबर कहलाता रहा कि शूटिंग चल रही है। ऐसी तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अब बोल, तेरी नीयत क्या है ? चिता को आग देगा या यह भी तुझ से न हो सकेगा ? बोल, मैं कुछ भी सुनने को तैयार हूँ अभागे! बहू के साथ मै भी मर चुकी हूँ। बोल, दाग देता है या 'पँचलकडियाँ' ही हो ?"

"माई!" जगरूप ने सुनाया—"मेरा इस सबमें विश्वास ही नही है। मै क्रिया करूँ, दस दिन घर बैठूँ, सर मुँडाऊँ, अपना धन्धा चौपट करूँ,—यह सब मुझसे नही होने का।"

"डूब मरो! गुरूजी, डूब मरो!" आगे बढकर लीलाधर ने कर्कश-कठ से कहा—"किस तीर्थ के, किस कुल के, किस पद के होकर आप ऐसी बाते कर कैसे रहे है जैसी आपको करना नही चाहिये। नशा ने, इस नारी ने आपकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है।"

लीलाधर अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि जगरूप ने तेज तडाकदार तमाचा उसके गाल पर जडा। साथ ही, निर्लज्जता से तमककर, उसने महादेवी से कहा—"तुमने बुलवाया था इसलिये शूटिंग छोडकर मै आया हूँ। मै दाग नही देनेवाला—मुर्दा चाहे जैसे फूका जाय।"

इस पर श्मशान मे उपस्थित सारे देसवासियो ने एक स्वर से कहा—"छि! छि! छि!!" जिससे जगरूप और भी उत्तेजित हो उठा। उसने मिस रोज का हाथ पकडकर खीचते हुए सुनाया—"चलो चले--इस 'चिराइन' श्मशान मे नशा मुर्दे-सा ठडा हुआ जा रहा है।"

और वह बाहर की तरफ बढा।

"अभागे! चाण्डाल!" अभिशाप के लहज़े में महादेवी ने कहा—"तू भी मरेगा। मै कहे देती हूँ। तब तक मै नही रहूँगी। और जब तू मरेगा तब तेरे भी मुहँ पर आग रखने को अपना कोई नही मिलेगा।"

हतभागिनी बुड्ढी क्या बक रही थी, बिना सुने ही जगरूप माशूका के हाथ-से-हाथ मिलाये हुए उसी निर्लज्जता से श्मशान बाहर चला गया जिस निर्लज्जता से परम पातकी, तीर्थ निकट पाकर भी, कायरता-वश बिना अवगाहन किये चला जाय। इस दृश्य ने जैसे श्मशान के वातावरण में और भी स्यापा भर दिया। लोगो ने देखा महादेवी जगरूप के जाते ही पीली पड गयी। लगा वह बेहोश होगी। पर, उसने स्वय को बहुत सँभाला। फिर भी, वह खडी न रह सकी। तबतक परिस्थिति-परख पाँच पचो ने मिलकर अभागिनी प्रेमा की चिता को आग दे दी। और आग दिव्य-जली जनाब! दुबली-पतली स्नेह-मयी प्रेमा की देह सर्व-दुःख-दाहनी आग मे कपूर की तरह सुगन्धित जलने लगी। लीलाधर श्मशान में नाचने के लिये आया था, पर, वहाँ की कारुणीक-घटनाओ के प्रवाह मे उसके पावँ उखड गये। वह एक स्थान पर बैठ गया और करुणा से भर कर कुछ गुनगुनाने लगा और गाने लगा,—किस समय कौन राग गाना चाहिये, यह मर्यादा भुलाकर श्याम या यमन कल्याण के समय वह भैरवी गाने लगा—

नैहर..... छूटो......जाय !

बालम......मोरा...रे! नैहर . छूटो...जाय !

लीलाधर ने इस विदग्ध-तन्मयता से गाया कि प्रेमा की लहकती हुई चिता की लाल लपट भी वैसे ही स्तम्भित-सी नज़र आने लगी जैसे वहाँ पर उपस्थित लोग करुणा से स्तम्भित थे। पश्चिम और दिवाकर डूब चुका था और क्षितिज की लाली ऐसी नजर आ रही थी मानो चिता जल रही हो। महादेवी की नज़र सहसा प्रेमा की चिता से पश्चिमा के आँगन मे डूबते सूर्य पर पडती है। बहू मर चुकी; बेटा

अँगूठा दिखाकर रण्डी के साथ चला गया, उस बूढी, कुलीना, काशी की ब्राह्मणी को महाश्मशान में छोड कर! वह—जिस पर महादेवी ने जीवन के रंगीन सपने सँजोये थे। लिखत सुधाकर लिखिगा राहु।

"बेटा!" चिता ठडी हो जाने पर महादेवी ने गिडगिडा और हाथ जोडकर लीलाधर से कहा—"अब इस परदेस मे तुम्हारा ही सहारा है.. ।"

"मै अभी जगरूप गुरू को कान पकडकर आपकी सेवा में हाजिर करता हूँ माताजी!"

"नही बेटा! उससे मैने भर पाया। बहू मर गयी, मै भी मर गयी। तुम मुझे बनारस पहुँचा दो। अब इस सोनापुर-नगर मे एक क्षण भी ठहरने में मेरा दम घुटता है।"

"आप जो हुक्म देगी—लीलाधर सर-आँखो बजा लायेगा। आप मुझे जगरूप ही मानिये माताजी! मैने बम्बई देख ली। चना-चबेना गग-जल, जो पुरवै करतार, काशी कभी न छोडिये विश्वनाथ दरबार। मै खुद काशी लौट जाने को व्याकुल हूँ।"

मालाबार हिल के फ्लैट में लौटकर महादेवी तुरन्त ही बोरीबन्दर स्टेशन जाने को तैयार हो गयी। सामान के नाम पर, एक धोती और चादर के अलावा और दाम के नाम पर काशी तक के किराये के सिवाय उसने कुछ भी नही लिया। काशी से बम्बई आने के पहले बहू के, अपने और कुल-देवता के जबरदस्ती हडपे हुए प्राय लाख रुपये मूल्य के दागीने भी उसने उसी फ्लैट में छोड दिये। अलबत्ता स्टेशन आने के पहले चाबियो का गुच्छा जगरूप के यहाँ एक विश्वासी व्यक्ति से उसने भेजवा दिया था। लीलाधर को भी स्टेशन तक ही उसने कष्ट दिया—"बेटा, टिकट दिलाकर गाडी मे बैठा दो—मुझे जहाँ पहुँचना है, पहुँच जाऊँगी। जीते रहो।"

: ३२ :

"तो ?" ट्रेन चलते ही महादेवी विचार-सागर मे निमग्न हो गई—"तो ? सारा घरौंदा बिगड गया ? ऐसा कि बनाये न बने। जैसे दैव ही प्रतिकूल हो गया हो। मिट्टी ही बन गई वह वस्तु जिसे करम-जली महादेवी ने छूया। यह मेरा भैया ही—लाख मे एक लड़का—लेकिन देवाय-न-विप्राय, घर-का-न-घाट-का। जब सोचेगा उलटा ही सोचेगा। पर, ऐसा क्यो हुआ ? ऐसा तो किसी पाप ही में होना चाहिये ? पाप ? लो !" महादेवी को याद आया—किस तरह अनुचित उपायो से उसने बेटी व्रजरानी से जगरूप को पाया था। जगरूप का पिता तो, बराबर अपने घर ही रहा और व्रजरानी पेट-से हो गई थी। वह जानती थी कि जो कुछ हुआ उचित-विधि से नही हुआ था, पर, देवरानी के द्वेष या अधिकार के मोह मे उसने गलत सन्तान प्राप्त किया था—"पाप ? पाप तो बुनियाद ही मे था। कुल का होता तब तो कुलीनता दिखलाता ? यह तो 'राकस' है, दुष्ट-सन्तान है। यह बबूल—इससे रसालता की आशा ही मूर्खता है।"

महादेवी ने आँखे खोलकर देखा डिब्बे मे बडी भीड थी, बडी गर्मी। वह पसीने से शल थी। थर्ड क्लास का डिब्बा, लबी बोगी, सौ से कम आदमी उसमें शायद न रहे हो, लेकिन महादेवी इतनी अकेली थी—और असहाय—कि अकथनीय। वह अभी तक गोया श्मशान ही मे थी। वह पुन. विचार-सागर-मग्न हो गयी—"इस कुलागार के लिए, इस जारज के लिये, इस राकस के लिये उसने भगवान के घर चोरी की ! बिना कॉपे, बिना डरे ! क्यो ? सोचा था भगवान तो पत्थर के है—मौन-मूक। वह चिल्लायेंगे थोडे ही। अधम नारी ! भगवान जब आदमी से बोलते है तब उसीकी भाषा मे बोलते है। जगरूप के रूप मे भगवान बोले—जैसे जमराज, महाकाल बोले हो। लेकिन अन्तर्यामिन् ! तुममे कुछ छिपा तो नही है। मैने अपने लिये नही, उसी जारज जगरूप के

लिये देवता के आभूषण चुराये थे। आखिर में मै उन्हे बबई ही छोडती आयी हूँ। मोह होता तो सग लाती। जीवन के अन्तिम दिनो मे सेठानियो-सी सन्तुष्ट रहती। पर, गहने तो जगरूप के लिये थे। जगरूप ही जब अपना नही, तब महादेवी का क्या जीना, क्या मरना। ओरी हतभागिनी ! तू बाजी हार चुकी है। सो भी बहुत बुरी तरह।"

"अम्माँ, टिकेट तो दिखलाना !" टिकेट चेकर ने इस बार महादेवी को सचेत किया। उसके हाथ से टिकेट लेते वक्त टिकेट कलेक्टर को उसकी अँगुलियो से अदृश्य ज्वाला की लपटे निकलती मालूम पड़ी।

"अम्माँ, तुझे कहाँ जाना है ? तेरे तो तेज बुखार चढा हुआ है।"

"बुखार ? नही बेटा, मै ठीक हूँ। मुझे कुछ भी नही हुआ है।"

टिकेट कलेकटर ने टिकेट देखकर जाना कि वह काशी जा रही थी। महादेवी तो पुन शून्यगत हो गयी थी। परन्तु पश्चात्ताप, पीडा, उसकी जारी ही थी। उसे इसी स्थिति मे जरा-सी झपकी आई तो सपने मे उसने देखा कि भदैनी-भवन की ड्योढी पर वह खडी है। साथ ही रामशकर के परिवार के सभी प्राणी वही है और उसकी तरफ घृणा, तिरस्कार की दृष्टि से देख रहे है—"जा तू वही।" रामशकर ने उसे दुत्कारा या उसकी पत्नी ने, महादेवी समझ न पायी। उसे केवल तिरस्कार-स्वर सपने में सुनाई पडा—"जिसके लिये तूने देवता तक की चोरी की—जा तू उसी के पास ! यह घर तेरा नही है। निकल चोट्टी कही की !"

और सपने में महादेवी भदैनी-भवन के द्वार पर गिर पडी। उसकी आँखे खुल गई। क्योकि वह सीट से नीचे गिर पडी थी। कई यात्रियो ने उसे सँभाला —"ऐ !" वह पुन विचारो में डूबी—"भदैनी-भवन मे मेरा स्वागत यो होनेवाला है? और क्यो न हो ? मै ऐसे ही व्यवहार की अधिकारिणी हूँ। तो ? तो मुझे काशी पहुँचने पर भदैनी-भवन जाना भी चाहिए ? कि ? कि ? फिर मै जाऊँगी कहाँ ? कहाँ जाऊँगी

उपहास कराने के अलावा वह क्या पायेगी। उसे तो गगा ही में जाना मुनासिब है। भदैनी-भवन जायगी मानवती महादेवी ? गलत बात। महादेवी ! अब तो तुझे गगा की गोद ही मे मोद मानना मुनासिब होगा। तू सफल होगी—छलाँग लगाकर देख तो। तू उस पार पहुँच जायगी। काश्यां मरणे मुक्ति —अभागिनी ! कूद ! मर ! हर ! हर ! हर !"

साहस बटोरकर महादेवी पुल पर से गगाजल मे कूद ही पडी।

: ३३ :

मस्त-मुखी मिस रोज को भुजाओ में भर कर जगरूप चूमने की चेष्टा कर रहा था। बात मालाबार हिलवाले फ्लैट की है जिसे कल ही महादेवी खाली कर गई थी। फ्लैट के उस कमरे मे चारो ओर सामान बिखरा हुआ पडा था जिसमे एक बहुत बडा स्टील ट्रक भी था। उसी पर रोज को भुजाओ मे लपेटे जगरूप विलास-चेष्टा कर रहा था—

"मैं कहती हूँ नही !"

"बस एक 'किस'!"

"मै कहती हूँ छोड़ दे मुझे ! मै तुझे पहचानती हूँ। जब तक ये दागीने सान्ताक्रूस नही पहुँचाये जाते—मेरी कबाड़ मे नही रखे जाते—मै तुझ से बात तक करने को तैयार नही। तू हरामी कहा करता है कि मुझ से लव करता है, पर, गहने देने की बात उठी तो तेरा चेहरा उतर गया। मतलबी !, तू ले—रख ये गहने अपनी मैयत के लिये.. ।"

"कैसी बात बकती है—बेवकूफ !" जगरूप ने सनककर रोज़ को चूम ही लिया जिससे वह औरत फनफना उठी—"ये हजरत ! जान से हाथ धोना पड़ेगा मेरे मन के खिलाफ खेलेगा तो। आज मेरा-तेरा

निपटारा ठहरा—इस पार या उस पार। तू रख इन दागीनो को साँप की तरह कुण्डलो के नीचे दबा कर। मुझे तो बख्श।"

"मैने कब कहा कि दागीने तुम्हारे नही ? ले जाओ। मै तो यह कह रहा था कि अपनी गाडी सफाई के लिये बाम्बेगराज गई है। दागीनो की बात है, काफ़ी रकम है—टैक्सी से ले जाना—।"

"मै टैक्सी से ले जाऊँगी। तू बहाने न बना। यह बबई शहर है—जगल नही। न तेरा बनारस ही कि दिन-दहाडे कोई लूट ले जाय।"

"यहाँ टैक्सी भी तुरन्त कहाँ धरी है। तबतक हल्ला मचाकर मुहल्लेभर को तुम पता कर दो कि जगरूप के फ्लैट में खजाना निकल आया है।"

"मै टैक्सी ले आती हूँ—चौपाटी-स्टैण्डस से। पर, गहने मै अभी ले जाऊँगी। बोल लाऊँ ?"

"मै नही कब कहता हूँ।"

सुनते ही मिस रोज खटाखट ऊपर से नीचे उतर टैक्सी की तलाश मे चल पड़ी। तीनबत्ती पर एक भी टैक्सी उसे न मिली। लाचार वालकेश्वर रोड के नीचे चौपाटी की तरफ वह चचल चली।

इधर मन से जगरूप उतनी बड़ी रकम मिस मरियम रोज को देना कदापि नही चाहता था। उसने जो कुछ भी कहा था विवशता से। क्योकि रोज़ के मोह-जाल मे उसका मन जकड गया था। रोज़ के जाते ही स्टील ट्रक से उठकर, उसे खोलकर जगरूप ने अन्दर का सामान ध्यान से देखना शुरू किया। उसमे जडाऊ गहने थे, उसमे सोने के वज़नी-वजनी गहने थे, उसमे चाँदी के पसेरियो बरतन थे, उसमें कुछ नही तो लाख रुपये का माल था, उसमे जगरूप के प्रिय परिवार का सर्वस्व ही तो था। उतनी रकम कमाना सबके लिये आसान काम नही था। रकम मिस-रोज को दे दे—और जगरूप ! भला ऐसा भी कभी हो सकता है। पर, ऐसा ही होने जा रहा है।

इसी समय नीचे हार्न सुनायी पडा। जगरूप ने झाँककर देखा कुसुमबेन अपनी गाडी से उतर रही थी। असिल मे इन दिनो वह कुसुमबेन पर डोरे डाल रहा था। क्योंकि वह कुलीन और दुर्लभ एक्ट्रेस थी; युवती, सुन्दरी वगैरह तो थी ही। वह चलन की बद भी ऐसी नही थी। सो, जगरूप के हत्थे चढ ही नही रही थी। इधर रोज़ के कारण वह ठीक तरह से उस पर चारे भी नही डाल पाता था। वह तो एक ऐसा पिक्चर उसे डाइरेक्ट करने को कल ही मिला था जिसमे नायिका कुसुमबेन होनेवाली थी। अब जगरूप को भरोसा हुआ कि कुसुमबेन उसकी अकशायिनी बनकर रहेगी। मगर मालाबार हिल वाला पता उसने कुसुमबेन को दिया नही था। आयी है तो फँसने आयी है—जगरूप ने सोचा—मिस रोज़ बिलकुल बासी, यह बिलकुल ताज़ी, वह अकुलीना, यह कुलीना—फैशनवाली, अपटुडेट युवती। एकाएक जगरूप के मन मे कोई बाँकी आइडिया आयी। ऐसी कि वह मन-ही-मन परम-प्रसन्न हो उठा। क्या वह आइडिया कुसुमबेन-विषयक थी ? ना। वह थी उन दागीनो को मिस रोज के चगुल से बचाने के बारे की।

"कुसुमबेन !" आते ही जगरूप ने कहा—"बडे वक्त पर आयी। मेरा एक काम है, मै एक बाक्स देता हूँ—उसे अपने घर ले जाकर रख दो। दो-एक दिनो बाद मै ले लूँगा।"

"आप चले मेरे साथ, वहाँ बापूजी है, जगह मेरे बँगले मे बहुत है। है क्या बाक्स मे ?"

"पेंटिग का सामान, दो-चार पत्थर की पुरानी मूर्त्तियाँ—यह सब वस्तुएँ मिस रोज के नज़दीक सुरक्षित नहीं है। दया करो, तुम मोटर पर चलो—मै बाक्स लेकर आता हूँ।"

"अच्छा हो आप भी चले। नही तो बापूजी यही सोचेंगे कि मै अपनी सनक मे फिजूल की चीज़े बाजार से उठा लायी हूँ। नजदीक ही तो मेरा घर है। नहीं तो बापू के नाम एक पुर्जा ही लिख दीजिये।"

"यह मैं कर देता हूँ। तुम नीचे चलो। बाक्स और पुर्जा लेकर मै अभी आता हूँ।"

कुसुमबेन के नीचे जाते ही जगरूप ने स्टील-ट्रंक का सारा सामान चमडे के एक बडे बैग में उलट दिया और ट्रक में पत्थर की शिला रखकर उसे पूर्ववत् यन्त्रित कर दिया। इसके बाद कुसुमबेन के पिता के नाम उसने एक छोटा-सा नोट लिखा कि बाक्स उसका है जिसमें पेंटिग का सामान और कुछ मूर्त्तियाँ है। इसके बाद चमडे का बैग सावधानी से बन्द कर, ताला लगाकर, लेकर वह नीचे आया। सारी लेई-पूँजी लेकर कुसुमबेन जब आँख के ओझल हो गयी तब जगरूप सन्तुष्ट-भाव से फ्लैट में लौटा।

इधर टैक्सी तलाशते-तलाशते मिस रोज का विचार बदला। उसने सोचा—जगरूप के गहने बहुत है और यो उतावली मे लेने से वह क्या जाने क्या समझे—अत. शिकार को हरी घास दिखलाकर फँसाना ठीक होगा।

सो, टैक्सी मिलते ही वह मार्केट चली गयी। वहाँ से उसने खाने-पीने की विविध सामग्रियाँ खरीदी। मुर्ग, मछलियाँ, अण्डे, कीमा, मटर की फलियाँ वगैरह। फिर चौपाटी के वैनली बार से उसने जॉनीवाकर विस्की का ब्लैक लेबिल बड़ा बाटल खरीदा। वह लौटी, तो उसके साथ का सरजाम देखकर जगरूप हैरान हो गया।

"कहाँ तो तुम टैक्सी लाने गयी थी—कहाँ यह सब सामान उठा लायी!" नरम-स्वर से जगरूप ने कहा—"तुम्हारे मिजाज का चढाव-उतार जानना इन्सान के लिये नामुमकिन है।"

"यह तो राह मे मैनें सोचा ..।"

"कि...?"

"कि जगरूप को मै कितना सताती हूँ—फिर भी...।"

"वह ऐसा बे-गैरत है...।" जगरूप ने वाक्य पूरा किया।

"ऐसा मेरा आशिक है...।"

"आशिक बे-गैरत ही होता है..।"

"गैरत, बे-गैरत माई ब्वाय !" रोज ने नमकीन-नखरे से सुनाया—"बाजार के बटखरे हैं। मुहब्बत के ब्यौहार मे इनका वजन ही बदल जाता है . ।"

"तभी तो आशिक कहता है—जो सर प' रखने को मिल जाय हमें कफ्शे-हुजूर... ।

"कफ्श माने क्या ?"

"कफ्श माने—पादत्राण, पनही, जूते। जनाब फरमाते है—जो सर प' रखने को मिल जाय हमें कफ्शे-हुजूर , तो यूँ समझले कि यक ताजदार हम भी है। भला कोई गैरतवाला ऐसा कहेगा ?"

"अच्छा तू नीचे से सोडे की बाटलियाँ पहले ले आ। एक-एक पेग लगाने के बाद खाना बनेगा। तगड़ा मुर्ग लाई हूँ।"

"जिबह कराके लायी हो ? मै हलाल न कर सकूँगा। मेरे बाप से भी ऐसा न होता।"

"हलाल मैं कर लूँगी मेरी माँ भी ऐसा किया करती है।"

जगरूप जब सोडा लेने नीचे गया, तो रोज ने पहले दागीने के ट्रक की तरफ सदिग्ध-नजरो से ताडा। निकट जाकर उसे उठाने की चेष्टा जो उसने की, तो बाक्स काफी वजनी मालूम पडा। "सोना-चाँदी है--दिल्लगी नही।" रोज ने उल्लसित होकर सोचा। उसकी आँखो के आगे उसका लेटेस्ट लवर—एक पजाबी लौडा आ गया जो गर्म-दिल होने पर भी निर्धन था। जगरूप को तो छोडना ही है। इसमे अब रस ही क्या धरा है। सो, इस धनराशि से उस गरीब पजाबी के साथ शेष-जीवन गर्मागर्म बिताया जा सकेगा। मगर जगरूप छोडेगा इस धन को ? क्यो नही छोडेगा ? छोड़ेगा उसका मरा बाप। मिस रोज की आँखो में अब हब्शी जाँन का विकराल चित्र आया—जिसके पजे प्रेत की तरह किसी का कण्ठ कसने को आतुर। वह खुश हो उठी। उसका काम निर्विध्न हो जायगा।

इसी निश्चिन्तता की मस्ती से लहराकर मिस रोज़ ने छुरा लेकर पावँ बँधे मुर्ग की तरफ देखा। गुसलखाने मे गला काटने के पहले वह मुर्ग मिस रोज को कभी जगरूप जान पड़ा कभी जॉन और कभी वह गरीब पजाबी नौजवान।

सोडे की बाटलियाँ लिये जगरूप जब दादर पर था तभी उसे हलाल होते मुर्ग की विवश-चीत्कार सुनायी पडी—"कैसी कठ-करेजी औरत!" उसने सोचा मिस रोज के विरुद्ध। साथ ही, कुसुमबेन का नक्शा उसकी नज़रो मे नाच गया। लेकिन ऊपर आने और एक ही डबल पेग ब्लैक लेविल जॉनीवाकर जमाने के बाद जगरूप की नजरो मे मिस रोज़ की सूरत चाण्डालिनी से चारु-मुखी बनने लगी। धीरे-धीरे क्षण-भर पूर्व का स्त्री का घिनौना बदन शराब के आवेश में परम-मोहक मालूम पडने लगा।

दोनो ने मिलकर विविध-व्यजन तैयार किये। फिर निश्चय हुआ कि सिनेमा देखकर लौटने के बाद डिनर परसा जाय। रोज़ी ने जब यह चाहा कि जगरूप के गहनो में से एकाध को पहनकर सिनेमा चले, तो अन्दर-ही-अन्दर पोल खुलने के डर से दहलकर भी ऊपर से बिना मुँह बिगाडे जगरूप ने बात बनायी—कि गहने अभी गन्दे है। बिना साफ कराये पहनने-काबिल नही है। बारे मिस रोज़ ने हठ नही किया। उस दिन मिस रोज वही ड्रेस पहनकर सिनेमा गयी, जिससे जगरूप बहुत ही प्रभावित होता था। नाक पर दुष्टता लिये फिरनेवाली रोज़ उस दिन बहुत ही मृदु और सुष्ट और जगरूप के पक्ष में रही। यहाँ तक कि जाने कहाँ से पता सूँघकर जॉन जब सिनेमाघर में रोज़ के इन्तेज़ार में डटा मिला तब, सबके सामने, उसने उसके गाल पर तडातड़ कई चाँटे जड़े—"जानवर! बिहैवियर नही जानता! हट सामने से!" जॉन सचमुच रोज पर जान देता था। नारी के चाँटों में दुराव से अपनत्व ही आशिक को अधिक लगा। वह चुपचाप वहाँ से टल गया। लेकिन जाते-

जाते जॉन ने जगरूप की तरफ देखकर तेज-सी जो निगाह डाली उसे देखकर वह दहल उठा। फिल्म दोनो ने बाक्स मे बैठकर—अकसर लिपटकर—देखी। लेकिन मालाबार हिल लौटकर उन्होने जॉन को वही शराब के नशे मे भयकर पाया—"मै इसकी जान लेकर तुझे उठा ले जाने को आया हूँ।"

"अबे जानवर, होश में आ ! तू ऊपर चल।" जॉन का तिरस्कार कर रोज ने जगरूप से वहाँ से टल जाने को कहा। उसके जाते ही जॉन ने रोज को उठाकर अनवरत चूमना और हृदय से लगाना शुरू कर दिया। और रोज इच्छा या अनिच्छा से बर्दाश्त करती रही। जॉन के अन्दर जो राक्षस या दानव था उससे मन-ही-मन शायद वह डरती थी—

"मै उस साले का खून करूँगा।" जॉन ने सुनाया—"मैने तय कर लिया है।"

"मेरे लिये तू जगरूप को मारकर बुद्धू ! मुझे नही—फाँसी पायेगा। इसकी माँ एक बाक्स-भरा सोना-चाँदी छोड गई है। उसे मै ले लूँ तब तू किसी का खून करे या ख़ुशामद—तेरा काम। अभी तो तू यहाँ से चला ही जा।"

"तू मेरी बनेगी कि नही ? एक दिन मै तुझे अपनी बना लूँ इसके बाद जॉन न भी रहे तो जॉन को कोई पर्वा नही।"

"जानवर !"

"जानवर होता, तो सबके सामने जब औरत ने थप्पड मारे उसी क्षण उसे फाडकर खा गया होता। मै दिलबर हूँ।

"गोबर...!"

"गोबर सही, पर, तेरे सामने—भयकर पीने पर भी—मै सोबर हूँ। तू यह बतला कि मेरी बनेगी कि नही ?"

"इसमे भी कोई सच है ?" लीला से मिस रोज ने कहा—जिससे जॉन को सन्तोष हुआ नही।

"सच कहता हूँ...।" जॉन ने एकाएक तमककर सुनाया।

"पर कोई पूछता भी है ?"

"सच कहता हूँ..।" रोज को सीने से सटा कर दबाता हुआ वह बोला—"जी करता है इतनी जोर से दबाऊँ कि तेरी जान ही निकल जाय ताकि मुझे औरत के नशे से नजात मिल जाय।"

"औरत से यो नजात पाते ही—समझाया उसे जाय जिसके सर मे दिमाग और दिमाग में भेजा हो, सरासर जानवर को कोई समझाये भी तो क्या—बेटे, औरत से नजात मिलते ही हथकडी से हाथ बाँधे जाते है, बेडी से पाँव और फॉसी से गर्दन। दिल्लगी नही है मुझ-जैसी औरत से नजात पाना। अभी तू मिहरबानी कर—जहाँ से आया है वही पधार। तीन दिन बाद फिर मिलना।"

"कहाँ ?'

"सान्ताक्रूस वाले बँगले मे।"

"देख !" जाते-जाते निश्चयात्मक-स्वर में जॉन ने रोज से कहा—"जल्द-से-जल्द तू मेरी औरत बन जा। नही तो, तेरी खैर न मेरी खैर। क्या कहती है ?"

"मैने ना कभी कहा ? मैं तुझसे बाहर कब हूँ।"

जॉन के दूर चले जाने के बाद मिस रोज की जान-में-जान आयी—"सब की दवा है, पर इस जानवर का कोई इलाज मुझे नजर नही आ रहा है। फिर भी, इस पशु की औरत बने वह जिसे जान देनी हो, खुदकशी करनी हो। मै पुलीस के फ्रैन्डो से इस जानवर के होश ठिकाने लगाऊँगी।"

उस दिन पीने में, खाने मे और पीने-खाने के बाद की धूम-मस्तियो मे जगरूप को जैसा आनन्द मिला, वैसा कभी नही मिला था। चूँकि जगरूप ने इतनी सारी सम्पत्ति दे डाली थी, अतः रोज ने भी दिल खोल कर उसको आज़ाद होने दिया। पिछली रात तक दोनो मधुर जागते

रहे। इसके बाद जगरूप को तो घनघोर निद्रा आ गयी लेकिन मिस रोज थोड़ी देर बाद कोई भयानक सपना देखकर जाग पडी। उसने क्या देखा कि स्टील ट्रक में दागीनो की जगह पत्थर भरे है। सो घबराकर और अविश्वास से भरकर, जगरूप के सिरहाने से चाबियो का गुच्छा उठाकर, धीरे से उसने स्टील ट्रक खोलकर देखा ही और उसके मुँह से एक चीख-सी निकल गयी। फिर भी, जगरूप उन्माद और भोग से शिथिल सोता ही पडा रहा। मिस रोज समझ गयी कि जगरूप ही ने माल कही टरका दिया था—"फिर भी, हरामी धोके में सारी रात लवर—प्ले करता रहा। इसका तो खून करना चाहिए। शैतान—सेन्टेड डेविल—है।" उसके मन में आया कि ट्रक मे से पत्थर की शिला निकालकर जगरूप के सर पर दे मारे। पर उसने अपने आवेश को लगाम दिया—"यह छल से तेरा खून पीता रहा तो मिस रोज, तू भी छल से इसका खून कर।" और उसे जाँन की याद आयी। चुपचाप ट्रंक ज्यो-का-त्यो बन्द कर, चाबी का गुच्छा जगरूप के सिरहाने धीरे से रख वह सो गयी। और सुबह यो जागी मानो कुछ जानती ही नही। जगरूप के सहारे पत्थर-भरे उस ट्रक को मालाबार हिल से वह सान्ताक्रूस ले भी आयी। पर सान्ताक्रूस वाला बँगला उसने उसी पखवाड़े खाली कर दिया और शहर में मदनपुर मुहल्ले के निकट शिफ्ट कर गयी। यहाँ से वह बहुत आसानी से अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकती थी, क्योकि जॉन नयी जगह से बहुत दूर नही रहता था। नये मकान में वह अक्सर आने और जगरूप से मेल-जोल बढाने लगा।

उन दिनो फिल्म-कपनियों के मालिको की चलती थी इस तथ्य को पिछले परिच्छेदो में युवतियो की छीछालेदर पढकर सहज ही समझा जा सकता है। बॉस लोग औरत की तो इज्जत वैसे लेते थे; पर, मर्द की आबरू कैसे उतारी जाती थी, इसकी भी एक बानगी पेश है। एक दिन जब जगरूप और मरियम रोज मौजो में बैठकर बीयर पी रहे थे

तब कोई परिचित चरित्र-नायक आया जो देखते ही खिन्न और दुखी मालूम पडता था ।

"क्यो भाई काशीनाथ, आप आज उखड़े-उखड़े कैसे नजर आ रहे है ?"

"मै एक फरियाद लेकर आया हूँ ।"

"फर्माइये—क्या आज्ञा है ?"

"मुझे राम सीनेटोन के मालिक गोकुलचन्द ने बेतरह बेइज़्ज़त किया है ।"

"गोकुलचन्द का दिमाग ही फिरा हुआ है । एक फिल्म में उसने सेन्सर तक की पोल खोल दी थी । इससे सेन्सर बोर्ड गोकुलचन्द पर बहुत नाराज़ है । पानी मे रहना और मगर से बैर पालना । गोकुल-चन्द सेठ की आँखो मे चर्बी छा गयी है । तुम्हारे साथ उसने क्या किया...?"

"सेठ गोकुलचन्द मेरा जाति-भाई वाला है, यह दूसरी बात कि वह कपनी का मालिक है और मै मामूली एक्टर हूँ । सो, अक्सर मै सेठ से कुछ निजी-ढग से बाते करने—विशेषत कुशल-क्षेम पूछने, फिल्म की कहानी और एक्टरो के चुनाव मे राय जाहिर करने मे—सेठ के शुभ के लिए रस—लेता था ।"

"तुम्हे यह मालूम था कि नही कि गोकुलचन्द ही नही उसका बाप मानिकचन्द भी मिजाज़ का झक्कड है । झक इनके खानदान ही में चली आई है ।"

"इसका पता श्रीमान्," काशीनाथ ने रोआँसा मुँह बनाकर सुनाया "मुझे बहुत महँगा पड़ा । क्योकि कटु अनुभव से जानना पडा ।"

"भला,—हुआ क्या ?" बीच में रोज़ ने टोका—"मिस्टर काशी-नाथ, आपकी स्टोरी बडी ही दिलचस्प है ।"

"मेरी शामत सवार थी," काशीनाथ ने सखेद सुनाया—"जो मैने

गोकुलचन्द से यह कह दिया कि 'तिलस्मी बहादुर' के सिनैरियो में मेरा करेक्टर कुछ कमजोर है। बस—वह छूते ही तो, १०० वाट बल्ब की तरह भभक उठा—'तू क्या जाने कि सिनैरियो कौन-सी बला है ? तू नौकर है—फर्माबरदार। जो हुक्म दिया जाय उसे बे-उज्र बजा लाना तेरा फर्ज है, सीधे मुँह बोलने लगा तुझसे तो तू सर ही पर चढ चला।' मुझे काटो तो खून नही। मैने पछतावा-भरे स्वर मे कहा—'माफ करना गोकुलभाई !' पर, साँप कभी माफ करता है ? गोकुलभाई ने नही माफ किया। क्योकि मैं १५०) रुपये महीने का उसका नौकर था। दुष्ट ने पेड से बाँधकर मुझे सैकडो जूते लगवाये !"

"हा-हा-हा-हा !" जगरूप को काशीनाथ की दुर्गतिवाले सीन की कल्पना से ही बेसाख्ता हँसी आ गई। लेकिन मिस रोज गभीर रही—"गोकुलभाई बडा ही हरामी सेठ है। उसने मेरा भी खून पीया है। पर—मिस्टर काशीनाथ ! वह खामखाह तुम्हे पीटने लगा ?"

"नही, सिनैरियो मे उसने एक सीन नया जोडवा दिया। उसमे एक परायी स्त्री से मुझ से कहलाया गया कि मै उसे चाहता हूँ—प्रेम मेरा सच्चा है। भले—वह परीक्षा ले ले। इस पर वह परीक्षा लेने को राजी हो गई। उसने कहा—अगर सच्चा प्रेमी है तो हाथ-पावँ बँधाकर पेड से उलटे लटकना मजूर कर। मुझे मजूर करना पड़ा। एक्टर डाइ-रेक्टर के हुक्म का गुलाम होता है।"

"फिर क्या हुआ ?"

"हुआ क्या—मुझे पेड़ से उलटे लटकाया गया। फिर उस औरत ने पर-स्त्री-कामी की कु-रुचि पर छोटा-सा भाषण देने के बाद चप्पल उतारकर फटाफट फटकारना शुरू कर दिया मेरे सर पर—एक गीत गाती हुई—लो मियाँ ! बडी बाँकी छबीली की जूतियाँ। लो, ली मियाँ !"

जगरूप पुन ठठाकर हँसा।

"आप हँसते है ? साढे दस बजे सुबह से साढे दस बजे रात तक उस सीन का वह गाना रेकार्ड न किया जा सका। इधर करेक्टर एक्टर काशीनाथ के सर का एक-एक बाल नदारद !"

"जब असिल करेक्टर एक्टर आयेगे—मेरा मतलब तैयार हो जायेगे—तब तो ये धनिक बाँस उनकी दाढी खुजलायेगे; लेकिन आज, बेशक, दशा-दुर्दशा ही है।" जगरूप ने मजूर किया।

"और—फिर भी—हरामज़ादे गोकुलचन्द को तुमने माफ कर दिया ? मिस्टर काशीनाथ ?"

"मै चार बच्चो का बाप—माफ न करता तो क्या करता बाई ? पर, मेरा रोआँ दुखित हुआ।"

"मेरे साथ ऐसा बर्तावा गोकुलचन्द ने किया होता .." रोज़ ने लाल होकर कहा—"तो मैने तो हरामी के मुँह पर तेज़ाब फेकवा दिया होता। मै हर्गिज माफ न करती।"

अभी तुम्हीने कहा था कि गोकुलचन्द ने तुम्हारा लहू पिया था। क्या बना लिया उसका तुमने ? महज गाल मारना और बात है, पर, असलीयत यही है कि औरत की आबरू और मर्द की इज्ज़त इन मूजी मालिको के हाथ मे होती है। इसीलिये एक्टिग को सलाम कर मैने डाइरेक्टिग अख्तियार की—।"

"मैं पूँछती हूँ" मिस रोज ने तमककर जगरूप से पूछा—"कौन डाइरेक्टर है जो सेठो का 'पिप' नही है ? जब सेठ लोग शराब पीकर मस्त हो जाते है तब डाइरेक्टर लोग मोटर लेकर एक्ट्रेसो के घर जाते है, किसी सीन के बहाने आबसीन इरादे से उन्हें स्टूडियो लाने।"

"जगरूप चुप रहा। मिस रोज ने काशीनाथ की तरफ परम सहानुभूति की दृष्टि से देखा—"चलो मिस्टर काशीनाथ ! मै आज तुम्हारे बच्चो को देखने चलूँगी।"

"मेरे बडे भाग्य, बाई !" काशीनाथ सचमुच नेक-दिल गुजराती था।

काशीनाथ को लेकर रोज बाहर चली गई। जगरूप अकेले ही पीता रहा और सोचता रहा कि काश, इस ऐयारा औरत की जगह कोई नया माशूक सामने होता ! शराब बिना औरत, गुनाह बे-लज्जत ! इसी समय खटका पा उसने दरवाज़े की तरफ देखा तो एक जवान क्रिश्चियन छोकरी ! लेकिन वह अच्छी तरह खुश हो भी न पाया था कि युवती के पीछे ही जॉन नजर आया।

"वह कहाँ है ?" जॉन ने पूछा।

"अभी-अभी कही चली गई है। बैठो। कुछ पीना है ?"

"इन्हे उनसे मिलना था। पूछती-पूछती यह मेरे घर आई" जॉन ने क्रिश्चियन युवती की तरफ सकेत किया—"तुम बैठो। वह आती ही होगी। मुझे एक जरूरी काम है। मै फिर आऊँगा।" जॉन युवती को जगरूप के निकट बैठाकर तुरन्त चला गया। अन्धे को क्या चाहिये? दो आँखे। शराब तो चढी ही थी, वह जॉन की चाल में अविलब आ गया। उसने उस युवती को शराब दी और युवती ने मजूर कर लिया। बस सडक खुल गई। पेग-पर-पेग चलने लगे। देखते-ही-देखते जगरूप उस अपरिचिता से आजादी लेने लगा। वह बडा प्रसन्न था कि रोज लौटी नही थी जिससे उसको युवती के साथ चितचाहा आचरण करने का मौका भरपूर मिल रहा था। जगरूप अभी भी उसे छोडना नही चाहता था लेकिन मेकप और वस्त्र बिगड जाने का बहाना बनाकर कोई बारह बजे रात वह चली गयी।

उसके जाने के दस-ही-बीस मिनट बाद मरियम रोज़ आई और आते ही उसने जगरूप से पूछा—

"तेरा चेहरा काला क्यो पड गया है ? वह औरत कहाँ गई जिसे जॉन यहाँ छोड़ गया था ?"

"वह इन्तजार करते-करते थककर थोडी ही देर पहले चली गई।"

"मै तो उसको जानती तक नही। अलबत्ता मेरी मामा कह रही थी कि आजकल आधीपगली कोई क्रिश्चियन युवती नौजवानो को बहकाने, ऐश करने के बाद ज़हर देती फिर रही है। वह बहुत गोरी थी ?"

"थी तो.. ।"

"आँखे बडी-बड़ी ?"

"वही-वही।"

"तूने उसे शराब पिलाई होगी—क्यो ?"

"तुम्हारा मेहमान आये और खातिरदारी न हो तो भी तुम नाराज़ हो, हो तो भी। पिलाता नही तो अपना सर फोडवाता ?"

"मेरे मद मेहमानो पर भी ऐसी खातिरदारी तूने कभी बरसाई होती तो मै मान लेती तेरी बात। जनाना हुई नही कि तेरा चटोर चित चहका। उसने कुछ खिला-पिला दिया हो, तो तेरे बीच मै बुरी तरह मारी जाऊँ। मै तो पुलीस मे रपट लिखाने जा रही हूँ।"

"क्या ..?"

"कि जगरूप ने मेरी गैर-हाज़िरी मे अनजानी औरत के हाथ से शराब पी है—कुछ हुआ तो मै नही जानती।"

"फिजूल बके तो मत ! वह नेक औरत थी।"

"नेक औरत की तारीफ ? यही न कि जो तेरी शैतानी प्यास मे अपना गाढा खून उँडेल दे ? तू मरेगा—मै कहे देती हूँ।"

"तेरा सग पडा है, तो मरना भी न पड़े कही—अक्सर मुझे भी ऐसा सन्देह होता है।"

"अबे हरामी !" तकरीबन दाँत पीसकर रोज़ ने कहा—"तू अपनी सूरत तो आईने में देख ! तेरे मुँह पर जो ताजा अलकतरा चमक

रहा है वह मेरी सगत में लीपा गया है ? तू मेरी राह से हट जा। मेरे घर से निकल जा। मुझे तेरी सूरत से नफरत हो गई है।"

जगरूप की बहुत दिनो से आदत हो गई थी, जब मिस रोज बुरी तरह बकने लगती तो वह आँखे बन्द कर सोने की कोशिश करता। आज तो आँख मूँदते ही नीद ने उसको धर चाँपा। दूसरे दिन दोपहर तक वह पलँग पर बेहोश ही पडा रहा। होश में आने पर उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे भयानक ज्वर चढा हुआ है। उसके रोम-रोम मे दाह, सारी देह मे पीड़ा प्रचण्ड हो रही थी। उठना चाहकर भी शिथिलता-वश वह उठ नही पा रहा था—

"डियरी !" उसने रोज को आवाज दी।

"वह स्टूडियो गई, मुझे यहाँ बैठाकर !" माराठा महरी ने कहा।

"महरी ? एक चाय तो बना दे।"

"घर मे चाय-चीनी दोनो ही नही है।"

"तो बाजार से ले आ।"

"पैसे कहाँ है सेठजी ? पैसे ही लेने बाई स्टूडियो गयी है।"

"चाय नही, चीनी नही, पैसे नही—तब तू यहाँ मुझ से शादी करने के लिये बैठी है ? भाग यहाँ से !"

मराठा महरी बुरी तरह बुदबुदाती हुई झनककर चली गयी। पर, जगरूप को बड़ी तेज प्यास लगी थी—पानी कही नुकसान न करे अतएव उसने चाय चाही थी। मजदूरन के जाने के जरा ही देर बाद शक्ति सँभाल कर वह स्वय उठा। धीरे-धीरे उस अलमारी के पास पहुँचा जिसकी छोटी दराज मे मिस रोज अपने रुपये रखा करती थी। जगरूप ने दराज खोली तो उसमें सौ-सौ के रुपये के पन्द्रह और दस-दस के डेड-सौ नोट, तिरसठ खुले कलदार और साढे सात रुपये के चिल्लर नज़र आये—"ओह!" वह घृणा से भभक उठा—"इतने रुपये होने पर भी मेरे लिये (ऐसी हालत में भी) एक प्याली चाय के पैसे

नही थे! इस भुजगिनी को कूडाखाने से उठा कर मैंने आसमान पर चढाया—स्टार बनाया—तो इसका जहर और भी जान-मारू हो गया। साली—एक दिन मारे-मारे हन्टरो के तेरी खाल न खीच लूँ तो मेरा नाम जगरूप नही।"

उन नोटो को देख उसके मन में पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि उन्हे दियासलाई छुला दे। यह भी मन मे आया कि नीचे से किसी को पुकार कर चाय मँगाये। पर, उस रकम से चाय पीने से उसे विरक्ति हो गयी थी। फिर भी, प्यास असह्य हो रही थी। इसी द्वन्द्व और आवेग मे गुसलखाने में जा कर नल से मुहँ लगाकर उसने भरपेट जल पान किया और फिर बिस्तर पर आकर पड रहा। और पडा, सो पडा। नौ दिनो तक बिस्तर छोडने की नौबत नही आयी। वह जब होश में आया तब अस्पताल मे था। नर्स उसके निकट बैठी थी। पूछना उसने उसी वक्त बहुत कुछ चाहा, पर, नर्स ने इशारे से बोलनें से वर्जा। वह खतरे के बाहर है डाक्टर से जान लेने बाद ही नर्स ने उसे बतलाया कि एक हफ्ता पहले फिल्म एक्ट्रस मरियम रोज उसको अस्पताल मे भरती करा गयी थी। पन्द्रह दिनो के लिये वह बाहर गयी हुई है। अभी भी एक सप्ताह बाद वह आये तो आये। तबतक जगरूप काफी स्वस्थ हो जायगा। तीन दिनो बाद नर्स ने उसको यह बतलाया कि बेहोशी में वह, अक्सर, सार्थक-निरर्थक बकवास किया करता था। वह कहता था—माई मुझे माफ करो। वह प्रेमा का नाम लिया करता था—बारहा—और मूर्छा मे भी रो पडता था—तुझे मैने बहुत सताया, तेरी हत्या मैने की। एक बार उसने मरियम रोज़ की याद भी की थी—रोज डीयरी, झूठ या सच हमने एक-दूसरे को प्यार किया है—मेरी जान! इस सबन्ध-सुधा मे हलाहल न घोलो। मुझे मार कर मृत्यु के अलावा तुम अमृत भोगोगी। यह कपोल-कल्पना है। मै प्रेत बनूँगा मेरी जान! तेरे गिर्द चकराऊँगा बवण्डर बनकर। नर्स क्रिश्चियन थी, बवण्डर के माने उसे नामालूम थे। सो

उसने पूछा—जगरूप से। लेकिन उसके उत्तर देने के पूर्व ही डाक्टर आ गया। जगरूप ने डाक्टर से यह जानना चाहा कि कब तक वह अस्पताल से मुक्ति पा जायगा—डाक्टर, मेरी फिल्म अधूरी पडी है। पूरी नही करूँगा तो बिजनेस सफर करेगा। मुमकिन है बॉस किसी और डाइरेक्टर से काम करा ले। ऐसी हालत में मुझे मिलनेवाली रकम खटाई में पड जायगी। बारह हजार रुपये मेरे डूब जायँगे। डाक्टर ने आश्वासन दिया कि जल्दी ही वह अपना धन्धा अटेण्ड कर सकेगा।

इस वाकया के छठे दिन मिस रोज अस्पताल मे आयी। आयी क्या जगरूप को आत्म-हत्या का निमन्त्रण देने आयी। आते ही उसने सुनाया—

"तू यहाँ मर रहा है उधर बॉस दूसरे डाइरेक्टर से बात कर रहे थे। कि अधूरी फिल्म वह पूरी कर दे ताकि होली पर बम्बई मे दिखाई जा सके।"

"किस डाइरेक्टर से चर्चा चलाई गयी थी?" जगरूप ने अप्रसन्न प्रश्न किया।

"नाम मै बतलाकर क्या करूँगी। क्या करेगा तू सुनकर। अरे यह तो कामनसेन्स की बात है कि फिल्म की शूटिंग बीमार के लिये रुकी नही रहेगी।"

"बड़ा हृदय-हीन व्यापार है, ना-शुकरा। आदमी भले ही मरता हो; पर, शूटिंग नहीं रुक सकती।"

"हा-हा-हा-हा!" रोज़ हृदय-हीन हँसी—"आदमी अपनी करतूत आसानी से भुला देता है। जब तेरी औरत मर गयी थी तब तूने शूटिंग छोडकर उसका किरिया-करम किया था? नही। अपनी औरत के परलोक से शूटिंग जियादा जरूरी थी। वही शूटिंग आज डाइरेक्टर की जान से जियादा ज़रूरी है।"

"उफ !" जगरूप ने सखेद सुनाया—"किसी की जबान जहर-बुझी-छुरी-जैसी होती है।"

"किसी के करम ही दोजख-दाता हो तो कोई क्या करे। मैं तो हित की कहने आयी थी कि तेरी जयमाला गैर के गले में डाली जा रही है। और तुझे लगती है मिर्ची। कल दूसरा डाइरेक्टर तेरी फिल्म पूरी करने—जुहू वाला सीन लेने—आउटडोर जायगा। साढे नौ बजे सवेरे। सीन में सारा काम मेरा ही है। कम्पनी ने मुझे तैयार आने की नोटिस दी है। कल तो नही—अब परसो मै यहाँ आ सकूँगी।"

: ३४ :

दूसरे दिन काफी सवेरे बिना डाक्टर-नर्स को सूचित किए जगरूप अस्पताल से धीरे से सरक गया। कई दिनो से उसे कुसुमबेन के पास धरोहर धरे हुए आभूषणो की बडी चिन्ता हो रही थी। सडक पर आते ही सारे दिन के लिए उसने एक टैक्सी की और मालाबार हिल कुसुमबेन के यहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह खुश हुआ—खुशकिस्मती पर—कि पिता-पुत्री दोनो ही बँगले पर थे। कुशल-मगल के बाद ही उन्होने परम-प्रसन्ता से जगरूप को उसका चमडे का बैग दे दिया जिसे जगरूपने दोनो के सामने ही खोल कर देखा, तो उसमें दर-न-दागीने, चाँदी-न-सोना। था उसमें पेंटिंग का नया-पुराना सामान। कनवास, कागज़, कलर, ब्रश, दो-तीन पत्थर की मूर्त्तियाँ (बुद्ध और विक्रमादित्य के बस्ट) तथा एक किसी वैदिक देवी की मूर्त्ति !

"लेकिन कुसुमबेन !" हैरान-भाव से जगरूप ने कहा—"इस बाक्स में तो मेरे घर के आभूषण और सोना-चाँदी के बर्तन वगैरह थे।"

"मतलब ?" कुसुमबेन ने रूखा-सा प्रश्न किया।

"मतलब यह कि मै अस्पताल से सीधे आपके यहाँ चला आ रहा हूँ—हैरान मुझे न करे।"

"मतलब ?" कुसुमबेन के मुँह मे एक ही शब्द।

"मतलब यह है कि मै मर जाऊँगा अगर आप लोग मतलब-मतलब ही करते रहे।"

"लेकिन मिस्टर जगरूप !" अब कुसुम का बापू बोला—"आप मजाक करना खूब जानते है। सो भी परफेक्ट एक्टिंग के साथ। आखिर फिल्म-डाइरेक्टर ही ठहरे।"

"पापाजी...?" जगरूप ने हैरान प्रश्नवाचक रूप दिखाया।

"पाजी.. ! मेरे सामने मेरी लडकी से गलत ढग से बाते कर रहा है। एक तो तेरा कबाड हमने सँभाला ऊपर से यह चारसौबीसी ? सीधे से बँगले-बाहर चला जा। नही तो हण्टरो से मारकर बाहर करूँगा।"

"पापाजी, इस तरह मेरी रकम आप हजम नही कर सकते।"

"रकम के बच्चे !" कुसुम के बापूजी ने जगरूप को धक्का दिया—"पहले बँगले बाहर जा और फिर जो तेरे मन में आए कर—यह भूलकर कि तेरे हाथ का लिखा पुर्ज़ा मेरे पास है।"

जगरूप ने महसूस किया कि ज़रा भी रुका कि पिटा और बुरी तरह —अगर सीधी तरह 'गेट आउट' नही हो जायगा। लाचार, निहायत खट्टे-मुँह वहाँ से खिसक खिसियाकर उसने पहले पुलीस में रपट लिखवाने का इरादा किया, लेकिन दूसरे ही क्षण उस पुर्ज़े का ध्यान आया जिसमें उसने स्वय लिखा था कि बैग मे पेंटिग का सामान और चन्द मूर्त्तियाँ है। उस पुर्ज़े को देखकर दुनिया उसे खब्ती छोड और क्या कहेगी। फिर साढे आठ बज रहे है। पहले स्टूडियो पहुँचे बिना वह धन्धा भी हाथ से जायगा और बम्बई में खिचडी के भी वाँधे पड जायेगे।

जगरूप को समय पर स्टूडियो मे उपस्थित देख बॉस बहुत खुश हुआ—"चार दिनों की शूटिग है— हद-से-हद। क्यो ?" मालिक ने जगरूप से पूछा।

"आप मुझे हिसाब मे हज़ार रुपये दे दे, तो मै दिन-रात एक कर चार दिन का काम दो ही दिन में कर सकता हूँ।" जगरूप ने कहा।

"रुपयो ही के लिए तो पिक्चर रिलीज करने की मै उतावली कर रहा हूँ। चार दिन का काम चार दिन मे हो—लेकिन पिक्चर सौ-टके पास जाय। आपके रुपये होली बाद मिलेगे।"

"अरे सेठ!" जगरूप ने विवश-वदन बनाया—"मै तो ढेर हो जाऊँगा, मेरी जेब में एक लालडेडिया भी नही है और मै अस्पताल से आपके काम के वास्ते डाक्टर, नर्स और स्वास्थ्य को भुलावा देकर आया हूँ।"

'आज कपनी मे एक डिडकी भी नही है। फिर भी मै अपनी जेब से आपको सौ रुपये देता हूँ—पिक्चर जल्द तैयार हो।"

सौ रुपये का नोट जगरूप ने बास के हाथ से यो नोच लिया जैसे परम-प्यासा पानी की एक बूँद लपककर चाट जाय। उसी वक्त एक्टरो और मेशीनो के साथ वह जुहू रवाना हो गया। वहाँ पहुँचते ही उसे प्यास लगी या ताड़ी की दूकाने देख आदतन मन ललचाया और प्यास बहाना बनकर आयी, कहना कठिन है, पर, दो गिलास ताड़ी जगरूप ने डटकर पी ली।

सच तो यह है कि अभी उसे पन्द्रह दिन अस्पताली ही में रहना चाहिये था; दिमाग और देह पर बोझ बिलकुल नही डालना चाहिये था और आउट-डोर शूटिग के लिये नही आना चाहिये था। कैसी तेज हवा जुहू तट की। ताडी तो उसे हर्गिज नही पीना चाहिये था। लेकिन शूटिग के दरमियान जब मिस रोज ने उसे बहुत बुरे ढग से यह सुनाया कि "तू डाइरेक्टर नही, हज्जाम है।" तब उसका मूड बिलकुल ही बिगड़ गया। फिर भी, शूटिंग तो करनी ही थी। चाहे बुख़ार ही

क्यो न चढ बैठे—"मुझे फिर बुखार होगा क्या ?' उसने अपनी नब्ज़ देखी मगर नब्ज देखना उसे आता कहाँ था। उसने अपना माथा स्पर्श कर ताप जानना चाहा। उसे लगा माथा कुछ विशेष गरम था। माथा गर्म है जानते ही जगरूप को कँपकँपी छूट गयी। वह गिरना नही चाहता था, पुन बीमार पडना नही चाहता था, क्योकि, शायद, वह जानता था कि इस बार गिरा कि गिरा।

एक शराबी एक्टर से लेकर घट, घट, घट, आधा बोतल ठर्रा वह पी गया—कि गिरे नही। 'शराब ने मुझे सँभाला"—बेशक—उसने सोचा यह शराब भी अमृत है। यानी मृत मे भी जान डालनेवाली है। सुरा की सहायता से उसमे आसुरिक शक्ति आ गई और दो दिनो तक उसने या तो फिल्म की शूटिग की, या शराब पी, या सोता रहा। इसी आवेश में चार दिनो का काम दो ही दिनो मे उसने कर डाला। लेकिन दूसरे दिन शूटिग करते-करते बुखार से व्यग्र होकर वह जुहू की रेतो पर गिर पडा। और गिरते ही उसकी आँखो के आगे अस्पताल का नज़्ज़ारा नाच उठा—चारो तरफ रोगी, चारो तरफ चीख, कराह। एक दिन तो उसकी ठीक बगल का रोगी मर गया और देर तक वह मुर्दे के पड़ोस में पड़ा रहा। अस्पताल उसे सरासर यमालय मालूम पड़ा। इतने में मिस रोज की परिचित, तीखी आवाज़ उसके कानों में पड़ी—

"जिस्म में ताकत नही, पीयेगा तो जनावर की तरह। मैं पूछती हूँ नशे में डाउन होकर भी कोई पिक्चर डाइरेक्टर कर सकता है ? यह डाइरेक्टर नही हज्जाम है।"

जगरूप के मन में पुन. आया कि उस कटु-मुखी औरत को हटरों से पीटें; पर, उसमें करवट बदलने तक की ताकत नही थी। फिर भी उसने जो कोशिश की तो, ज़रा उठते ही—उसे उलटी होने लगी। नज़-दीक खड़े सभी शौकीन एक्टर दूर भाग चले। सबसे आगे मिस रोज़—

नाक दबाये। जगरूप की कै में ताडी, शराब, मवाद और खून। वह बेहोश हो गया। होश में आने पर उसे महसूस हुआ कि वह अपनी ही ब्यूक गाडी में मिस रोज के साथ जा रहा है—कहाँ ? अस्पताल ? अस्पताल का ध्यान आते ही वह पुन काँप उठा—

"हाथ जोडता हूँ, डियरी !" उसने हाथ जोडकर मिस रोज़ से कहा—"आखिर हमने एक-दूसरे को प्यार किया है। मै अस्पताल मे मरना नही चाहता। मुझे अस्पताल नही, मेरे फ्लैट पर ले चलो।"

फ्लैट मे यानी मदनपुरा के निकटवाले घर मे पाँच दिनो तक वह पडा रहा। मराठा महरी पर जगरूप की तीमारदारी का भार छोड मिस रोज या तो स्टूडियो में रहती या उसी घर के दूसरे कमरे मे उस पजाबी लौडे के साथ पीती, खेलती-खाती थी। मुश्किल से कभी एकाध बार वह उसके कमरे में जाती थी। जब भी जाती स्वास्थ्य-प्रश्न शायद ही करती। वह बराबर यही जानना चाहती कि उन आभूषणो का उसने क्या किया। पर कोई काम-काबिल उत्तर न पाकर उसको कोसती हुई लौट जाती। एक दिन तो हद ही हो गयी। पूछने पर जगरूप जब गहनो का पता नही बता सका तो पजाबी लौडे को बुलाकर उसके सामने ही वह चूमने-लपटाने लगी।

उस दिन जगरूप को गुरु माननेवाला कोई एक्टर जब उसको देखने आया, तो जगरूप ने उससे आग्रह किया कि वह उसी समय उसको अस्पताल ले चले। उस घर मे उसे नारकीय-यातना मिल रही है। एक्टर सहृदय था और मिस रोज़ को जानता था अत॰ अविलब उसने गुरु की आज्ञा का पालन किया। मिस रोज स्टूडियो मे थी जब—जैसे जान बचाकर जगरूप जागते श्मशान अस्पताल में भर्ती हो गया। औरत और अस्पताल मे अब उसे अस्पताल अधिक आशा-प्रद लगा। जैसे दूवा और आग मे किसी को आग अधिक अच्छी मालूम पडे।

सर्वथा भस्म कर सर्व-दु ख-निवारण कर देनेवाली सेक-सेंककर सुख से जलानेवाले तवे की तुलना में।

: ३५ :

"फागुन के दिन चार !" घोर-ज्वर में जागता हुआ जगरूप सोच रहा था—"चार ही दिन बाद होली का त्योहार पडेगा। क्या ? फागुन के (जीवन के) चार ही दिन और रह गये ? और नही तो क्या। चार नही तीन। तीन नही पाँच। अब यह अधिक दिनो हर्गिज-हर्गिज नही जी सकता। देह हड्डी-चमडे का ढाँचा मात्र रह गयी। आँखें निस्तेज हो गयी। कै मे खून-मवाद पसरो जाता है। प्राण यातनाओ से प्रपीडित हो रहे है। और नज़दीकी, अपना कोई नही। अपना ? अपने का उच्चारण क्या है ? अपने की परिभाषा क्या है ? जगरूप तू जानता है ? तू अपनो को छोडकर बनारस से बबई आया था केवल अपने सुख के मोह में तो ? जल्द-से-जल्द नवाबी-मज़े लेने। ऐसी कमाई करने जिससे जिन्दगी इन्द्रसभा नाटक की तरह बराबर रगीन बनी रहे। देख तो तू अपनी देह ! देख तो तू अपनी सूरत ! ओरे आत्म-पोषी ! महज़ अपने को चाहनेवाला कहाँ-से-कहाँ पहुँचता है देख तो ! तू काशी में, कुल में, कुलीनता की सीमा मे रहता तो क्या तेरी ऐसी गति होती ?"

—उसे याद आया—जब उसने प्रेमा का दाह-कर्म करने से इन्कार किया तब उसकी माई ने झल्लाकर शाप दिया था। शाप जिसका एक-एक अक्षर उसके आगे आया—"तो ? क्या ? मै बुरी तरह मरूँगा, और मुझे भी कोई दाग़ देनेवाला नही मिलेगा ? तो क्या जीवन-क्षेत्र में जो

जैसा बोता है अवश्यमेव काटता भी वही फसल है ? प्रेमा ! माई !" वह जोर-ज़ोर से पुकारने लगा। मारे भय के वह अर्ध-मूर्छित हो गया और दिवा-स्वप्न देखने लगा—कि होली का दिन है। बबई शहर में चारो ओर अबीर, कबीर, आनन्द, उल्लास का कोलाहल मचा हुआ है। जिसके देखो उसी के कपडे रग से सराबोर, गाल गुलाल से लाल है। लोग, लुगाई, लडके हँस रहे है, गा रहे है, नाच रहे है, गले मिल रहे है—वाह, वाह ! इस रेले-मेले मे मै भी हिल जाऊँ, मिल जाऊँ अखिल-वातावरण-व्यापी-ख़ुशी से खिल-खिल—खिल ज़ाऊँ।

"लेक.. लेक...!" ये लोग मुझसे दूर क्यो भागे जा रहे है ? मेरी तरफ त्रस्त-नेत्रो से देख क्यो रहे है ? गोया मै आदमी नही, प्रेत हूँ। पिशाच हूँ। ओ बच्चो ! ओ मुन्नो ! ओ मुनियाँ ! तू मुझसे होली खेल मेरी बेटी ! क्या कहा ? मै प्रेत हूँ ? हत्या ? किसकी हत्या किसने की ? जगरूप ने, अपनी धर्मपत्नी की, श्रद्धेया माई की। झूठ। वह कोई और जगरूप होगा। मै हत्यारा नहो—आर्टिस्ट हूँ। फिल्म डाइरेक्टर, नाटक-कार, चित्रकार, मूर्तिकार, क्या कहा ? क्या कहा ? मै आईने मे अपना मुँह देखूँ ? क्या हुआ है मेरे मुँह को ? मेरा मुँह हजार मे एक नज़र आनेवाला माडल। बडे-बडे बाल, फूले-फूले गाल—विवेकानन्दी-धाज। ओ मुनियाँ अपनी पिचकारी का रग मेरे पहरन पर डाल दे रानी! मैं ज़रा से रग बिना घुँटा जा रहा हूँ। रगीन तबीयत, रंगीन मिजाज मैं—ओ रंगीली बेटी ! अरे-अरे तू भी भाग गयी। ज़रा इस तमोली के दर्पण अपना मुँह तो मै देखूँ।—अह ! यह मेरा मुँह है या अमरीका के फिल्मी राक्षस फ्रैन्कन्स्टीन का ! तभी तो वह मुनियाँ जान लेकर भाग गयी। यह तमोली की दूकान सिनेमा-घर की बगल मे है। कौन सिनेमा-घर है। विष्णु सिनेमा ? 'रगीन जिन्दगी'। अरे यह तो मेरी ही लेटेस्ट है। तो कपनीवालो ने एडिट-सेन्सर के बाद तस्वीर लगा दी बाजार में ? पर, डाइरेक्टर की जगह किसका नाम है ? कुछ साफ

नजर नही आ रहा है। जमान.. ईरानी ? जमान...ईरानी तो बॉस का साला है। वह साला डाइरेक्शन क्या जाने। इस पर मेरा नाम क्यो नही है ? शायद मुझे मरा हुआ मानकर कपनीवालो ने मनमानी कर डाली है। ओह ! यारो ने मुझे जीते ही मार डाला! गहने कुसुमबेन के कट्टे लगे, डाइरेक्शन के रुपये कपनी मालिक के, पिक्चर का यश साले जमान ईरानी के। इसे कहते है जिन्दगी का पतझाड। पत्ता-पत्ता झड गया। ठूठवत मै रह गया। सो भी उस पेड़ का जिसकी लकड़ी जीवनदाता चूल्हे मे नही, नरकदायी चिता में जलाई जाती है। जगरूप ! ले सुख ! दुनिया में सुख धरा है तेरे लिये—अविवेकी !"

: ३६ :

जिस वक्त जगरूप की लाश अस्पताल के मुर्दाघर मे रखी जा रही थी—साढे दस बजे रात—उसी वक्त मिस रोज पजाबी लौडे के हाथो उसकी गोद से पजाब मेल के फर्स्टक्लास के बर्थ पर लिटाई गयी। डिब्बा छोटा था और यात्री दो ही—बम्बई से ही वे मजे में पीते, तरह-तरह से किलोले करते आ रहे थे। गाडी बम्बई से ६ बजे रात चली थी। यानी वे डेढ घटे से ट्रेन मे थे। बर्थ पर लिटाते ही पजाबी तरुण ने देखा कि रोजी का चेहरा एकाएक सुफेद पड गया, उसकी सारी गर्मी ही झड गयी, वह बिलकुल ठण्डी पड गयी।

"क्या बात है, मेरी जान !" पजाबी युवक ने कारण जानना चाहा।

"जॉन !" तेजी से उठती हुई, पजाबी के पीछे देखती हुई रोज ने कहा—" डिब्बा तो लॉक्ड है—तू कैसे आया ?"

"मै तुझे दोजख तक छोडनेवाला नही रॉड! जगरूप की जान मेरी तर्कीब से लेने के बाद अब तू मुझे ही अँगूठा बताकर लाखो के दागीने उड़ा कर भागी जा रही है! डिब्बा लाक— बन्द है, ठीक है। मै दूसरे गुसलखाने मे पहले ही से था। हट बे—हरामजादे!"

धक्का खा कर पंजाबी ने जाना कि डिब्बे मे कोई और भी था—और निहायत भयानक, बहुत मजबूत शख्स—काला आबनूस हब्शी। कुछ धक्के से, कुछ नशे से, कुछ भय से, पजाबी तो झौडिया कर गिर पडा लेकिन मिस रोज़ के चेहरे पर क्षणेक में ही पुराना रग पुनः आ-गया। उसने परिस्थिति की प्रचण्डता भॉप कर स्वय को खूब ही सँभाला—

"भागी जा रही हूँ तेरी जागीर लूट कर? तूने दारू तो नही पी है।"

"पी है और खूब पी है।" कह कर जॉन ने जानवरी-जोश से रोज़ को दोनो भुजाओ में कस अपने पत्थर की तरह सीने से दबाया।

"मेरी पसलियाँ चूर करेगा, हरामी?"

"आज मै तेरी बोटी-बोटी से अपनी हविस पूरी करूँगा। बद-जात! कितने मर्दों का खून तू कर चुकी?"

"जितने हरामियो ने मेरा खून पिया—खून का बदला खून ही होता है। तू मेरा खून करना चाहेगा तो मै तुझे छोड दूँगी?"

"ज़रा-सी तो तेरी जान है—शैतान की बच्ची! सीने से ही दबा दूँ तो चकनाचूर नज़र आये।"

और जॉन ने पुन. रोजी को ज़ानवर की तरह दबोचा जिससे उसे निश्चय हो गया कि एक पल भी विलब होने से परिणाम कुछ-का-कुछ हो सकता है। और वह ठठाकर हँसी—"लो! मिस्टर बटकल—लो!"

बटकल बम्बई का विख्यात पुलिस अधिकारी था जिसके साहसिक कार्यों की कहानियाँ कही जाती थीं। गुण्डे और समाज-विरोधी-तत्व

उससे काँपते थे। बटकल का नाम सुनते ही जान का कठोर-भुज-बन्धन एक बार शिथिल पड गया।

"हा हा हा हा!" एक्ट्रेस रोज पुन हँसी—"बटकल का नाम सुनते ही हवा खिसक गयी—क्यो बे जानवर! मै कहती हूँ लबे लोग फूल होते है और तू तो डैम-फूल तक लंबा है।"

"बटकल तेरा कौन है?"

"तू मेरा कौन है? हरामी! मेरी जिन्दगी सँपेरा का पिटारा है—जिसमे एक-से-एक साँप, बिच्छू, बिसखोपडे। बटकल को दारू के नशे मे रेल के पायदान पर खडे-खडे चलने में मजा आता है। डिब्बा लाक्ड है, मैने झूठ कहा था। देख ले तू। इसी डिब्बे से सटे डिब्बे के पायदान पर इन्सपेक्टर बटकल न हो तो तेरे दाँत, मेरी नाक। काट लेना।"

"काटूँगा तो मै तेरी बोटी-बोटी!" कहता जॉन रोज़ को छोड गाडी के दरवाजे की तरफ लपका—उसके कथन की सच्चाई जाँचने। सिटकिनियाँ खोल, दरवाजा खोल उसने रोज की तरफ देखा जो अभी बर्थ ही पर पडी-की-पडी थी। अब जरा बाहर की तरफ निकल कर झुक कर वह देखने लगा, खुला दरवाजा उसकी जकड मे। लेकिन उसने बाहर झाँका ही था कि पीछे से एक प्रचण्ड धक्का उसे ऐसा लगा कि उसके पाँव उखड ही गये। साथ ही, हाथ से डब्बे का द्वार छूट गया। जॉन लडखड़ा कर तूफान मे सूखे पत्ते की तरह ट्रेन से नीचे गिर ही नही पड़ा, कई टुकडो में विभक्त भी हो गया। रोज ने बिजली की तेजी से डिब्बे का दरवाजा बन्द कर लिया। उसका दिल इस कदर तेज धडकने लगा कि एक बार उसे हार्ट फेल हो जाने का भय लगा। जरा सँभलते ही पहला काम उसने डबल पेग दारू पीकर किया; जो था बेहोश-प्राय पडे पजाबी की दुम पर कस कर दो लाते लगाना—"साले, नामर्द कही के!"

सँभल कर युवक ने अभी भी डरते-डरते और इधर-उधर देखते-देखते कहा— "आदमी क्या पूरा शैतान था! कहाँ गया?"

"गया जहाँ उसे जाना था। पर, तू मर्द नही है। माना वह मज़बूत था, पर, हमलावर को देख कर बेहोश हो जाना तो निहायत बुज़दिली है। देखने को सड-सी देह साले की, पर, सीने में कलेजा है चुहिये का। तू चीटी पर हमला करके देख कि वह बेहोश होती है या हमला करने वाले का शक्ति भर सामना करती है।"

इतनी लानत-मलामत के बावजूद जॉन से जान कैसे बचायी यह भेद रोज ने पजाबी युवक को नही बतलाया; यह सोच कर कि ऐसे का क्या भरोसा। कब सबूत-पक्ष का चश्मदीद गवाह बन जाय और उसे न्यायालय के कटघरे मे परम दड पाने के लिये खडी होना पडे। कहते है मिस रोज़ आजतक दण्ड से बची हुई है, गो युगो पहले वह फिल्म-लाइन से ठुकरायी जा चुकी है। अब वह बाँदरा के किसी क्रिश्चियन होटल की बार्बाचिन है। हो चुकी है पचास ऊपर की; पर, नाटी औरत होने से अभी गलितागी नही कसो बॉडी वाली है। अक्सर वह मूड मे आने पर अपनी जवानी की कहानियाँ दूसरे बार्वाचियो को बडे शौक और तपाक से सुनाती है।

मिस रोज़ दण्ड से बच गयी ऐसा जो कहते थे उन्होंने इस तथ्य पर ग़ौर किया होता तो जरूर उनका समाधान हो जाता कि जिसका सारा जीवन ही दण्ड—अभिशाप—की तरह रहा हो उसके कपाल में न्यायालय का कटघरा न लिखा जाय तभी न्याय होगा। पंजाबी युवक को त्याग कर जब मिस रोज़ दिल्ली से बबई लौटी—उसी दिन पुलीस वालो ने उसे दबोच लिया था। क्योकि ट्रेन से कटकर मरे जॉन की जेब में रोज का एक चित्र मिला था। फिल्म-एक्ट्रेस का चित्र किसी की भी जेब मे हो सकता है और इसी बिना पर अन्त में रोज पर केस चलाया भी नही गया; लेकिन तीन महीने तक सुबह और शाम पुलीस

वाले उसीकी पी और खाकर उसीकी सेज पर उसकी काया का कचरा करते रहे। और वह विवश थी यह सब करने-कराने को। क्या यह दण्ड नही ? क्या यह मृत्यु-दण्ड से कम है ? जब पुलीस ने उसे छोडा उसके तन में लहू की एक बूँद नही थी और न थे कफन के लिये दाम। कहाँ सिनेमा की हिरोइन का जीवन—आभूषण, विविध भोजन, मोटर, आशिक, ऐश-आराम और कहाँ फोरस रोड की एक गली में बरसो तक रुपया-अधेली मात्र मे (देह-यापन के लिये) देह का सौदा (समापन)। बावर्चिन बनने के पहले अर्से तक वह वेश्या बाज़ार में भी नरक भोग चुकी थी; पर, वह जो भोग भोगती उसे नरक मानती नही थी। बकौल तुलसीदास जी "भूल्यो सूल करम-कोल्हुन तिल ज्यो वह बारनि पेर्‌यौ।"

: ३७ :

उपन्यास जगरूप के साथ ही समाप्त माना जाय। लेकिन लीलाधर कत्थक और नन्दकुमार नन्दन अभी है और तगडे-तन्दुरुस्त है। दोनो ही बनारस में है जिसे अब वाराणसी कहा जाता है। नन्दकुमार काशी के एक तृतीय श्रेणी के दैनिक पत्र का वैतनिक सपादक है तथा लीलाधर 'नटराज' नामक सस्था का सस्थापक और संचालक है जिसमें नाचना, गाना और बजाना पिछले कई वर्षों से बडी सफलता से सिखलाया जाता है। सस्था में फिलहाल तीन-सौ तरुण-तरुणियाँ और बाल-बालिकाएँ विविध कलाओ की विविध शिक्षा पा रही हैं। जब से स्थापित हुई तभी से सस्था दिन-दूनी-रात-चौगुनी उन्नति कर रही है। 'नटराज' की अपनी बिल्डिग है—काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पीछे-फण्ड है तगडा—सेन्ट्रल बेंक में। अभी गत ही वर्ष तो लीलाधर को

भारत सरकार ने 'पद्म-भूषण' से भूषित किया था। उसी सिलसिले मे 'नटराज' मे एक अभिनन्दन समारोह हुआ था उसी सस्था से निकलनेवाले 'नटराज' नामक सिनेमा-पत्र की प्रथम वर्ष गाँठ पर जिसमे, काशी के चुनिन्दा नागरिको के साथ ही इन पक्तियो का लेखक तथा पत्रकार नन्दकुमार नन्दन, भी आमन्त्रित थे। नन्दकुमार ही का पत्र एकमात्र ऐसा दैनिक है जिसमे फिल्मो की खासी खरी आलोचना होती है। फलतः उसे फिल्मो के विज्ञापन भी नही के बराबर मिलते है। इससे पत्र को काफी नुकसान हो रहा है, पत्र-स्वामी ने अनेक बार नन्दकुमार से—सविनय—इस पालिसी का त्याग करने का अनुरोध भी किया, पर, नन्दकुमार अपने निश्चय पर दृढ— बराबर त्याग-पत्र जेब में लिए दफ्तर जानेवाला। लीलाधर से उसका परिचय है, पर, नन्दकुमार की नज़रो में लीलाधर श्रेष्ठ मानव नही है—"कलाकार कितना भी श्रेष्ठ हो यदि वह श्रेष्ठ मानव नही है, तो शायद ही रसज्ञ उसकी कला में वह रस पावे जेहि बस होत सुजान।" उसने कभी अपने दैनिक में लिखा था—"असिल मे श्रेष्ठ कलाकार बिना श्रेष्ठ मानव हुए कोई हो ही नही सकता। मुझे खेद से कहना पडता है, सामने शिकायतो की फाइल रखी हुई है, काशी का, एक तथाकथित श्रेष्ठ कलाकार स्वय को श्रेष्ठ रखने के लिए अपनी सस्था की सुन्दरियो को बहाने-बेबहाने मनचले सत्ताधिकारियो की आँखो मे जँचाता रहता है। अगर ऐसी बात है, तो निहायत बुरी बात है। समाज का फर्ज़ होना चाहिए—और फर्ज़ भी पाक—ऐसे अधम कलाकारो से बेचारी, भोली युवतियो की रक्षा करना। और अगर हमारी फाईल के सारे कागजात गलत हैं, कलाकार गैर-ज़िम्मेदार, 'पिप' नही है, तो मेरा आग्रह यह है कि ऐसी सस्थाएँ जिनमें ऐसी कोमल कलाएँ सिखलाई जाती हो बहुत ही जागरूक रूप से युवतियो और समाज के कल्याण का ध्यान रखे। बदनामी का मौका कभी न आने दे। क्योकि सस्कृत की एक सूक्ति है—अतथ्य हो या तथ्य

जनरव से जनता मे मान घट जाता है।"

नन्दकुमार की उक्त टिप्पणी का अर्थ सारी वाराणसी ने एक ही लगाया कि लीलाधर कत्थक के 'नटराज' पर उसका आक्रोश है। तबतक लीलाधर हो गया 'पद्म-भूषण' और उसके विरोधियो की जुबान पर हमेशा के लिए सरकारी-मुहर-जैसी लग गयी। 'नटराज' के अभिनन्दन-जलसे में नन्दकुमार को लीलाधर ने विशेषतः आमन्त्रित किया था--कि वह देखे कि जिसके बारे मे उसका पत्र क्या-क्या बकता रहता है उसकी इज्जत दिल्ली में कितनी है। वह नन्दकुमार पर यह जाहिर करना चाहता था कि कुत्ते भूकते ही रहते है, पर भाग्यवान् का कारवाँ आगे ही बढता जाता है।

सभापति का आसन ग्रहण करने के बाद समारोह का आरम्भ 'पंचशील-नृत्य' से हुआ। उक्त नृत्य पाँच छोटे-छोटे बच्चो ने किया जिनमे एक साढे नौ साल की बालिका थी 'क्षिति' नाम की। साथ ही उसी वय के चार बालक थे—जल, पावक, गगन और समीर। यानी पंचतत्त्वो के पुतलो ने पचशील नृत्य दिखाया। इस प्रथम प्रदर्शन ने ही उपस्थित बनारसियो को विमुग्ध कर दिया। इसके बाद सक्षिप्त भाषण में लीलाधर और उसकी कला की प्रशसा करने के बाद स्वयं सभापति ने अभिनन्दन-पत्र पढा, जो वाराणसी के कला-रसिकों द्वारा लीलाधर को अर्पित किया गया था।

"वाराणसी के आदरणीय गुण-ग्राहको!" वातावरण से प्रफुल्लित हो लीलाधर ने भाषण शुरू किया "आपने जो मेरा सम्मान किया है उसे मैं अपना बिलकुल नही और कला ही का सम्मान सरासर मानता हूँ। आप ही के बल पर 'नटराज' सस्था और 'नटराज' फिल्म साप्ताहिक प्रगति-पथ पर बराबर, सोत्साह और सफलतापूर्वक चले रहे है। आज 'नटराज' ने भारत के सामने नृत्य, गीत और नाट्य का जो सरस, सुपुष्ट आदर्श रखा है वह विदित वाराणसी की मर्यादा

के सर्वथा अनुकूल है। इस सबके लिए संस्था उसके सदस्यो तथा अपनी तरफ से मै आपका भूरि-भूरि धन्यवाद करता हूँ और भूयो-भूयो नमाम्यहम।

"पुनि" तुलसीदास ने रामायण के आरम्भ में कहा है—"पुनि खलजन बन्दौ सत भाये, जे बिनुकाज, दाहने बाये।" लेकिन मै तो तुलसीदास नही कि किसी को खल कहूँ। मै मामूली कलाकार हूँ। मेरा निवेदन ऐसे महाजनो से यह है कि लिखें आप और अपने अख़बार-भर लिखे—लेकिन जो लिखे अच्छी तरह जॉच-पडताल करके लिखे। नृत्य खराब, सगीत ख़राब, अभिनय खराब, सिनेमा ख़राब, नट खराब, नटी खराब! मालूम नही कितना ख़राब है ऐसो का भेजा जो बिना अपनी तरफ देखे ही दुनिया को खराब (घोषित) करके रख देते है! मै समझता हू ऐसे सम्पादक की—मुझे क्षमा न किया जाय—सूझ-बूझ-बुद्धि अपनी मिसाल आप है। भारत सरकार ने जितने कलाकारो को 'पद्म-श्री' और 'पद्म-भूषण' से अलकृत किया है उनमे नर्तक है, बजाने वाले है, तबला वादक है, गर्वी गायक है—पर, मै बडी मिन्नत से दरियाफ्त करना चाहूँगा कि क्या कोई पत्रकार भी है, जिसे 'पद्म-श्री' या 'पद्म-भूषण' बनाया गया है? होगा कोई—भारत सरकार अलकार-दान मे उदार है—पर, मेरी नज़रो आने को उसका शुभ नाम अभी बाकी है।

"सिनेमा अशुभ है, एक्टर-एक्ट्रेसे समाज पर बुरा प्रभाव डालती है, यह सब जो लोग कहते है, झूठ कहते है। दर्जनो चरित्रवान् एक्टरो को मै जानता हूँ, जो प्राइवेट लाइफ मे किसी भी सम्पादक या समाज-सुधारक से, किसी तरह भी, मन्द नही है। सक्षेप मे कोई भी वस्तु स्वय बुरी नही होती। बुरी या भली देखनेवाले की दृष्टि होती है। तभी तो दिव्य कवि ने रेकार्ड किया है कि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'। अन्त मे मै आग्रह करूँगा 'सग्राम' के प्रधान

सम्पादक प० नन्दकुमारजी 'नन्दन' से कि काशी के चुने-बिने लोगो के सामने अपने सिनेमा या कला-विरोधी विचार आये दिन जो 'सग्राम' मे छापते रहते है रखने का सत्साहस दिखावे। और भरी सभा मे से अपने पक्ष के पाँच प्राणी भी पाये। साथ ही जनता से मेरा आग्रह यह है कि—वादे-वादे-वादे तत्व बोध होता है। हम शान्ति से सम्पादकजी के तर्क भी सुने। और फिर स्वय निर्णय करे। कोई जाये नही—कृपाकर। नन्दकुमारजी के भाषण के बाद ही सेवा मे ताण्डव-नृत्य उपस्थित किया जायगा।"

नन्दकुमार जब मच की तरफ बढा तब काशी-वासियो ने उसके प्रति भी आदर और अनुराग पुष्कल प्रकट किया।

"अब आनन्द आयेगा" उपस्थित मे से एक ने बगलवाले से कहा "नन्दकुमार पत्रकार तो परम श्रेष्ठ है ही वक्ता भी ओजस्वी और सरस है।"

"दोनो ही सिनेमा लाइन मे रह चुके है।"

"नन्दकुमार फिल्म ससार का विशेष अनुभवी है यानी कटु-अनुभवी।"

"आदरणीय सभापति महोदय, लीलाधरजी और उपस्थित काशी-वासियो!" नन्दकुमार ने भाषण आरम्भ करने के पूर्व चश्मे उतार दुपट्टे के कोने से पोछा और उन्हे पुन चेहरे पर धारण किया—"पहले तो मै लीलाधरजी भाई को सरकार द्वारा 'पद्म-भूषण' से अलकृत किए जाने पर हृदय से बधाई देता हूँ। सिनेमा के बारे मे दो राये हो, नाच, गान, वाद्य के बारे दो राये हो, पर, इसमें दो राये त्रिलाल मे सभव नही कि हमारे लीलाधरजी अद्वितीय कलाकार है। लीलाधरजी से काशी का गौरव है। 'पद्म-भूषण' तो आप कल बने है लेकिन काशी-भूषण पिछले पचास वर्षों से यानी आधी शती से है।

"सज्जनो!" आज जैसे वक्ता के भावो का अजन उस पावर तक

पहुँच गया जहाँ से गति तीव्र से-तीव्रतर हो जाती है—"मै जब 'नटराज' के लिए घर से रवाना हुआ उसके पहरो पूर्व सोच चुका था कि लीलाधरजी मुझे भी बोलने को विवश किए बगैर रहेगे नही। अत मै तैयार होकर घर से चला। यह जो अटेची लेकर मै यहाँ आया हूँ इसमे बाम का शेल नही—फिल्म सम्बन्धी साहित्य है, कतरने है और लीलाधरजी द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'नटराज' के कतिपय अक है। इस सबका उपयोग कर यदि मै फिल्मो के विरुद्ध सुविज्ञो के कोर्ट मे केस प्लीड करना आरम्भ करूँ तो भय है—वक्त बहुत लग जाएगा। और आप ऊब जायँगे, इसलिए सक्षेप से-सक्षेप मे निवेदन करूँगा।

"कला-रसिको ! मुझे जो कुछ कहना है वह तो बाद में कहूँगा, पहले मै प्रोफेसर असितबरन बोस द्वारा किए गए रिसर्च की चर्चा करना चाहता हूँ। प्रोफेसर महाशय लखनऊ विश्वविद्यालय के समाज-विज्ञान और समाज-सेवा के असिस्टेन्ट प्राध्यापक है। असितबरन बाबू ने साठ हिन्दी फिल्मो की सूक्ष्म जाँचकर जो निष्कर्ष निकाला है वह महा ज्ञानवर्द्धक, महा मनोरजक है। उनकी रिपोर्ट में केवल सिनेमा के विषय-वस्तु पर विचार किया गया है। सिनेमा उद्योग पर नही, प्रेक्षको पर या उनकी रुचि और उम्मीदो पर नही; विविध प्रेक्षको पर फिल्मो का कैसा प्रभाव पडता है इसका भी नही। प्रोफेसर साहब के मतानुसार उक्त विषय अलग-अलग शोध के विषय है।

"सो, असितबरनजी के चुने साठ चित्रो में साठ की चौथाई १५ फिल्में अपराध सम्बन्धिनी; १३·३ फी-सदी से कुछ जियादा साहसिक कामो और रियासती चालबाजियो की; १० फी-सदी सामाजिक-चित्र, ८·३ फी-सदी पौराणिक तथा भक्ति-भाव सम्बन्धी; ६·७ फी-सदी ऐतिहासिक; इतनी ही सख्या प्रेम, परिवार और परिहास के पिक्चरो की और बाकी विविध विषयो की।

"बस ! असितरबन महाशय की चर्चा इतनी ही इसलिये कि विचारवान लोग विचारे कि भारतीय फिल्मो मे अपराध-सबन्धी-चित्रो की भरभार क्यो हैं ? भक्ति-भाव ज्ञान के चित्र सौ मे दस लेकिन अपराध की फिल्मे सौ में पचीस क्यो बनायी जाती है ? क्या इस देश की सस्कृति अपराध-प्रधान है ? प्रमाणित किया जा सकता है ? या देश या सस्कृति के प्रति फिल्म-उद्योग जिम्मेवार होने के लिने विवश नही है ? यह मेरी दृढ राय है कि जो भी अखबार फिल्मो के विज्ञापन छापते है: अपराध-प्रचार में सहायक बनते है। यह सब क्यो किया जा रहा है ? पैसे के लिये। पैसा किसे कहाँ ले जायगा, कोई कहेगा ? मै कहता हूँ दुष्ट फिल्मो का प्रचार रोकने का पहला उपाय है पत्रो मे विज्ञापन छपना कतई बन्द होना। फिल्म उद्योगवाले जैसे जहाँ चाहे अपना विज्ञापन कर ले। जर्नल और जर्नलिस्ट की पहली और अन्तिम जिम्मेदारी जनता के सिवा और किसी के प्रति नही होती। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ। और मेरा पेपर घाटे मे निकलता है और मै हूँ कि न 'पद्मश्री', न 'पद्म-भूषण'। तो जर्नलिस्ट न तो नक्काल के साथ, न नचनियो के न तबलिये के। हमारे पेशे में सेवा का फल सेवा और पुन. सेवा ही है—अक्सर मेवा बिलकुल वर्जित। पर, 'नटराज' जैसे पत्र तो (मुझे माफ न किया जाय) मनचलो और फिल्म-स्टारो के बीच 'गो बिट्वीन' यानी टाल का काम अजाम देते है। वे गैर-जिम्मेदार अखबारवाले बीबियो का पता बाबुओ को और बाबुओ का ठिकाना बीबियो को बतलाते रहते है। यही इनकी विवश अधम कमाई है। भाई रे ! दोहाई है ! दोहाई है !! साप्ताहिक 'नटराज' की गैर-जिम्मेदारी का एक उदाहरण—१६ जनवरी वाले अक मे नहाने की पोशाक में किसी अमरीकी नटी का अर्ध-नग्न-चित्र छापकर नीचे लिखा गया है —'गोली चिकनी रान, जियरा हैरान !' एक नटी के चित्र के नीचे लिखा है—'किस' की मिस ? एक सुलोचना के क्लोजप के नीचे है—

'कोई मुँह चूम लेगा इस नही पर।' मै पूछता हूँ यह सब क्या है ? ज़िम्मेदारी ? पत्रकारिता ? झखमारी ?..।"

इसी समय, बिना सूचना, बडे नाटकीय ढग से प्रलयकर शकर का रूप धरे, दोनो हाथो मे जलते नर-कपाल लिये लीलाधर पीछे से आगे आया और आते ही उसने ताण्डव-नृत्य करना आरभ कर दिया।*

(बस)

---

*'फागुन के दिन चार' में आये पात्र-पात्रियो और सस्थाओ के नाम काल्पनिक हे। किसी भी व्यक्ति या सस्था के नाम से इन नामो का कोई सरोकार नहीं।